औद्योगिक सम्बन्ध
(Industrial Relations)

औद्योगिक सम्बन्ध

(INDUSTRIAL RELATIONS)

प्रो० सी० एम० चौधरी
बी ए. ऑनर्स, एम. ए , एम. काम
डी सी एल-एल , आर ई एस
आर्थिक प्रशासन एवं वित्तीय प्रबन्ध विभाग
राजकीय महाविद्यालय, टोंक
भूतपूर्व प्राध्यापक, वाणिज्य संकाय
जोधपुर विश्वविद्यालय, जोधपुर

साहित्य केन्द्र, जयपुर

TOPICS FOR STUDY

1 Present position and achievements of trade unions in the U K, U S A, U S S R — a comparative study

2 Growth of industrial labour in India and its chief characteristics Labour absenteeism and turnover Labour in the Indian Public Sector

3 Functions structure and finances of trade unions in India Employer's organisation in India

4 Principles of collective bargaining Measures to encourage collective bargaining in India Problem of collective bargaining in India

5 Industrial Peace, Preventive and settlement measures for industrial unrest Conciliation mediation and arbitration as methods of industrial peace Role of Government in Union–Management relations

6 Machinery of industrial relations in the U K and U S A, *Joint consultation in industry*

7 Industrial disputes in India since 1956 Evaluation of existing machinery of industrial relations in India A critical study of the working of conciliation and arbitration in India

8 Worker's participation in management in India Joint *Management Councils*

9 International Labour Organisation Brief history constitution, organisation functions and achievements India and International Labour Organisation

10 Industrial Relations in Rajasthan

PUBLISHED BY SAHITYA KENDRA JAIPUR
PRINTED AT HEMA PRINTERS, JAIPUR

भूमिका

आधुनिक समय में प्रत्येक देश को तीव्र औद्योगिक विकास करने हेतु आर्थिक नियोजन आवश्यक है और इसकी सफलता जनशक्ति आयोजन पर निर्भर करती है। राष्ट्रीय विकास की नीति में जन शक्ति आयोजन का महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। तीव्र विकास तीव्र औद्योगिकरण के माध्यम से किया जाता है तथा तीव्र औद्योगिकरण हेतु औद्योगिक शान्ति होना परमावश्यक है। औद्योगिक शान्ति प्रत्येक देश के औद्योगिक सम्बन्धों पर निर्भर करती है। आधुनिक समय में औद्योगिक सम्बन्धों के अन्तर्गत न केवल मालिकों और श्रमिकों को ही सम्मिलित किया जाता है, बल्कि सरकार भी अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। सरकार एक नियोजक भी है तथा देश के द्रुत विकास हेतु उत्तरदायी है।

प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण रूप से नवीन आंकड़ों, पत्रिकाओं और देशी एव विदेशी लेखको की पुस्तकों का सहारा लिया गया है। पुस्तक के अन्त में परीक्षा प्रश्न-पत्र भी समाविष्ट किए गए हैं। इससे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ जाती है।

मैं उन सभी लेखकों का आभारी हूँ जिनकी पुस्तकों तथा लेखों के आधार पर यह पुस्तक लिखी गई है। अन्त में मेरे प्रिय प्राध्यापकों एव विद्यार्थियों से इस पुस्तक की कमियों हेतु सुझाव भी आमन्त्रित करता हूँ।

लेखक

अनुक्रम

1 श्रम संघवाद

(Trade Unionism)

श्रम सघ की परिभाषा, उद्देश्य, कार्य, लाभ, हानियाँ, श्रम संघ और मजदूरी, श्रम सघों के प्रकार, शक्तिशाली श्रम सघ की विशेषताएँ

(Trade Unionism—Definition Objectives, Functions, Advantages, Disadvantages, Trade Unions & Wages, Types of Trade Unions, Characteristics of a Strong Trade Union)

श्रम सघ औद्योगीकरण की देन है। औद्योगीकरण के साथ श्रमिको की सख्या मे वृद्धि हुई है। श्रमिक अपनी कार्य की दशाओ व आर्थिक स्थिति को सुधारने हेतु धीरे-धीरे सगठन बनाने लगे। विकसित देशो मे आज सुदृढ एव सुसगठित श्रम सघ हैं जिनके द्वारा सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) के आधार पर कार्य की दशाओ आदि मे सुधार करवाया जाता है। ब्रिटेन जैसे देश मे श्रम सघ का देश की राजनीति मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देशो मे अभी श्रम सघ सुदृढ एव सुसगठित नही हो पाए है क्योकि श्रमिक अधिकांशत. अशिक्षित हैं, श्रम सघो के नेता श्रमिको मे से नही है तथा श्रम सघो की वित्तीय स्थिति भी सुदृढ नही है। जैसे-जैसे श्रमिक अपने अधिकारो व कर्त्तव्यो के प्रति सजग होगे और सरकार का सहयोग रहेगा तो धीरे-धीरे श्रम सघ विकसित देशो के श्रम सघो के समान ही सुदृढ एव सुसगठित हो जाएँगे।

श्रम संघ की परिभाषा
(Definition of Trade Union)

विभिन्न विद्वानो ने श्रम सघ की अलग-अलग परिभाषा दी है। कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएं निम्नलिखित है—

श्री एव श्रीमती वैब्स के अनुसार, "श्रमिक सघ वास्तव मे मजदूरी पर निर्वाह करने वाले व्यक्तियो के उनके काम की दशाएँ बनाए रखने अथवा उन्हे सुधारने के लिए बनाए गए स्थायी सगठन हैं।"[1]

वी वी गिरी (V. V. Giri) के अनुसार, "श्रमिक सघो से हमारा अभिप्राय

1. *Sidney & Beatrice Webb*. History of Trade Unionism, p 1

ऐसे सगठनो से है जिनका निर्माण ऐच्छिक रूप मे सामूहिक शक्ति के आधार पर श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए किया जाता है।'[1]

प्रोफेसर लेस्टर (R A Lester) के मत मे, श्रम सघ "श्रमिको का वह सघ है जिसका मुख्य रूप से इसके सदस्यो की रोजगार दशाओ को बनाए रखने अथवा सुधारने हेतु गठन किया जाता है।'[2]

प्रो फिलप्पो (E B Flippo) के अनुसार 'श्रम सघ श्रमिको का सगठन है, जिससे सदस्यो के सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक हितो को प्रोत्साहन, सरक्षण एव सुधार, सामूहिक शक्ति द्वारा किया जाता है।"[3]

श्री ए सी जोन्स (A C Jones) ने लिखा है कि "एक श्रमिक सघ अनिवार्य रूप से श्रमिको का ही सगठन है मालिको, सहभागियो अथवा निजी श्रमिको का नहीं।'[4]

इस प्रकार श्रम सघो की विभिन्न परिभाषो म विभिन्न पहलुओ पर जोर दिया गया है।

वी अग्निहोत्री (V Agnihotri) के अनुसार श्रमिक सघ श्रमिको और मालिको, श्रमिको और राज्य के बीच पारस्परिक मामलो के सम्बन्धो का नियमन करते है उदाहरणार्थ रोजगार की दशाएँ मजदूरी का नियमन, राष्ट्रीय जीवन और अन्य क्षेत्रो मे सगठित समूह के रूप म श्रमिको की सहभागिता।[5]

श्रमिक सघ के उद्देश्य
(Objectives of Trade Union)

श्रमिको के सगठनो को समय समय पर विभिन्न सामाजिक आर्थिक एव राजनीतिक आन्दोलनो ने प्रभावित किया है। विभिन्न विचारको ने भी श्रम सघो को प्रभावित किया है। श्रमिक सघो के प्रमुख उद्देश्य निम्न है—

(1) श्रमिको मे पारस्परिक भाईचारे एव सहयोग की भावना का विकास करके उनको सगठित करना।
(2) श्रमिको के कार्य एव मजदूरी से सम्बन्धित समस्याओ पर विचार करना और उन्हे वैधानिक रूप से दूर करना।
(3) श्रमिक एव मालिको के बीच सहयोग की भावना उत्पन्न करना।
(4) श्रमिक सघ अपने सदस्यो की बीमारी अथवा अन्य कठिनाइयो हेतु कोष रखने का काय भी करते हैं।
(5) सामाजिक सुरक्षा योजनाओ उदाहरणार्थ—रोग बीमा प्रोवीडेन्ट फण्ड सहकारी साख आदि को प्राप्त करन मे मदद करना।

1 *V V Giri* Labour Problems in Indian Industry p 1
2 *Lester R A* Economics of Labour p 539
3 *Flippo E B* Principles of Personnel Management p 449
4 *Jones A C* Trade Unionism Today p 3
5 *Agnihotri V* Industrial Relations in India, 1970 p 31

(6) हडताल की घोषणा, सगठन और उसे चलाने तथा मालिको आदि से समझौता वार्ता करना एव शान्तिपूर्वक झगडो का निबटाना ।
(7) सदस्यो को आवश्यकता पडने पर कानूनी मदद करना ।
(8) सदस्यो की सामाजिक, आर्थिक एव शिक्षा सम्बन्धी आवश्यकताओ की पूर्ति करना ।

यह आवश्यक नही है कि श्रमिक सघो द्वारा उपर्युक्त उद्देश्यो के अन्तर्गत ही चलना पडता है । श्रमिक सघ के विकास एव उनके उद्देश्यो को देश का औद्योगिक विकास तथा देश की सामाजिक और राजनीतिक दशाएँ प्रभावित करती हैं ।

श्रम सघ के कार्य
(Functions of Trade Unions)

श्रमिक सघो के कार्यों को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

1 कार्य की दशाओ से सम्बन्धित कार्य (Intra-mural Functions)—श्रमिको की काय दशाओ से सम्बन्धित सभी कार्य इसके अन्तर्गत आते हैं, जैसे पर्याप्त मजदूरी दिलाने के लिए प्रयास करना काय की दशाओ मे सुधार करना, कार्य के घण्टो मे कमी करना, मालिको से उचित व्यवहार प्राप्त करने हेतु प्रयास करना आदि । इन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु श्रमिक सघ सामूहिक सौदाकारी, हडतालो तथा काम धीरे करना आदि तरीको का सहारा लेते हैं । श्रमिक सघो के इन कार्यों को 'लडाकू कार्य (Militant or Fighting Functions) कहते है ।

2 सामान्य जीवनस्तर से सम्बन्धित कार्य (Extra-mural Activities)—इन कार्यों से श्रमिको के जीवनस्तर मे वृद्धि होती है । उनकी कार्य-कुशलता मे वृद्धि होती है । श्रमिक सघ सदस्यो मे पारस्परिक सहयोग एव प्रम की भावना को प्रोत्साहित करते हैं और श्रमिको का शैक्षणिक एव सांस्कृतिक विकास करना श्रमिको के लिए कल्याण कार्य की व्यवस्था करना पुस्तकालय वाचनालय सस्ते ऋण सस्ते अनाज व आवास की व्यवस्था आदि करना । ये सभी कार्य श्रमिक सघो की आर्थिक दशा पर निर्भर करते है । इन कार्यों को बन्धुत्व प्रेरक कार्य भी कहा जाता है ।

3 राजनीतिक कार्य (Political Functions)—श्रमिक सघो द्वारा देश की राजनीति को प्रभावित करने का कार्य भी किया जाता है । वे श्रम दल का गठन करते है तथा अपने सदस्यो को जिताकर ससद् या विधान-सभाओ मे भेजते हैं । ब्रिटेन जैसे देश मे श्रम सरकार का कई बार गठन हुआ है । हमारे देश मे श्रमिक सघो का इतना महत्त्वपूर्ण योगदान नही रहा है फिर भी सरकार की श्रम नीति को प्रभावित किया गया है ।

श्रम संघ के लाभ
(Advantages of Trade Unions)

श्रम सघो के कार्यों से यह पता चलता है कि इन सगठनो द्वारा श्रमिको के आर्थिक, सामाजिक एव राजनीतिक हितो का पूरा पूरा ध्यान रखा गया है । फिर भी इन सघो की आलोचना की जाती है । श्रमिक सगठन के अग्रलिखित लाभ हैं—

1. पारस्परिक बन्धुत्व व सहयोग की भावना को प्रोत्साहन—इन सगठनों के माध्यम से श्रमिक एक दूसरे के निकट आते हैं। उनमे पारस्परिक प्रेम व सहयोग की भावना मे वृद्धि होती है। इससे उनकी सामूहिक सौदा करने की शक्ति बढती है जिससे शक्तिशाली पूंजीपतियों द्वारा उनका शोषण नही हो पाता है।

2 कार्यकुशलता मे वृद्धि—इन सगठनो द्वारा श्रमिको की शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एव आर्थिक दशाओ म सुधार करने का प्रयास किया जाता है। इससे उनके जीवनस्तर और कार्य-कुशलता मे वृद्धि होती है।

3. उचित मजदूरी—श्रमिक सघो के विकास से श्रमिको को कम मजदूरी देकर उनके शोषण करने की प्रवृत्ति समाप्त हो गई।

4 औद्योगिक शान्ति—सुदृढ श्रम सघो के कारण से उनकी सामूहिक सौदाकारी शक्ति बढती है। वे मालिको के साथ बैठकर विभिन्न समस्याओ को आसानी से निबटा लेते हैं। इससे हडतालें तथा तालाबन्दी कम होती है और औद्योगिक शान्ति को इससे प्रोत्साहन मिलता है।

5 आदर्श श्रम नीति के निर्माण मे सहयोग—श्रमिक सघो द्वारा अपने प्रतिनिधियो को ससद तथा विधान सभाओ हेतु चुनकर भेजा जाता है। वहाँ ये ससद् अपने विचारो द्वारा श्रमिको के हितो को सरकार के सम्मुख रखते हैं। इससे एक आदर्श श्रम नीति के निर्माण मे सरकार को सहयोग मिलता है।

श्रमिक सगठनो से हानियाँ
(Disadvantages of Trade Unions)

श्रमिक सगठनो के इतने लाभ होने के बावजूद भी इनकी आलोचना की जाती है। इनकी हानियाँ निम्नलिखित है—

1 औद्योगिक अशान्ति—श्रमिक सघ कभी-कभी उद्योगो मे अच्छे उत्पादन के तरीकों अथवा विवेकीकरण (Rationalisation) की योजना को लागू करने का विरोध करते है। श्रमिक सघ नेताओ के बहकावे मे आकर श्रमिक हडताल करते हैं। इस औद्योगिक अशान्ति मे राष्ट्रीय उत्पादन मे गिरावट आती है।

2 राजनीतिक स्वार्थ—श्रमिक सघ के नेता अधिकाँशत किसी न किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखत हैं। वे अपनी स्वार्थ-सिद्धि हेतु श्रमिको को उकसाते हैं और उनके द्वारा हडतालें करवाते है।

3 श्रम का कृत्रिम अभाव पैदा करना—कभी-कभी श्रमिक सघ अपने ही व्यक्तियो को कार्य दिलाने हेतु श्रमिको की पूर्ति पर नियन्त्रण लाभ देते हैं और इसके परिणामस्वरूप उद्योगपतियो को श्रमिक प्राप्त नही हो पाते हैं।

श्रम सघ और मजदूरी
(Trade Unions & Wages)

यह सामान्य विचार है कि श्रम सघ अपने सदस्यो की सौदाकारी शक्ति मे सुधार करके श्रमिको की मजदूरी म वृद्धि कर सकता है। प्रतिष्ठित अर्थशास्त्रियो (Classical Economists) का मत था कि श्रम सघो द्वारा मजदूरी नही बढाई जा

सकती है। यदि मजदूरी बढाई जाती है तो इससे लाभ घटेगा और लाभ घटने से औद्योगिक उत्पादन तथा श्रम की माँग मे गिरावट आएगी और बेरोजगारी फैल जाएगी अत बेरोजगारी को दूर करने का एक मात्र उपाय मजदूरी म कमी करना है। मजदूरी का निर्धारण सीमान्त उत्पादकता द्वारा किया जाना चाहिए।

आधुनिक अर्थशास्त्रियो के अनुसार श्रमिक सघ मजदूरी को प्रभावित करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से श्रमिक सघ मजदूरी को प्रभावित नही करते हैं बल्कि अन्य आर्थिक शक्तियो के साथ सहयोग से मजदूरी मे स्थायी रूप से वृद्धि की जा सकती है। यह दो तरीको से सभव होती है—

1 जिन सस्थानो मे श्रमिको को उनकी सीमान्त उत्पादकता क मूल्य स कम मजदूरी देकर शोषण किया जाता है वहाँ श्रमिक सघ श्रमिको की सामूहिक सौदाकारी शक्ति में वृद्धि करके मजदूरी को सीमान्त उत्पादकता के मूल्य के बराबर बढाने म सफल हो जाते हैं।

2 श्रमिक सघ श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता म वृद्धि करने हेतु मालिको से उत्पादन के अच्छे तरीके अपनाने तथा सदस्यो की कार्य-कुशलता म वृद्धि पर जोर दे सकते है। जब श्रमिको की सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि होगी तो मजदूरी भी आसानी से बढाई जा सकती है।

3 श्रमिक सघ कुछ व्यवसायो मे श्रमिको की पूर्ति पर नियन्त्रण करके मजदूरी मे वृद्धि करवाने मे सफल हो सकते है लेकिन यह कई बातो पर निर्भर करता है—

(i) वस्तु को अन्य विकल्प से प्राप्त नही किया जा सकता, (ii) वस्तु की माँग बेलोचदार है तथा इसकी कीमत बढाई जा सकती है, (iii) वस्तु की कुल लागत का श्रम छोटा भाग हो।

इस प्रकार, श्रमिक सघ न केवल मौद्रिक आय का सीमान्त उत्पादकता मे वृद्धि करके अथवा पूर्ति पर नियन्त्रण लगाकर ही बढाने म सफल होते है, बल्कि मालिका पर दबाव डालकर श्रम व रोजगार की दशाओ मे सुधार करके वास्तविक मजदूरी मे वृद्धि करवाने मे सफल हो जाते हैं।

श्रम सघों के प्रकार
(Types of Trade Unions)

श्रमिक सगठनो क कई प्रकार होते हैं—

1 **क्राफ्ट यूनियन (*Craft Unions*)**—इन्हे श्रमिक सघ भी कहा जा सकता है। एक ही व्यवसाय अथवा कुछ सम्बन्धित व्यवसायो मे बनाया गया श्रमिक सघ इसके अन्तर्गत आता है। उदाहरणार्थ—अहमदाबाद बुनकर सघ (Ahmedabad Weavers Union) इसी प्रकार का सगठन है।

2 **औद्योगिक सघ (Industrial Unions)**—एक ही उद्योग मे विभिन्न व्यवसायो मे कार्य करने वाले श्रमिको का सगठन इसके अन्तर्गत आता है। उदाहरणाथ सूती वस्त्र उद्योग मे श्रमिक सघ बनाना।

3 **फेडरेशन (Federations)**—विभिन्न सघो को मिलाकर एक बडा सगठन बनाया जाता है। यह श्रमिको मे एकता की भावना पैदा करने हेतु बनाई जाती है। उदाहरणार्थ—अहमदाबाद टेक्सटाइल फेडरेशन । ये फेडरेशन स्थानीय, प्रान्तीय तथा राष्ट्रीय स्तर पर हो सकते हैं।

शक्तिशाली श्रम सघ की विशेषताएँ
(Characteristics of a Strong Trade Union)

श्रमिक सघो द्वारा न केवल श्रमिको के कार्य व रोजगार की दशाओ मे सुधार करके उनको उचित पारिश्रमिक दिलाने का कार्य किया जाता है बल्कि ये श्रमिको के कल्याणकारी कार्य उदाहरणार्थ—शिक्षा, सामाजिक सुरक्षा, आवास व्यवस्था आदि काय करते हैं। अत इन कार्यों के सफल सम्पादन हेतु श्रम सघो की निम्न विशेषताएँ होना आवश्यक है—

1 **अधिक सदस्यता**—श्रमिक सघ सुदृढ व सुसगठित तभी होगे जब उनकी सदस्य सख्या अधिक होगी। इससे उनकी सामूहिक सौदाकारी मे वृद्धि होती है।

2 **सुदृढ वित्तीय स्थिति**—श्रम सघो की वित्तीय स्थिति कमजोर होने पर वे विभिन्न प्रकार के कार्य सफलतापूर्वक नही कर सकते हैं। लम्बे समय तक हडतालें नही कर सकते तथा न ही कल्याणकारी कार्य बडे पैमाने पर प्रदान किए जा सकते हैं।

3 **श्रम नेता श्रमिकों मे से ही हों**—एक सुदृढ श्रम सघ के लिए यह आवश्यक है कि इनके नेता श्रमिको मे स ही होने चाहिए क्योकि वे ही सदस्यो के हितो को अच्छी तरह से नियोजको के सामने रख सकते हैं।

4 **शिक्षित सदस्य**—एक सुदृढ श्रमिक सघ हेतु यह भी आवश्यक है कि सदस्य शिक्षित हो। यदि सदस्य शिक्षित होगे तो उन्हे अपने अधिकारो तथा कर्त्तव्यो का पूरा ध्यान होगा।

5 **नियमित चन्दा**—श्रमिक सघ की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सदस्यो द्वारा नियमित रूप से चन्दा दिया जाए। इससे सदस्यो मे यह भावना उत्पन्न होती है कि उन्होने अपने सगठन म चन्दा देकर योगदान दिया है।

6 **मालिको और सरकार द्वारा मान्यता**—सुदृढ श्रमिक सघो के विकास हेतु यह आवश्यक है कि मालिको और सरकार द्वारा इनके महत्त्व को मान्यता दी जाए। *ऐसे वातावरण मे श्रम सघ अधिक विकास करने मे सफल हो सकगे।*

2 इंग्लैण्ड, अमेरिका और रूस में श्रम संघवाद : एक तुलनात्मक अध्ययन

(Present Position & Achievements of Trade Unions in U K , U S A , & U S S R : A Comparative Study)

इग्लैण्ड, अमेरिका और रूस मे श्रम सघवाद का प्रारम्भ—सर्वप्रथम औद्योगिक क्रान्ति इग्लैण्ड मे आई और इसके परिणामस्वरूप तेजी से औद्योगिक विकास हुआ । औद्योगिक विकास के साथ-साथ श्रमसघ भी बनने लगे । आज इगलैण्ड, अमेरिका और रूस औद्योगिक विकास मे सभी विकसित देशो मे सबसे आगे हैं । इस औद्योगिक विकास के साथ साथ श्रम सघो का विकास हुआ । इन देशो म आज सबसे अधिक सुदृढ श्रम सघ पाए जाते हैं । इगलैण्ड और अमेरिका मे श्रम सघो को देश की उन्नति मे एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप मे माना जाने लगा है। श्रम सम्बन्धी कार्यो समझौतो, श्रम-कल्याण सामाजिक सुरक्षा आदि मे श्रम सघ महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते है । सामूहिक सौदाकारी सुदृढ होने के कारण सरकार एक पक्षीय निर्णय नहीं ले सकती है । इगलैण्ड मे तो श्रम सघो ने राजनीति मे भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। श्रम दल की कई बार सरकार भी बनी है। इस प्रकार तीनो ही देशो मे सुदृढ श्रम सघो तथा उनकी श्रम मामला मे महत्त्वपूर्ण भूमिका के कारण इनका अध्ययन आवश्यक हो जाता है । अन्य देशो म श्रम सघ इतने सुदृढ एव सुसगठित नही हैं ।

अब हम तीनो ही देशा के श्रम सघा एव उनकी काय प्रणाला का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करेंग ।

इगलैण्ड मे श्रम सघ
(Trade Unions in England)

ब्रिटेन के श्रमिक सघ औद्योगिक क्रान्ति की देन है । औद्योगिक क्रान्ति म पूर्व अधिकाँश उद्योग धन्धे घरो मे ही चलाए जाते थे । इस स्थिति म श्रम सघो की आवश्यकता महसूस नही हुई । परन्तु एक ही वस्तु का उत्पादन करन वाले कुशल कारीगरो के सगठन (Craft Guilds) मध्य युग मे देखने का मिलते है । मालिक व मजदूर स्वय श्रमिक ही होते थे । इनका कार्य दस्तकारो को सरक्षण प्रदान करना था । आधुनिक श्रम सघो का विकास औद्योगीकरण के परिणामस्वरूप हुआ । ये विस्तृत आधार पर सगठित किए जाते है ।

आधुनिक श्रम संघों का विकास
(Growth of Modern Trade Unions)

आधुनिक उद्योगों के विकास के परिणामस्वरूप आधुनिक श्रम संघों का विकास हुआ। कारखाना प्रणाली के परिणामस्वरूप श्रमिक और मालिक के रूप में अलग-अलग वर्गों का प्रादुर्भाव हुआ। प्रारम्भ में श्रमिकों का शोषण होता था और शोषण के परिणामस्वरूप ही श्रमिक संघों का विकास हुआ। प्रारम्भिक वर्षों में श्रम दशाओं का नियमन राज्य द्वारा किया जाता था। श्रमिक और मालिक किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं कर सकते थे। जैसे-जैसे औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् देश का औद्योगीकरण हुआ, मजदूरी निर्धारण तथा श्रम दशाओं आदि के नियमन कार्य सरकारी हाथ से निकल कर मालिकों के हाथ में चले गए। फलत श्रमिकों का शोषण होने लगा। सन् 1792 में मित्रता समिति अधिनियम (Friendly Societies Act) द्वारा कुछ श्रम हितकारी कार्य किए जाते थे जैसे श्रमिकों को बेकारी तथा बीमारी के दिनों में सहायता प्रदान करना।

श्रमिकों में असन्तोष जारी रहा और वे संघ विरोधी अधिनियमों को समाप्त करने हेतु आन्दोलन करते रहे। फ्रांसिस प्लेस नामक दर्जी ने अनेक वर्षों तक इन अधिनियमों को समाप्त कराने का कार्य किया। अन्त में, सन् 1854 में संसद् के क्रान्तिकारी नेताओं विशेषकर जोसफ ह्यूम की सहायता से एक ऐसा अधिनियम पास कराया जिसके अन्तगत श्रमिकों को मजदूरी और कार्य के घण्टों के प्रश्न पर मालिकों से बातचीत करने हेतु संघ बनाने की अनुमति प्रदान की गई। परन्तु इस अधिनियम से कई हड़तालें हुई और देश में औद्योगिक अशान्ति फैल गई।

सन् 1825 के एक अधिनियम द्वारा श्रम संघों को मान्यता दी गई। इससे देश में अनेक श्रमिक संघों का निर्माण हुआ। परन्तु अधिकांश संघ छोटे व स्थानीय थे। सन् 1851 में श्रमिकों का एकीकृत या विलीनीकरण समाज (Amalgamated Society of Engineers) की स्थापना हुई। सन् 1871 में श्रम संघ अधिनियम (Trade Unions Act of 1871) बना, जिसके अन्तर्गत श्रमिक संघों को प्रथम बार वैधानिक मान्यता प्रदान की गई। किसी भी संघ को उद्योग के हितों के विरुद्ध कार्य करने पर अवैध घोषित नहीं किया जा सकता था। श्रमिक संघों को मित्रता समितियों के रजिस्ट्रार के पास पंजीयन कराने का अधिकार था। कोई भी पंजीकृत श्रम संघ भूमि व इमारत अपने स्वामित्व में रख सकता था। श्रम संघ के कोष को भी संरक्षण प्रदान किया गया। इस अधिनियम से अधिकांश कुशल श्रमिकों द्वारा श्रमिक संघ बनाने को प्रोत्साहन मिला। लेकिन सन् 1874 के पश्चात् अकुशल श्रमिक भी श्रम संघ बनाने में जुट गए। सन् 1900 की टैफवेल रेल्वे कम्पनी की हड़ताल के कारण श्रम संघ पर क्षतिपूर्ति देने का दायित्व ठहराया गया। इससे लोगों का श्रम संघों में विश्वास कम होने लगा। लेकिन सन् 1906 में औद्योगिक संघर्ष अधिनियम (Industrial Disputes Act of 1906) के अन्तर्गत न्यायालयों को शान्तिपूर्वक धरना तथा संघ के कार्यों के विषय में कोई भी मुकदमा लेने के लिए मना कर दिया गया।

श्रम सघ अधिनियम, 1913 (Trade Unions Act of 1913) के अन्तर्गत श्रमिक सघो को राजनीति मे भाग लेने और इसके लिए धन एकत्रित करने की छूट दी गई। इसके लिए अलग से कोष बनाने की छूट दी गई।

प्रथम महायुद्ध (1914-19) मे श्रमिक सघ अधिक शक्तिशाली बने। युद्ध-काल मे हडतालें समाप्त कर दी गई। परन्तु युद्ध की स्थिति के कारण नई-नई औद्योगिक समस्याएँ उत्पन्न हुईं और श्रमालय प्रतिनिधि (Shop Steward) आन्दोलन के रूप मे एक नया श्रम सघ आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। युद्ध के पश्चात् मदी आई इससे बेरोजगारी फैली। श्रमिको द्वारा हडतालें की गई। श्रम सघ अधिनियम, 1927 (Trade Unions Act of 1927) द्वारा हडतालो को अवैध घोषित कर दिया गया। सन् 1946 मे श्रम सघ अधिनियम द्वारा यह घोषणा की गई कि प्रत्येक सदस्य द्वारा राजनीति कोष मे चन्दा देना होगा जब तक कि वह छूट के लिए प्रार्थना न करे।

सघो की वर्तमान स्थिति और सगठन
(Present Position and Organisation of the Unions)

दूसरे महायुद्ध काल मे इगलैण्ड मे श्रम सघ आन्दोलन का तीव्र गति से विकास हुआ। इस आन्दोलन द्वारा श्रमिको के हितो तथा कल्याण हेतु कई कार्य किए गए। आज इगलैण्ड मे अधिकांश उद्योगो मे कार्यरत श्रमिक, जिनमे कृषि और जनोपयोगी सेवाएँ भी सम्मिलित है, श्रम सघो की सदस्यता प्राप्त कर ली है। इगलैण्ड मे श्रम सघ आन्दोलन 200 वर्ष पूर्व कुशल श्रमिको के सगठन के रूप मे शुरु हुआ था। लेकिन आज सभी प्रकार के सामान्य तथा अकुशल श्रमिक भी इसमे सम्मिलित कर लिए गए है। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् श्रम सघ की सदस्यता मे 25% की वृद्धि हुई। सन् 1946 मे ब्रिटेन मे श्रम सघ की सदस्यता 87,14,000 थी। सन् 1957 मे यह सख्या बढकर 9,700,000 हो गई।[1] सन् 1963 के अन्त मे यह सख्या बढकर 9 917 000 हो गई थी।[2]

दो शताब्दियो पूर्व इगलैण्ड मे श्रम सघ केवल कुशल दस्तकारो से प्रारम्भ हुआ था और बाद मे यह सामान्य श्रम एव अकुशल वर्गो मे भी फैल गया। हाल ही के वर्षो मे यह क्लर्क, सुपरवाइजरी तकनीकी और प्रशासनिक श्रमिको मे भी विद्यमान है। कुछ श्रम सघो की सदस्यता की योग्यता व्यावसायिक आधार है तथा अधिकांश की औद्योगिक है।[3]

सन् 1972 के अन्त मे ब्रिटिश श्रमसघो की सदस्यता लगभग 11 मिलियन थी। 466 श्रमसघ थे जिनकी 77% सदस्यता 25 बडे सघो मे थी जिनकी सदस्य सख्या 100,000 तथा इससे अधिक थी। गत दो दशको मे श्रम सघ सदस्यो की सख्या इनके एकीकरण (Amalgamation) से कम हुई है।[4]

1 *R C Saxena* Labour Problems & Social Welfare, p 122
2 *R R Singh* Labour Economics p 478
3 Britain, 1975 An Official Handbook, p 346
4 Britain, 1975 An Official Handbook, p 347

कुछ सघो के अ तर्गत एक या बहुत से दस्तकारी समूह आते है, जबकि दूसरी ओर किसी एक अथवा अधिक उद्योगो द्वारा श्रमिक सघ बनाए गए है। प्रत्येक सघ को अपने कार्य म स्वायत्तता प्राप्त है। इस प्रकार ब्रिटेन मे श्रमिक सघ स्थानीय, जिला एव राष्ट्रीय स्तरो पर बनाए गए हैं। अब श्रमिक सघ विभिन्न प्रकार के श्रमिको क्लर्को, तकनीको और सुपरवाइजरो-सभी मे फैल रहा है। व्यापार परिषदें (Trade Councils) भी विभिन्न उद्योगो मे कार्यरत श्रमिको के बीच सहयोग की भावना उत्पन्न करने के लिए स्थापित की गई हैं। ब्रिटेन का श्रम सघ आन्दोलन कुशल श्रमिको के श्रम सगठनो के रूप मे बहुत ही सुदृढ है। सबसे महत्त्वपूर्ण श्रम सघो का कार्य सामूहिक सौदाकारी द्वारा मालिको के साथ विभिन्न समझौते करना है।

इगलैण्ड मे फेडरेशन (Federations) की स्थापना भी कर दी गई है। इनका कार्य नीति निर्धारण करना है। इगलैण्ड में केन्द्रीय सगठन ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Trade Union Congress) के हाथ मे है। अधिकांश श्रम सघ इसी से सम्बद्ध है। इसकी स्थापना सन् 1868 म की गई थी। यह श्रम मामलो की ससद् है। इसकी एक सामान्य परिषद् (General Council) का गठन सन् 1921 मे किया गया था। ट्रेड यूनियन काँग्रेस को सरकार द्वारा मान्यता प्राप्त है। यह सरकारी विभागो और सगठित श्रमिको के सगठनो के बीच विचार-विमर्श एव परामर्श की कड़ी का काय करती है।

ब्रिटिश श्रम सघो की सफलताएँ
(Achievements of the British Trade Unions)

ब्रिटेन के श्रम सघो का श्रमिको की दशाओ को सुधारने तथा उनके कल्याण मे वृद्धि करने के रूप मे महत्त्वपूर्ण एव प्रशसनीय कार्य किया है। इसकी सफलताएँ निम्नलिखित है—

1 कार्य की दशाओ मे सुधार—ब्रिटेन के श्रमसघो द्वारा श्रमिको के कार्य की दशाएँ सुधारने तथा श्रम कल्याण के कार्यो के रूप म महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। आज इगलैण्ड की सभी मिलो मे प्रकाश, वायु जल सफाई व पर्याप्त सुरक्षा आदि सुविधाएँ विद्यमान है। इन सबका श्रेय श्रमिक सघो को दिया जा सकता है।

2 सघो द्वारा कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था—श्रमिको को मालिको और सरकार से अनेक प्रकार की सुविधाएँ एव सुरक्षा दिलाने के अलावा श्रमसघ भी श्रमिको हेतु कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था करते है। बीमारी दुर्घटना, मृत्यु आदि की दशा मे श्रमिक सघ मदद करते है। श्रम सघ अपन सदस्यों को आर्थिक सहायता भी देते हैं। कुछ सघो द्वारा सदस्यो हेतु आराम देने के लिए विश्राम गृहो (Convalescent Homes) की स्थापना भी की गई है।

3 कानूनी सरक्षण—श्रमिक सघ अपने सदस्यो को दुर्घटना अथवा अन्य किसी प्रकार की कानूनी कार्यवाही के समय कानूनी सहायता देकर उनकी मदद करते है। उसकी ओर से मुकदमा लडत है तथा समझौते की बातचीत करक झगडे को निबटान का प्रयास भी करते है।

4. शैक्षणिक सुविधाएँ—अनेक श्रमिक सघ अपने सदस्यो की बौद्धिक एव सामान्य उन्नति हेतु शिक्षा सम्बन्धी सुविधाएँ प्रदान करते है। श्रमिको के शैक्षणिक सघ (Workers Educational Association) और श्रम महाविद्यालयो की राष्ट्रीय परिषद् (National Council of Labour Colleges) की स्थापना की जा चुकी है जहाँ विभिन्न विषयो के अध्ययन हेतु सदस्यो को छात्रवृत्तियां और आर्थिक सहायता प्रदान की जाती है।

5 कारखाना समिति की स्थापना—ब्रिटेन की ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने मिल-मालिको के साथ पूरा सहयोग करने हेतु स्थायी श्रमिक क्षतिपूर्ति एव कारखाना समिति (Standing Workmens' Compensation and Factory Committee) की स्थापना की गई है यह श्रमिको के सर्वांगीण विकास हेतु मिल-मालिको से विचार-विमर्श करती है।

6 औद्योगिक शान्ति—ब्रिटेन के श्रम सघो का देश की औद्योगिक प्रणाली तथा औद्योगिक सम्बन्धो की मशीनरी मे महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह औद्योगिक सम्बन्धो को मधुर बनाए रखने मे सफल रहे हैं। इससे कम विवाद उत्पन्न होते है।

7. आवास समस्या—श्रमिक-सघो ने सदस्यो की आवास समस्या की ओर भी ध्यान दिया है। इसकी उन्होने उपेक्षा नही की है।

इस प्रकार, ब्रिटेन के श्रमिक सघो से सरकार आर्थिक, सामाजिक और सुरक्षा सम्बन्धी विषयो पर विचार-विमर्श करती है। इनका इतना अधिक महत्त्व बढ गया है कि इनकी उपेक्षा कोई भी नही कर सकता है।

अमेरिका मे श्रमसंघ
(Trade Unions in the U S.A)

'अमेरिका म श्रमसगठनो का इतिहास बहुत पुराना है। अमेरिका मे कार्यरत लोगो द्वारा सगठन, सरक्षण और व्यावसायिक हितो की उन्नति के अधिकार तथा सामूहिक सौदा करने और यदि आवश्यकता हो तो हडताल करना आदि एक रिवाज और कानून बन गया है।'[1]

अमेरिका म स्वतन्त्रता की घोषणा के पूर्व (सन् 1776) भी दस्तकारी एव घरेलू उद्योगो मे लगे श्रमिको ने श्रमसघ बना रखे थे। जैसे-जैसे औद्योगीकरण हुआ वैसे वैसे श्रमिको और मालिको के बीच की खाई बढने लगी। सन् 1770 के आस-पास मे विभिन्न व्यापारो के कुशल श्रमिको ने सघ बनाना शुरू कर दिया था लेकिन ये अस्थायी सगठन थे। सबसे पहले स्थायी सगठन के रूप मे सन् 1794 मे फिलाडेल्फिया के जूता बनाने वालो ने सगठन बनाया। सन् 1827 मे विभिन्न व्यवसायो मे लगे श्रमिको ने सगठन बनाने शुरू कर दिए।

गृह-युद्ध (1861-65) तथा इसके पश्चात् श्रम सघो का काफी तेजी से विकास हुआ। आधुनिक उद्योगो की स्थापना तथा उनके तीव्र विकास से श्रम सघो को प्रोत्साहन मिला। सन् 1870 तक कई व्यापारो मे राष्ट्रीय स्तर के सघ बने।

1 *Roberts B C* Trade Union in a Free Society, p 99

राष्ट्रीय श्रम सघ से असन्तुष्ट होकर लडाकू प्रवृत्ति वाले श्रम सघो ने सन् 1869 मे फिलाडेल्फिया मे सर्वप्रथम एक सामान्य सघ की स्थापना की। यह सर्व प्रथम राष्ट्रीय स्तर पर बनाया गया श्रम सघ था। इसे नाइट्स ऑफ लेबर (Knights of Labour) कहा जाता है। इसका उद्देश्य एक ऐसे समाज की रचना करना था जिसमे श्रमिको को उचित प्रतिफल मिले और उनका चहुँमुखी विकास भी हो सके। इनके कार्यक्रमो मे 8 घण्टे प्रतिदिन कार्य, स्त्री श्रमिको के लिए समान मजदूरी, बाल श्रमिको का उन्मूलन, चोट के लिए क्षतिपूर्ति आदि थे। इसका प्रभाव अकुशल श्रमिको पर भी पडा। श्रमिको मे असन्तोष व्यापक रूप से फैल गया था। इसलिए सन् 1883 मे एक स्थायी श्रम समिति तथा सन् 1884 मे राष्ट्रीय श्रम सस्थान (National Bureau of Labour) की स्थापना श्रम के सम्बन्ध मे आँकडे एकत्रित करने हेतु की गई।

श्रम का अमेरिकी सघ (American Federation of Labour)—सन् 1881 मे छ दस्तकारी सघो ने मिलकर सगठित व्यापारो और श्रम सघो के सघ (Federation of Organised Trades and Labour Unions F O T L U) की स्थापना की गई। सन् 1886 मे जब नाइट्स ऑफ लेबर ने दस्तकारी सघो को मान्यता देने से इन्कार कर दिया तो कई दस्तकारी सघो ने अलग से एक अमेरिकी श्रम सघ (A F L.) की स्थापना की जिसम बाद म F O T. L U भी मिल गई। अमेरिकी श्रम सघ का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा और श्री गोम्पर्स के विचारो से यह प्रभावित रही। इसकी सदस्य सख्या सन् 1899 मे 350 000 से बढकर सन् 1904 मे 1,675,000 हो गई। इसमे 90 राष्ट्रीय सघ शामिल थे।[1]

विश्व के औद्योगिक श्रमिक (Industrial Workers of the World or I W W)—अमेरिकी श्रमसघ की स्थापना के पश्चात् मालिको की ओर से श्रम सघो का विरोध किया जाने लगा। मालिक अपने समझौतो से मुकरने लगे तथा जनता के विचारो को प्रभावित करने लगे। कई मालिको ने हडतालो को समाप्त करने और श्रमिको की मनोभावना को कमजोर करने हेतु वैज्ञानिक प्रबन्ध की योजना लागू की। मालिको की इस प्रकार की नीति से क्षुब्ध होकर उग्रवादी श्रमिको ने अमेरिकी श्रम सघ को छोडकर अलग से एक सगठन बनाया, जिसे विश्व के औद्योगिक श्रमिक (Industrial Workers of the World) कहा जाता है। इस सगठन ने सामूहिक सौदाकारी के स्थान पर प्रत्यक्ष कार्यवाही के माध्यम से श्रमिको की दशाओ को सुधारने का निश्चय किया। प्रथम महायुद्ध मे इस सगठन ने युद्ध विरोधी कार्य किया जिसके परिणामस्वरूप इसे दण्डित किया गया। इसके कार्यालयो को बन्द करवा दिया तथा इसके कार्यकर्त्ताओ को जेल मे डाल दिया।

प्रथम महायुद्ध काल मे नियोजको और श्रम सगठनो के बीच निकट का सम्बन्ध रहा। राष्ट्रीय युद्ध श्रम प्रमण्डल (National War Labour Board) के माध्यम से श्रमिको की शिकायतो को दूर किया जाता था। अमेरिकी श्रम सघ न कार्यकुशलता

1 *T N Bhagoliwal* Economics of Labour and Social Welfare, 31

के माध्यम से मजदूरी बढ़ाना और संघ विरोधी तथा उत्तरदायित्व-हीनता की भावना को समाप्त करने के लिए कई कार्यक्रम अपनाए ।

तीसा की महान मंदी (1929 33) में श्रमिकों में बेरोजगारी फैल गई । इस आर्थिक संकट से देश की अर्थव्यवस्था को उबराने हेतु नवीन आर्थिक नीति (New Deal) अपनाई गई । इसके लिए राष्ट्रीय औद्योगिक रिकवरी अधिनियम, 1933 (National Industrial Recovery Act of 1933) पास किया गया । इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक उद्योग में उचित प्रमाप स्थापित किए गए थे । अमेरिकी श्रमसंघ की सदस्यता 40% बढ़ी । सन् 1935 में इसकी सदस्यता 3 मिलियन से अधिक हो गई थी ।

औद्योगिक संघवाद–औद्योगिक संगठन हेतु कांग्रेस (Industrial Unionism–Congress for Industrial Organisation–C I O)—सन् 1880 से 1930 तक अमेरिकी श्रम संघ में दस्तकारी संघों (Craft Unions) का प्रभुत्व रहा । नई नीति (New Deal) के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रों में औद्योगिक संघ (Industrial Unions) बनाए गए । अमेरिकी श्रम संघ की 8 यूनियनों ने मिलकर औद्योगिक संघवाद की स्थापना की । सी आई ओ की स्थापना से कई उद्योगों में बड़े पैमाने पर संघों की स्थापना की गई । अमेरिकी श्रमसंघ के विभाजन से C I O का प्रभाव बढ़ा । दस्तकारी संघों में अर्द्ध-कुशल और अकुशल श्रमिक भाग लेने लगे ।

दूसरे युद्ध-काल और इसके पश्चात् श्रम-संघवाद (Unionism During and After Second World War)—संगठित श्रमिकों ने दूसरे महायुद्ध में सरकार का साथ दिया । युद्ध उत्पादन मण्डल (War Production Board) के संरक्षण में श्रमप्रबन्ध समितियों (Labour Management Committees) की स्थापना की गई । त्रिपक्षीय राष्ट्रीय युद्ध श्रममण्डल (National War Labour Board) द्वारा प्रत्यक्ष सहभागिता प्रदान की गई । सन् 1945-46 में कई लम्बी हड़तालें हुईं । सन् 1947 के श्रम प्रबन्ध अधिनियम (Labour Management Act of 1947) जिसे कि टैफ्ट हार्टले अधिनियम कहा जाता है, के अन्तर्गत श्रम संघों की कुछ क्रियाओं पर प्रतिबन्ध लगाए गए । इसके अन्तर्गत श्रमिकों की अनुचित कार्यवाहियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया । मालिकों की अनुचित कार्यवाहियों पर भी प्रतिबन्ध लगाया गया ।

सन् 1955 में ए. एफ. एल. और सी. आई. ओ. दोनों को मिलाकर ए. एफ. एल. सी. आई. ओ. की स्थापना की गई । दोनों की सदस्य संख्या 15 मिलियन थी । अमेरिकी अर्थव्यवस्था में श्रम संघों ने महत्वपूर्ण कार्य किया है । इसके अन्तर्गत कुल सदस्यता का 80% से भी अधिक भाग शामिल था । यह संगठन एक संघ न होकर राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संघों का संघ है । इससे 100 से भी अधिक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संघ आते हैं । 61 हजार से भी अधिक स्थानीय संघ भी शामिल किए गए हैं । 17 6 मिलियन राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय संघों में से 14 8 मिलियन ए एफ एल सी आई ओ से सम्बद्ध थे । श्रम संघों की एकता और सहयोग की

उन्नति हेतु यह एक स्वतन्त्र संघ है। 50 राष्ट्रीय संघो की सदस्यता 1 लाख या इससे अधिक सदस्यता सन् 1965 और सन् 1967 के श्रम सांख्यिकी संस्थान की राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ की निर्देशिका के अनुसार इनकी संख्या 186 थी। जो कि स्थानीय श्रम संघो के माध्यम से कार्य करती हैं और इनकी सदस्य संख्या 20 मिलियन श्रमिक थी, जिसमें से 18% महिला श्रमिक थे।[1] इन अधिकांश श्रम संघो म स्थानीय स्वायत्तता पायी जाती है जिनमे राष्ट्रीय नेतृत्व द्वारा किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया जाता है। इससे श्रम संघो और इनके सदस्यों मे घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित होते है। अब अमेरिकी श्रम संघ आन्दोलन मे एक वर्ग विशेष के आन्दोलन के स्थान पर कार्य और मजदूरी की ओर उत्सुकता की ओर अधिक झुकाव देखने को मिलता है। अमेरिकी श्रमसंघ निजी उद्यम को सहयोग प्रदान करता है। अमेरिकी श्रमसंघ राजनीति से स्वतन्त्र है तथा श्रम दल के अभाव मे भी श्रमिक संघो का राजनीति पर काफी प्रभाव है।

अमेरिकी श्रम संघ समाज का एक अभिन्न अंग है। मालिक श्रमिको पर 18वी सदी की भाँति हावी नहीं है। अब मालिको का दृष्टिकोण श्रम संघो पर प्रतिबन्ध के स्थान पर उन्हे रचनात्मक कार्य करने वाले संघो के रूप मे देखने का हो गया है। राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध बोर्ड की सहायता से श्रमिको ने विवेक और सूचना के आधार पर संघो का चयन किया है। प्रबन्धक का यह दायित्व है कि वह यह निर्धारित करे कि—

(1) एक विशिष्ट संघ एक रचनात्मक तथा कार्यशील संगठन होगा या नहीं।

(2) बहुमत से श्रमिक इस संघ को चाहते हैं अथवा नहीं।

यदि ये दोनो प्रश्न सकारात्मक है तो श्रमिकों मे अच्छे सम्बन्धों को प्रोत्साहित करें। यदि ये दोनों प्रश्न नकारात्मक है तो प्रबन्धक को यह वैधानिक अधिकार प्राप्त है कि वह इन संघो के निर्माण का विरोध करे। संघों को अपनी नीति, व्यवहार और दृष्टिकोण से प्रबन्धकों के साथ श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। गत दशक मे श्रम संघो द्वारा जीते गए चुनावों की संख्या मे कमी आने लगी है। इसके कुछ कारण है उदाहरणार्थ—कुछ श्रम संघ नेताओं का प्रतिकूल प्रचार प्रबन्धकों द्वारा स्वतन्त्र भाषण के अन्तगत श्रमिकों का विरोध करने की स्वतन्त्रता, छोटी कम्पनियों मे संगठन करने मे कठिनाई, अन्तर संघ प्रतियोगिता, सफेद कॉलर वाले श्रमिकों को संगठित करने मे कठिनाई आई।

अनिवार्य संघवाद (Compulsory Unionism) को ध्यान मे रखते हुए प्रत्येक प्रबन्धक को अपने दृष्टिकोण को निर्धारित करना होगा। इस सिद्धान्त का ~~ध करने वालों का कहना है कि इससे व्यक्तिगत स्वतन्त्रता समाप्त हो जाती है।

1 *T N Bhagoliwal* Economics of Labour and Social Welfare, p 35

अनिवार्य सघवाद से श्रम सगठनो के वित्त तथा सहयोग मे सभी सहयोग कर सकेंगे। जिससे सघ के महत्त्व को कम करने के प्रयास निष्प्रभावी होंगे।

श्री वी अग्निहोत्री (V Agnihotri) के अनुसार, "अमेरिकी श्रम सघ का प्रमुख उद्देश्य अपने सदस्यो की ओर से सामूहिक समझौते प्राप्त करना है।"[1] यही कारण है कि कई उद्योगो के मालिक इस बात को मानकर चलते हैं कि बिना श्रमिक सघो के सहयोग के कार्यकुशलता का प्राप्त नही किया जा सकता। श्रम सघो के माध्यम से लगभग वर्तमान समय मे 1,50,000 सामूहिक सौदे या प्रसविदे (Collective Agreements or Contracts) कार्यशील है। श्रमिकों के सामूहिक सौदो के लिए केवल व्यक्तिगत इकाइयां के श्रमिको को ही नही बल्कि विभिन्न इकाइयो तथा विभिन्न उद्योगो के श्रमिको को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए। अमेरिकी श्रम सघ आन्दोलन वहां के Labour Management Reporting and Disclosure Act of 1959 से नियमित व नियन्त्रित किया जाता है। इसी अधिनियम से श्रमिको की मजदूरी और कार्य की दशाओ का निर्धारण होता है। *अमेरिकी श्रम सघ आन्दोलन के इतिहास मे सन् 1955 का वर्ष एक सुनहरा वर्ष था* जबकि दो पारस्परिक विरोधी सगठना (A F L और C I O.) का 20 वर्ष बाद एकीकरण (Amalgamation) हुआ। AFL-CIO से 134 राष्ट्रीय श्रम सघ सम्बद्ध है और सन् 1968 मे कुल 18 मिलियन सगठित श्रमिको मे से लगभग 13 75 मिलियन श्रमिक इनके सदस्य थ।[2] अमेरिकी श्रम सगठन का इतना सुदृढ विकास हुआ है कि यह सार्वजनिक चुनावो म अपन प्रत्याशी को पूरा सहयोग देत है जाति भेदभाव का विरोध करते है तथा शिक्षा हेतु समान दर्जे की मांग करते हैं।

रूस मे श्रम संघ

(Trade Unions in the U. S S. R.)

इस देश म श्रम सघ का प्रादुर्भाव सन् 1905-7 मे हडताल समितियो, कारखाना समितियो एव श्रमिको द्वारा स्थापित अन्य सगठनो के माध्यम से हुआ। रूस एक समाजवादी राष्ट्र है। प्रारम्भ मे रूसी श्रम सघो का कार्य श्रमिको की कार्य की दशाओ मे सुधार करना था। बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व मे श्रम सघो ने रूसी क्रान्ति मे भी महत्वपूर्ण योगदान दिया। सन् 1928 मे श्रम सघो को समाजवादी नीति लागू करने की ओर लाया गया। अब श्रम सघो का कार्य *श्रमिको की* कार्य की दशाओ म ही सुधार करना नही है, बल्कि श्रमिको मे अनुशासन बनाए रखने तथा उत्पादन मे वृद्धि करने के महत्वपूर्ण कार्य किए जाते हैं। वे अपने सदस्यो की योग्यता एव कुशलता मे सुधार करते है तथा विभिन्न कारखानो म विवेकीकरण की योजना को भी लागू करवाते है। सन् 1957 मे श्रम सघो की 50वी वर्षगांठ मनाई गई थी जिसम 50,000,000 मजदूरी और वेतन भोगी श्रमिक थे। इनमे से 47,000,000 श्रमिक श्रम सघो के सदस्य हैं।[3] 1971 मे सदस्यता 9 2 मिलियन थी—

1 *Agnihotri V* Industrial Relations in India p 43
2 *R R Singh* Labour Economics p 499
3 *T N Blagolival* Economics of Labour & Social Welfare p 36

तालिका

सोवियत रूस मे श्रमिक संघ आन्दोलन[1]

वर्ष	सदस्यता	सघो की सख्या
1907	245335	652
1908	40000	—
1909	13000	—
1912	15000	65
1913	45000	118
1917	1500000	976
1921	8500000	—
1932	16500000	—
1939	25 मिलियन	168
1949	28500000	67
1954	40420000	43
1959	52780000	—
1971	902 मिलियन	25

यद्यपि श्रमसघ सरकारी[2] मशीनरी का एक महत्त्वपूर्ण अग हैं फिर भी उनका कार्य सरकारी अफसर से सामूहिक सौदा करना है। रूस मे श्रमिको के कार्य की दशाओ एव मजदूरी का निर्धारण अब भी श्रम सघो और प्रबन्धको के बीच सामूहिक सौदाकारी शक्ति के माध्यम से होता है। लेकिन यह सामूहिक सौदाकारी पूँजीवादी देशो से भिन्न होती है।

इस देश मे श्रम सघो का सगठन उद्योग के स्तर पर होता है। सबसे नीचे कारखाना समिति अथवा स्थानीय समिति (Factory Local Committee) होती है जिसका उत्पादक इकाई द्वारा चुनाव गुप्त मतदान पद्धति के आधार पर किया जाता है। प्रत्येक समिति द्वारा जिला स्तर, जिला स्तर द्वारा प्रान्तीय स्तर तथा प्रान्तीय स्तर से राष्ट्रीय स्तर पर चुनाव के माध्यम से श्रम सघो का गठन किया जाता है। सर्वोच्च श्रम सघ का गठन श्रम सघो के अखिल सघ परिषद् (All-Union Council of the Trade Unions) के रूप मे होता है। यह सभी श्रमिको के लिए कार्य करती है। रूस श्रम सघ आन्दोलन श्रमसघो के विश्व सघ (World Federation of Trade Unions) से सम्बद्ध है।

1 *Source* ILO—Trade Union Situation in U S S R, p 136

2 सोवियत रूस में श्रमिक सघ आन्दोलन अशोक कुमार भण्डारी, आर्थिक चेतना, सितम्बर-अक्तूबर, 1974, पृष्ठ 21

रूसी श्रम सघ का साम्यवादी स्वरूप प्रथम महायुद्ध के पश्चात् की देन है। यह स्वरूप ऐच्छिक सस्था तथा राज्य सस्था के बीच की स्थिति है। सदस्यता ऐच्छिक है।

सन् 1960 मे रूस मे 22 श्रम सघ थे जिनकी कुल सदस्य सख्या 53 मिलियन थी। प्रो वी अग्निहोत्री के अनुसार "रूसी श्रम सघ सैद्धान्तिक आधार पर क्षितिज रूप मे दो आधारो पर गठित किए गए है"[1]—

(1) किसी भी एक कारखाने, राज्य, फार्म अथवा अन्य किसी सस्था मे लगे व्यक्ति एक ही सघ से सम्बन्धित होते हैं।

(2) प्रत्येक सघ अर्थ-व्यवस्था के किसी एक भाग से सम्बन्धित होता है।

रूस मे श्रम सघ हमे समन्वय की दृष्टि से समानान्तर रूप मे—गणतन्त्र, क्षेत्रीय, आदि देखने को मिलते हैं। एक ही इकाई के सभी श्रमिक विभिन्न व्यवसायो के भेद को छोडकर एक ही सघ मे शामिल होते है। सभी श्रमिक सदस्य होने के कारण सदस्यता का स्तर ऊँचा होता है।

रूस मे श्रमिको पर हड़ताल करने का प्रतिबन्ध नही है। फिर भी वे हड़ताल नही करते हैं क्योकि उत्पादन के साधन उनके हैं। विवादो को रोकने तथा निबटाने के लिए कई निकायो (Bodies) की व्यवस्था है, उदाहरणार्थ श्रमसघ, कारखाना समितियाँ और उत्पादन समितियाँ। इन सभी समितियो मे श्रमिको के प्रतिनिधि होते है।

रूसी श्रम सघो द्वारा विविध प्रकार के रचनात्मक कार्य किए जाते है उदाहरणार्थ—पचवर्षीय योजनाओ के लक्ष्यो की पूर्ति, राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि, श्रमिको के जीवन स्तर म वृद्धि करना आदि श्रमिको को उत्पादन की नवीन नीतियो से परिचित कराने तथा उनकी कार्यकुशलता मे वृद्धि करने का भरसक प्रयत्न भी किया जाता है। श्रमिक सघो द्वारा श्रमिको हेतु आवास तथा मनोरजन केन्द्रो का निर्माण करने मे उद्योगो की सहायता करते हैं। उनके द्वारा श्रम शिविर, पुस्तकालय, वाचनालय, व्यायामशाला आदि की भी व्यवस्था की जाती है।

रूस, ब्रिटेन और अमेरिका के श्रम संघ की तुलना
(A Comparison of Trade Unionism in U. S. S. R., England and U. S. A.)

तीनो देशो के श्रमसघो का तुलनात्मक अध्ययन निम्न बिन्दुओ के आधार पर किया जा सकता है—

1 श्रम सघो की सुदृढ़ता—तीनो ही देशो मे श्रम सघो द्वारा एक महत्त्वपूर्ण श्रम शक्ति को जन्म दिया गया है। सभी श्रमिक शिक्षित होने के कारण सुदृढ एव सुसगठित श्रम सघ के महत्त्व को भली भाँति समझते हैं।

1 *Agmhotri V* · Industrial Relations in India, p 37

2. श्रम शक्ति की प्रकृति—तीनो ही देशो मे श्रम शक्ति स्थायी है और वह औद्योगिक क्षेत्रो म स्थायी रूप से रहने लगी है। इसके परिणामस्वरूप श्रम प्रवासिता, अनुपस्थिति तथा श्रम परिवर्तन की दर ऊँची नही पायी जाती है।

3 श्रमसघो का गठन—तीनो ही देशो मे श्रम सघो का गठन राष्ट्रीय आधार पर किया गया है। स्थानीय, जिला स्तरीय, प्रान्तीय स्तर और राष्ट्रीय स्तर पर श्रमसघो का गठन किया गया है तथा तीनो ही देशो मे राष्ट्रीय स्तर पर केवल एक सर्वोच्च सघ है जिससे सभी सघ सम्बद्ध है।

4 श्रम सघो का नेतृत्व—रूस, ब्रिटेन और अमेरिका मे श्रमिक सघो के नेता श्रमिको म से ही हैं। जब भी कोई औद्योगिक विवाद होता है तो उसको प्रस्तुत करने मे श्रमिक नेता किसी प्रकार की कमी नही रखते हैं।

5 कार्य दशाओ और मजदूरी का निर्धारण—सुदृढ एव सुसगठित श्रम सघ होने के कारण तीनो ही देशो म श्रमिको की कार्यदशाओ तथा मजदूरी दरो का निर्धारण सामूहिक सौदाकारी द्वारा होता है। इसके अन्तर्गत श्रमिको और प्रवन्धको के प्रतिनिधियो द्वारा भाग लिया जाता है। लेकिन रूसी श्रम सघो द्वारा किया गया सामूहिक सौदाकारी ब्रिटेन तथा अमेरिका से भिन्न है क्योकि रूसी श्रमिक सघ सरकार के अधीन है तथा उत्पादन के सभी साधनो पर सरकार का स्वामित्व है। रूसी सरकार का स्वय का दायित्व है कि वह औद्योगिक विवादो को रोकने तथा निबटाने के निरन्तर प्रयास करती रहे।

6 हडताल का अधिकार—तीनो देशो मे श्रमसघो को हडताल पर जाने की पूर्ण स्वतन्त्रता है फिर भी रूसी श्रमिक हडताल पर नही जाते है क्योकि उत्पादन के साधनो पर सरकारी स्वामित्व है।

7 वित्तीय स्थिति—तीनो देशो के श्रम सघो की वित्तीय स्थिति सुदृढ होने के कारण उनके द्वारा सदस्यो के लिए विभिन्न शैक्षणिक, मनोरजन, चिकित्सा, वाचनालय, पुस्तकालय, खेलकूद, आदि सभी प्रकार के कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था की जाती है। श्रम सघो की स्वय की इमारतें हैं और स्थायी कर्मचारी रखे जाते है।

8 औद्योगिक विवाद—औद्योगिक विवादो को रोकने तथा निबटाने के लिए औद्योगिक मशीनरी बनी हुई है। सामूहिक सौदाकारी तथा झगडो को निबटाया जाता है और इसके असफल होने पर वे हडताल पर जाते है। हडताल ब्रिटिश व अमेरिकी श्रम सघो का अन्तिम हथियार है जबकि रूसी श्रम सघ हडताल पर नही जाते हैं।

9 श्रम सघो मे प्रतिस्पर्द्धा—तीनो देशो मे अन्तर-यूनियन प्रतिस्पर्द्धा नहीं है जैसा कि भारत मे पाया जाता है तथा सभी श्रम सघ केन्द्रीय श्रम सघ (Central Trade Unions) से सम्बद्ध हैं।

10 राष्ट्रीय महत्त्व—तीनो ही देशो मे श्रम सघ देश के राष्ट्रीय उत्पादन बढाने मे सरकार को पूर्ण सहयोग प्रदान करते है। रूसी श्रम सघो का कार्य अब केवल

श्रमिको की दशाओ को सुधारने तक ही सीमित नही है, बल्कि ये सरकार की समाजवादी नीतियो को लागू करने के कार्यक्रम से भी सम्बद्ध हैं।

ब्रिटेन व अमेरिका के श्रम सघ एक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत कार्य करते है। वे सरकार का विरोध भी कर सकते हैं तथा प्रत्यक्ष कार्यवाही हेतु हडताल पर भी जा सकते हैं। ब्रिटेन मे राजनीति पर भी श्रमिको का महत्त्वपूर्ण प्रभाव रहा है और कई बार श्रमिको की सरकारें बनी हैं। अमेरिका मे श्रमिक सघो का सरकार की श्रम नीति प्रभावित करने मे योगदान रहा है, लेकिन कोई अलग से श्रम दल (Labour Party) बनाया हुआ नही है। रूस मे श्रमिक प्रत्यक्ष कार्यवाही नही कर सकते हैं और न ही उनका सरकार पर प्रभाव है क्योकि राज्य स्वय उत्पादन के साधनो का स्वामी है तथा सरकार का यह दायित्व है कि श्रमिको के हितो की सुरक्षा करे। दूसरी ओर श्रमिक सघ भी सरकार की विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ के लक्ष्य प्राप्त करने तथा समाजवादी नीतियो को लागू करने मे सरकार का एकजुट होकर साथ देते है।

3 भारत में औद्योगिक श्रम का विकास और इसकी मुख्य विशेषताएँ

(Growth of Industrial Labour in India & its chief Characteristics)

आदिकाल से ही भारतीय समाज मे श्रमिक का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। प्राचीन भारतीय समाज चार वर्गों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र एव वैश्य मे बँटा हुआ था। वैश्य वर्ग ही खेती, उद्योग एव व्यापार मे लगा रहता था। प्राचीन ग्रन्थो विशेष रूप से कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा मनुस्मृति आदि से पता चलता है कि उन दिनो मे श्रमिको की दशा सन्तोषजनक थी। श्रम सगठनो को सरकार की ओर से मान्यता प्राप्त थी। शासक ही श्रम विवादो का निपटारा किया करता था।

हमारे देश की कुल जनसख्या का 80% ग्रामीण क्षेत्रो मे निवास करता है। 70% जनसख्या कृषि कार्य मे लगी हुई है। ग्रामीण अर्थव्यवस्था मे जडता (Stagnation) पायी जाती है क्योकि एक ओर जनसख्या का भार अधिक बढ गया है तथा दूसरी ओर रोजगार के अवसरो की कमी है। 19वी शताब्दी मे अन्य विकसित देशो की भाँति हमारे देश का औद्योगिक विकास तीव्र गति से नही हो सका क्योकि एक ओर कृषि की प्रधानता तथा दूसरी ओर भारतीय समाज की विशेषताएँ ऐसी थी जिससे औद्योगिक विकास के मार्ग मे अनेकानेक बाधाएँ आई।

प्राचीन भारत मे औद्योगिक श्रम—सन् 1918 की औद्योगिक आयोग रिपोर्ट के अनुसार, "जिस समय आधुनिक उद्योग-धन्धो की जन्म भूमि पश्चिमी यूरोप मे असभ्य जातियाँ निवास करती थी, उस समय भारत अपने शासको की सम्पत्ति व शिल्पियो की उच्चकोटि की कला के लिए प्रसिद्ध था।" इसी बात को ब्रिटिश इतिहासकार एडवर्ड थार्नटन ने लिखा है कि, "नील नदी की घाटी मे जब पिरामिड देखने को मिलते थे, तब आधुनिक सभ्यता के केन्द्र इटली व ग्रीस जगली अवस्था मे थे, उस समय भारत विश्व के वैभव व सम्पत्ति का केन्द्र था।' प्राचीन समय मे भारत के श्रमिक प्रगति की चरम सीमा पर थे कि उस समय भारत को 'विश्व की औद्योगिक उद्योग धन्धे कार्यशाला' (Industrial Workshop of the World) कहा जाता था।

इतनी विकसित अर्थव्यवस्था के होने के बाद द भी सन् 1659 तक हमारे देश मे उत्पादन के बडे उद्योग नही थे। अधिकाँश उत्पादन छोटे छोटे कारखानो अथवा कुटीर उद्योगो के रूप मे चलाए जाते थे। प्रत्येक ग्राम मे कुम्हार, लुहार, सुनार, रगरेज, बढई, तेली आदि रहते थे। वस्तु विनियम प्रणाली प्रचलित थी।

बचत सोने के रूप मे रखी जाती थी। बैंकिंग तथा वित्तीय सस्थाओ का विकास नही हो पाया था। सन् 1757 से सन् 1881 के काल मे भारतीय कुटीर उद्योगो के पतन के कारण भूमिहीन श्रमिको की सख्या बढने लगी और उनमे बेरोजगारी फैल गई। अंग्रेजी शासन की जड मजबूती से जम जाने के कारण नए सामन्त वर्ग का उदय, देशी राजा व नवाबो का अन्त, विदेशी निर्मित माल से प्रतिस्पर्द्धा, स्वतन्त्र निर्यात-आयात की नीति आदि तत्वो का प्रादुर्भाव हुआ।

19वीं सदी मे औद्योगिक श्रम—भारतीय उद्योग धन्धो का विनाश होने से हस्त-कला मे लगे श्रमिक शहरो को छोडकर ग्रामीण क्षेत्रो मे आकर बसने लगे। इससे एक ओर कृषि पर जनसख्या का भार बढने लगा तथा दूसरी ओर भूमिहीन श्रमिको की सख्या मे वृद्धि हुई सन् 1853 मे प्रथम बार रेलवे लाइन बिछाई गई और 19वी शताब्दी के अन्त तक विभिन्न यातायात के साधनो का विकास हुआ। विदेशी वस्तुएँ हमारे देश मे बिकने आती थी और उनकी प्रतियोगिता से हमारे उद्योगधन्धे चौपट होने लगे। 19वी शताब्दी मे अँग्रेज व्यापारियो द्वारा बागानो,खानो, यातायात के साधनो तथा उद्योगो आदि मे अपना कार्य शुरू किया। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न क्षेत्रों मे श्रमिको की माँग बढी। इससे बडे पैमाने के कारखानो का विकास किया जाने लगा। उदाहरणार्थ सूती वस्त्र उद्योग मे मिलो की सख्या सन् 1879–80 ई मे 85 से बढकर सन् 1913–14 मे 264 हो गई। इन मिलो मे कार्यरत श्रमिको की सख्या क्रमश 39,537 और 2,60,847 थीं। जूट मिलो की सख्या 22 से 64 हो गई थी। इनके अतिरिक्त इस अवधि मे अन्य उद्योगो का भी जन्म हुआ, उदाहरणार्थ—कागज, सीमेन्ट, लौह एव स्पात, मैंगनीज, चमडा आदि।

इस शताब्दी मे मालिको द्वारा श्रमिको को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी। कार्य के घण्टे भी अधिक थे। बाल और महिला श्रमिको से रात को कार्य लिया जाता था। सन् 1881 से पूर्व कोई कारखाना अधिनियम नही था। यहाँ श्रम बहुत सस्ता था। इससे ब्रिटिश सूती वस्त्र उद्योग के मालिको को ईर्ष्या हुई और उन्होने भारत के सेक्रेटरी ऑफ स्टेट से मिलकर सन् 188। मे सर्वप्रथम कारखाना अधिनियम पास करवाया। 19वी शताब्दी के अन्त तक श्रमिक भी मालिको द्वारा किए जाने वाले शोषण के विरुद्ध आवाज उठाने लग गए थे। उन्होने हडताल रूपी शस्त्र का उपयोग शुरू कर दिया था।

अधिकांश उद्योगो मे योरोपीय पूँजी और विशेषज्ञ लगे हुए थे। प्रो. गाडगिल के अनुसार—"उद्योगो पर निर्भर जनसख्या 21,05,824 थी, जिनमे से बागान उद्योग, वस्त्र उद्योग, खान उद्योग तथा परिवहन सम्बन्धी उद्योगो मे क्रमश 8,10,407, 5,57,589, 2,44,087 तथा 1,25,117 व्यक्ति काम करते थे, अर्थात् जनसख्या का 81% भाग केवल चार बड़े उद्योगो मे लगा हुआ था।"[1]

प्रथम महायुद्ध और उसके पश्चात् औद्योगिक श्रम—प्रथम महायुद्ध

1 *Gadgil* Industrial Revolution of India, p 114–15

(1914–18) म युद्ध सामग्री के कारखानो मे श्रमिकों की काफी माँगें बढी। युद्धकाल मे बम्बई म सूती वस्त्र मिलो का काफी विकास हुआ। प. बगाल मे जूट और कोयला उद्योग, उडीसा तथा म प्र मे लोहू एव स्पात उद्योग का विकास हुआ। उत्पादन भी तीव्र गति से बढा। युद्ध के प्रारम्भ मे कारखानो की सख्या 2,936 थी वह अन्त मे बढकर 3436 हो गई। श्रमिको की सख्या इन कारखानो मे 9½ लाख से बढकर 11 लाख हो गई। इस अवधि मे औद्योगीकरण अनियोजित था। इसमे कई दोप थे। उदाहरणार्थ श्रमिको की कार्य की खराब दशाएँ, निम्न जीवन-स्तर, सामान्य व तकनीकी शिक्षा का अभाव आदि। इस अवधि मे श्रमिको की कार्य-कुशलता निम्न थी, मजदूरी व उत्पादकता भी कम थी तथा कार्य के घण्टे अधिक थे। प्रो वीरा एन्स्टी (V Anstey) के अनुसार, "कच्चा माल तथा औद्योगिक सम्भावनाओ की दृष्टि से भारत उस समय धनाढ्य था, किन्तु निर्माणी-उपलब्धियो मे वह गरीब था।"[1] इस अवधि मे सूती व जूट मिलो का काफी विकास हुआ क्योकि विभिन्न देशो की माँग की पूर्ति इन्ही मिलो द्वारा की जाती थी।

प्रथम महायुद्ध काल मे उद्योगो की काफी प्रगति हुई, उन्होने काफी लाभ कमाया। सन 1920 मे मन्दी आने से वस्तुओ की माँगो मे कमी आ गई। सन् 1916 मे औद्योगीकरण की भावी सभावनाओ पर सिफारिश करने हेतु औद्योगिक आयोग (Industrial Commission) नियुक्त किया गया। इसने देश को आत्मनिर्भर बनाने के लिए देश के औद्योगीकरण मे सरकार को योगदान देने की सिफारिश की। सन् 1921 मे राजकोषीय आयोग (Fiscal Commission) नियुक्त किया गया। इसने विभेदात्मक नीति को व्यापार हेतु अपनाने की सिफारिश की। इससे तीव्र औद्योगीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

विश्वव्यापी महान् मन्दी (1929–33) के परिणामस्वरूप उद्योगो पर विपरीत प्रभाव पडा। बेरोजगारी फैल गई। कृषि मूल्यो मे गिरावट आने से कृषको की क्रय-शक्ति घट गई। इससे घरेलू वस्तुओ की माँग घट गई। इसी अवधि मे श्रम क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923, भारतीय श्रम सघ अधिनियम 1926, भारतीय श्रम सघर्ष अधिनियम 1929, भारतीय कारखाना अधिनियम 1929, बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम 1938 आदि महत्वपूर्ण श्रम अधिनियम पास किए गए।

दूसरे महायुद्ध (1939–45) मे फिर भारतीय उद्योगो के विकास को एक महत्वपूर्ण अवसर मिला। उद्योगो का पूर्ण उपयोग किया गया और पहले से अधिक पारियो मे कार्य चलाया गया।

सबसे महत्वपूर्ण प्रगति औद्योगीकरण के क्षेत्र मे स्वाधीनता के पश्चात् सन् 1948 के औद्योगिक नीति प्रस्ताव की घोषणा से शुरू हुई। विभाजन के कारण उद्योगो का बँटवारा असमान रहा। प्रो सी एन वकील के अनुसार कुल 12,675 सस्थानो मे से भारत मे 11,462 औद्योगिक सस्थान रहे। इस प्रकार राजकोषीय

1 *V Anstey* Economic Development of India, p 219

आयोग के अनुसार कुल औद्योगिक संस्थानो का 91% भारत मे तथा शेष 9% पाकिस्तान के हिस्से मे आया। अब भारतीय पचवर्षीय योजनाओ के अन्तर्गत औद्योगीकरण के तीव्र विकास के लिए कई योजनाएँ बनाई गई हैं। दूसरी योजना पूर्ण रूप से औद्योगीकरण से सम्बन्ध रखने वाली योजना थी। सन् 1936 मे मजदूरी भुगतान अधिनियम, *1946 मे औद्योगिक रोजगार अधिनियम*, 1947 मे औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1948 मे न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, कारखाना अधिनियम और कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम पास किए गए। स्वतन्त्रता के पश्चात् श्रम-विधान मे विभिन्न अधिनियमो की बाढ ही आ गई है। कारखाना अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत तीन प्रकार के कारखानो को शामिल किया गया है–

(1) वे कारखाने जिनमे शक्ति के साथ *10* या *10* से अधिक श्रमिक कार्य करते है,

(2) वे कारखाने जिनमे बिना शक्ति की सहायता से 20 या 20 से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं,

(3) वे कारखाने जिन्हे अधिनियम की धारा 85 के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा समय-समय पर लाया जाता है।

भारतीय अर्थ-व्यवस्था के सगठित क्षेत्र मे श्रमिको की सबसे अधिक सख्या कारखानो मे लगी हुई है। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार कारखानो मे कार्यरत श्रमिको की प्रतिदिन औसत सख्या 50 8 लाख है। सन् 1971 की जनगणनानुसार भारत मे कार्यरत जनसख्या का वितरण निम्न प्रकार है[1]—

भारत मे कार्यरत जनसख्या का वितरण

	पुरुष	स्त्रियां	कुल
कुल जनसख्या	28,39 36,614 (51 82%)	26,40,13,195 (48 18%)	54,79,49,809 (100%)
कुल श्रमिक	14,90,75,136 (52 50%)	3,12,98,263 (11 85%)	18,03,73,399 (32 92)
(i) काश्तकार	6,89,10,236 (38·20%)	92,66,471 (5 14%)	7,81,76,707 (43 34)
(ii) कृषि श्रमिक	3,16,94,984 (17 57%)	1,57,94,399 (8 76%)	3,74,89,383 (26 33)
(iii) पशुपालन, बागानादि	35,13 848 (1 95%)	7,82,953 (43%)	42,96 801 (2 38%)
(iv) खानें	7,98,696 (44%)	1,24,066 (07%)	9,22,762 (51%)
(v) निर्माणकारी, मरम्मत सेवाएँ			
(a) घरेलू उद्योग	50,20,893 (2 78%)	13,30,821 (74%)	63,51,714 (3 52)
(b) घरेलू उद्योग के अलावा	98,50,808 (5 46%)	8,64,997 (48%)	1,07,15,805 (5 94%)

1. *India—A Reference Annual, 1975*, p 291-92

	पुरुष	स्त्रियाँ	कुल
(vi) निर्माण	20,11,831	2,03,477	22,15,308
	(1 12%)	(11%)	(1·23%)
(vii) व्यापार और वाणिज्य	94,82,044	5,56 199	1,00 38,243
	(5 26%)	(31%)	(5 57%)
(viii) यातायात, संग्रह एव संदेशवाहन	42,55,257	1,45,944	44 01,201
	(2 36%)	(0 8%)	(2 44%)
(ix) अन्य सेवायें	1,35,36,539	22,28,936	1,57,65,475
	(7 5%)	(1 24%)	(8 74%)
(x) गैर-श्रमिक	13,48,61,478	23,27,14932	36,75,76,410
	(47 50%)	(88 15%)	(67 08%)

उपरोक्त आँकडो की सहायता से हम कुल जनसख्या मे पुरुष व महिला श्रमिको का अनुपात देख सकते हैं तथा विभिन्न उद्योगो एव व्यवसायो म श्रमिको का वितरण भी देख सकते हैं।

भारत मे औद्योगिक श्रम की विशेषताएँ
(Characteristics of Industrial Labour in India)

श्रम उत्पादन का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। यह मानवीय साधन है। एक दिन का श्रम बेकार जाने पर वह वापिस काम मे नही लाया जा सकता क्योकि श्रम नाशवान होता है। इसी प्रकार यह अन्य साधनो की तुलना मे कम गतिशील तथा उत्पादक होता है। यह सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एव अन्य प्रकार के तत्त्वो से प्रभावित होता है। ये सभी विशेषताएँ श्रम के उत्पादन के साधन के रूप मे पायी जाती हैं। अब हम यह देखेंगे कि भारतीय औद्योगिक श्रम की विशेषताएँ कौन-कौन-सी हैं।

1 प्रवासी प्रवृत्ति (Migratory Character)—भारतीय श्रमिको की सबसे प्रमुख विशेषता उसकी प्रवासिता है। श्रमिक अधिकाँशतया ग्रामीण क्षेत्रों से औद्योगिक क्षेत्रों म आकर कार्य करते हैं। वे ऊँची मजदूरी पाने की इच्छा से आते हैं। जनसख्या का अधिक भार, कुटीर और छोटे पैमाने के उद्योगो का पतन, भूमिहीन श्रमिक, सयुक्त परिवार प्रथा, निम्न जाति के साथ सामाजिक दुर्व्यवहार तथा अन्य सामाजिक अपराधो के परिणामस्वरूप श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रो को छोडकर शहरी क्षेत्रो मे आकर रहने लगते हैं। शहरी क्षेत्र का वातावरण, आवास की कमी, गदगी तथा अन्य दूषित बुराइयो के परिणामस्वरूप वे उद्योग को छोडकर वापिस गाँवो को चले जाते हैं। इस प्रकार प्रवासिता स्थायी न होकर अस्थायी है। यही कारण है कि हमारे देश म एक स्थायी श्रम शक्ति का अभाव है। शाही श्रम आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour) के अनुसार "उन्हे शहरो की ओर ढकेला जाता है, वे शहर की ओर आकर्षित नही होते।"[1] (They are pushed, not pulled to the city)

1 Report of the Royal Commission on Labour, 1931, p 16

इस प्रवासी प्रवृत्ति के कारण उद्योगो की कार्य-कुशलता तथा उत्पादकता पर गहरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिको को भी आर्थिक हानि उठानी पड़ती है। शहरो मे परिवार सहित न रहने के कारण श्रमिक अनेक सामाजिक बुराइयो उदाहरणार्थ शराबखोरी, जुआखोरी, वेश्यावृत्ति आदि का शिकार हो जाता है। श्रमिक सघो का सुदृढ एव सुसगठित विकास नही हो पाता है। श्रमिको मे अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन की दर मे वृद्धि होने लगती है। इसके परिणामस्वरूप एक स्थायी श्रम शक्ति का विकास नही हो पाता है।

2. अनुपस्थिति एवं श्रम-परिवर्तन (Absenteeism and Labour Turnover)—भारतीय श्रमिक अपने कार्य पर नियमित रूप से नही आते हैं। वे अपने कार्य से अनुपस्थित रहते हैं। शहरी क्षेत्र मे कार्य निरन्तर रूप से करना पड़ता है तथा कार्य की दशाएँ भी खराब होती है। इससे श्रमिक उकता जाता है। जलवायु परिवर्तन, फसल कटाई व बुवाई, न्यायालय व मुकदमे बाजी, श्रम प्रवासिता, बीमारी, रात्रि की पालियाँ, शहरो मे आवास की खराब दशाएँ, सामाजिक बुराइयाँ, औद्योगिक बीमारियाँ व दुर्घटनाएँ, प्रबन्धको का दुर्व्यवहार आदि कारणो से भारतीय श्रमिक अपने कार्य पर नियमित रूप से नही आने के कारण अनुपस्थिति की दर ऊँची पायी जाती है।

इस ऊँची अनुपस्थिति की दर से न केवल श्रमिको को कम मजदूरी तथा स्थायी लाभो मे कमी के रूप मे हानि होती है, बल्कि मालिको, समाज और राष्ट्र को भी इससे हानि होती है। औद्योगिक उत्पादन मे गिरावट तथा समाज को उचित मूल्यो पर वस्तुएँ नही मिल पाती हैं।

भारतीय श्रमिको मे श्रम परिवर्तन (Labour Turnover) की विशेषता भी देखने को मिलती है। भारतीय उद्योगो मे नए श्रमिको द्वारा उद्योग मे प्रवेश करना तथा पुराने श्रमिको को उद्योग को छोडने की प्रवृत्ति को श्रम परिवर्तन कहा जाता है। भारतीय श्रमिक मे यह प्रवृत्ति बहुत पायी जाती है जिसके कई कारण हो सकते हैं। श्रमिको की मृत्यु, औद्योगिक दुर्घटनाएँ, उद्योग में भावी उन्नति के अवसरो की कमी, कार्य की खराब दशाओ का होना, श्रमिको मे अनुशासनहीनता, श्रमिको मे प्रवासी प्रवृत्ति, बदली प्रथा, ग्रामीण क्षेत्र से लगाव आदि के कारण श्रमिक परिवर्तन की दर ऊँची पायी जाती है।

श्रम परिवर्तन की ऊँची दर से श्रमिको,श्रम सगठनो, मालिको व राष्ट्र सभी को हानि उठानी पडती है। श्रमिको को स्थायी लाभ प्राप्त नही होते है। मालिको को स्थायी श्रम शक्ति नही मिल पाती है। श्रम सघ सुदृढ व सुसगठित आधार पर विकसित नही हो पाते हैं। कार्यकुशलता मे कमी होने से उत्पादन पर गहरा प्रभाव पडता है जिससे समाज व राष्ट्र को हानि होती है।

3. अज्ञानता एवं शिक्षा का निम्न स्तर (Ignorance and Low Level Literacy)—भारतीय श्रमिक अज्ञानी एव अशिक्षित हैं। सन् 1971 की जनगणना के अनुसार कुल जनसख्या का 29 45% भाग शिक्षित है। श्रमिको की शिक्षा का

स्तर और भी निम्न है। शिक्षा के निम्न स्तर से उनमे तकनीकी ज्ञान, सामान्य ज्ञान आदि की कमी होने से उनकी कुशलता को नही बढाया जा सकता है। अज्ञानता का मूल कारण भी शिक्षा का निम्न शिक्षा स्तर है। खानो और बागान श्रमिको मे अशिक्षा का प्रतिशत क्रमश 89 96 और 87·21 है। भारतीय औद्योगिक श्रमिको मे अशिक्षा व अज्ञानता के कारणो मे शिक्षा सुविधाओ का अभाव, निर्धनता, धन का असमान वितरण, व्यावसायिक प्रशिक्षण केन्द्रो का अभाव आदि प्रमुख हैं। इस क्षेत्र मे सन् 1958 मे श्रमिको की शिक्षा हेतु केन्द्रीय मण्डल (Board for Workers' Education) की स्थापना की गई है। इस योजना के अन्तर्गत शिक्षा अधिकारी (Education Officer) श्रमिको के अध्यापक (Workers' Teacher) तैयार करके कारखानो मे श्रमिको की शिक्षा हेतु भेजे जाते हैं। लेकिन अभी भी श्रमिको की शिक्षा का स्तर निम्न है।

4. निम्न जीवन स्तर (Low Standard of Living)—भारतीय औद्योगिक श्रमिको का जीवन-स्तर नीचा है। अधिकांश श्रमिको को इतनी कम मजदूरी मिलती है कि उनकी न्यूनतम आवश्यकताएँ भी पूरी नही हो पाती हैं। जब निम्न आय होती है तो इससे रहन-सहन का स्तर भी निम्न पाया जाता है। प्रो नर्कसे ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'अविकसित देशो मे पूँजी निर्माण की समस्याएँ' (Problems of capital formation in underdeveloped countries) मे बताया है कि किस प्रकार एक निर्धनता का दुष्चक्र (Vicious circle of Poverty) किसी भी देश को निर्धन ही बनाए रखता है। इसी प्रकार भारतीय औद्योगिक श्रमिको की आय निम्न है क्योकि उनकी उत्पादकता कम है और निम्न आय होने के कारण उसका जीवन-स्तर भी निम्न पाया जाता है और निम्न जीवन-स्तर से निम्न कार्य-कुशलता, निम्न उत्पादकता और निम्न आय की प्रक्रिया चलती रहती है और इस प्रकार भारतीय औद्योगिक श्रमिक इस निर्धनता और निम्न जीवन-स्तर के दुष्चक्र मे फँसा रहता है।

5 निम्न कार्यकुशलता (Low Efficiency)—भारतीय औद्योगिक श्रमिको को कार्य-कुशलता पाश्चात्य श्रमिको की तुलना मे बहुत कम है। इग्लैण्ड के श्रमिक जितना कार्य भारतीय श्रमिको द्वारा किया जाता है। निम्न कार्य-क्षमता के पीछे कई कारण है। निम्न मजदूरी दर, खराब कार्य की दशाएँ, पुराने उत्पादन के तरीके, मालिको का व्यवहार, आवास आदि तत्त्वो के कारण निम्न कार्य-कुशलता पायी जाती है। अत कार्य-कुशलता को दूर करने हेतु उपरोक्त कारणो का निवारण करना होगा।

6 सुदृढ एव सगठित श्रम संघ का अभाव (Lack of a strong and well-organised Trade Union)—भारतीय औद्योगिक श्रमिको मे एकता का अभाव है। श्रमिको मे प्रवासिता की प्रवृत्ति, अनुपस्थिति, श्रम परिवर्तन, अशिक्षा व अज्ञानता आदि कारणो से हमारे देश मे श्रमिको के सगठनो का सुदृढ एव सुसगठित विकास नही हो पाया है। भारतीय औद्योगिक श्रमिक पाश्चात्य देशो की भाँति श्रम शक्ति का एक स्थायी भाग नही है। श्रम सघ दुर्बल होने के कारण उनकी सामूहिक

सौदाकारी शक्ति दुर्बल है और मालिक उनका शोषण करता है। साथ ही अशिक्षा तथा अज्ञानता के कारण वे नियमित रूप से चन्दा नही देते है और न ही श्रम सघो के महत्त्व को समझते हैं। श्रम सघो के नेता भी श्रमिको मे से न होकर बाहरी व्यक्तियो मे से होते हैं।

7. सामाजिक व धार्मिक विचारधारा (Social & Religious Attitudes)—भारतीय श्रमिको की प्रमुख विशेषता उनके सामाजिक एव धार्मिक दृष्टिकोण से सम्बन्धित है। सामाजिक रीति-रिवाज तथा धार्मिक दृष्टिकोण के कारण श्रमिक की गतिशीलता, उत्पादकता, नियमित उपस्थिति आदि मे बाधक होते हैं। जाति प्रथा, सयुक्त परिवार प्रथा, छुआछूत, आदि सामाजिक एव धार्मिक दृष्टिकोणो का परिणाम है। इन विशेषताओ से श्रमिक की कार्य-कुशलता पर विपरीत प्रभाव पडता है।

निष्कर्ष—26 जून, 1975 से आपातकालीन स्थिति की घोषणा तथा 1 जुलाई, 1975 को हमारी प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी द्वारा घोषित नवीन आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रमिको मे भी एक नव चेतना का उदय हुआ है। अब श्रमिको मे यह विश्वास पक्का घर कर गया है कि उनके हितो की पूर्ण रूप से रक्षा की जाएगी। 11 जनवरी, 1976 को दिल्ली मे हुए राज्यो के श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन मे भी विभिन्न श्रम पहलुओ पर विचार-विमर्श किया गया है तथा बधक मजदूरो के पुनर्वास का सकल्प लिया गया है।[1]

समान कार्य हेतु महिला श्रमिकों को समान वेतन देने हेतु केन्द्रीय सरकार ने 26 सितम्बर, 1975 को अध्यादेश जारी कर दिया है जिसके अन्तर्गत महिलाओ के साथ किसी तरह का विभेद नही किया जाएगा।[2]

इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों मे अनुशासन एव पूर्ण लगन के साथ सम्बन्धित सस्थानो मे कार्य करने की भावना जाग्रत हुई है जो कि राष्ट्रीय हित की एक महत्त्वपूर्ण कडी का कार्य करेगी।

---

1. राजस्थान पत्रिका 12 जनवरी, 1976
2. हिन्दुस्तान टाइम्स 25 जनवरी, 1976

4 भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र में श्रम-अनुपस्थितता एवं श्रम-परिवर्तन

(Labour Absenteeism & Turnover–Labour in the Indian Public Sector)

औद्योगिक उत्पादन मे वृद्धि हेतु यह आवश्यक है कि औद्योगिक श्रमिको की अनुपस्थिति और श्रम परिवर्तन की दर न्यूनतम हो। भारत जैसे विकासशील देश मे औद्योगिक श्रमिको की अनुपस्थितता तथा श्रम-परिवर्तन की दर ऊँची पायी जाती है।

श्रम अनुपस्थितता का अर्थ (Meaning of Labour Absenteeism)—साधारण भाषा मे अनुपस्थितता का अर्थ काम पर उपस्थित न होने से है। भारतीय श्रमिक की यह एक प्रमुख विशेषता है। इसका श्रमिक की कार्य-कुशलता पर गहरा प्रभाव पडता है। इसकी परिभाषा सर्वप्रथम भारत सरकार के श्रम विभाग के परिपत्र मे दी गई थी। इसके अनुसार "काम पर आने वाले कुल निर्धारित श्रमिको मे से जितने प्रतिशत श्रमिक काम पर नही आते, उस अनुपात को ही श्रमिको की अनुपस्थित दर कहा जा सकता है। इस प्रकार अनुपस्थित दर का अनुमान लगाने के लिए हमे काम पर उपस्थित होने वाले निर्धारित श्रमिको की सख्या तथा वास्तव मे अनुपस्थित व्यक्तियो की सख्या ज्ञात होनी चाहिए।" एक श्रमिक का काम पर उपस्थित होना तब माना जाता है जब उसके लिए कार्य है तथा श्रमिक को भी इसका मालूम हो और मालिक भी पहले से ही यह मालूम नहीं कर सके कि श्रमिक कार्य पर उपस्थित नही हो सकेगा।

एक श्रमिक बिना सूचना के अनुपस्थित रहता है तो उसे अनुपस्थित तभी माना जाना चाहिए जबकि उसका नाम कार्यशील श्रमिको की सूची मे से निकाल दिया गया हो। अनुपस्थिति मासिक आधार पर तैयार की जाती है।

अनुपस्थितता की सीमा (Extent of Absenteeism)—इसके निर्धारण हेतु पर्याप्त एव सही आँकडो का अभाव पाया जाता है। आँकडो को एकत्रित करने मे कोई वैज्ञानिक आधार नही अपनाया जाता है। अनुपस्थितता से सम्बन्धित आँकडे एकत्रित करने वाली विभिन्न सस्थाओ द्वारा अलग-अलग सिद्धान्तो को अपनाया जाता है। उदाहरणार्थ बम्बई सूती वस्त्र मिलो मे किसी श्रमिक के अनुपस्थित होने पर उसे अनुपस्थितता के अन्तर्गत रख लिया जाता है जबकि दूसरी ओर अहमदाबाद की मिलो मे किसी श्रमिक के अनुपस्थित होने पर यदि उसके स्थान पर कोई दूसरा व्यक्ति कार्य करता है तो उसे अनुपस्थितता के अन्तर्गत नही माना जाता है। इस प्रकार

अनुपस्थितता की सीमा जानने मे दो कठिनाइयाँ आती है। एक ओर इससे सम्बन्धित आँकडे एकत्रित करने वाली सस्थाओ के तरीको मे असमानता का पाया जाना तथा दूसरी ओर बदली श्रमिक (Badli Labour) होने पर अनुपस्थितता की गणना न करना।

विभिन्न कारखानो द्वारा अनुपस्थितता से सम्बन्धित मासिक आँकडे एकत्रित करके श्रम सस्थान, शिमला (Labour Bureau, Shimla) को भेजे जाते है। यह सस्थान इन आँकडो को तैयार करके 'इण्डियन लेबर जर्नल्स' मे निकालता है। कुछ महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे इससे सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं। खानो के मुख्य निरीक्षक को अनिवार्य रूप से इस पर आँकडे एकत्रित करके भेजने पडते हैं। दूसरे उद्योगो के लिए यह ऐच्छिक है।

शाही श्रम आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour, 1931) के अनुसार, "अनुपस्थिति एक जटिल शर्त है जिसमे कितने ही कारणो से होने वाली अनुपस्थिति शामिल की जाती है। सम्भवत कुछ ऐसे प्रबन्धक हो जो पहले से ही यह बता सकें कि कौन से श्रमिक काम पर नही है, इसलिए नही हैं कि वे इधर-उधर टहलने गए हैं अथवा बीमार है या छुट्टी पर गए है और फिर लौट आएँगे और फिर इसलिए वह श्रमिक भी जो छोडने के मत से नही गए, अनुपस्थित समझे जा सकते हैं।"

अनुपस्थितता की दर निम्न सूत्र से निकाली जा सकती है—

$$\text{अनुपस्थितता} = \frac{\text{मानव दिनो की हानि की सख्या}}{\text{कुल निर्धारित श्रमिको की सख्या}} \times 100$$

उदाहरणार्थ किसी कारखाने मे कुल निर्धारित श्रमिको की सख्या 1000 है तथा मानव दिनो की हानि की सख्या 200 है तो इस सूत्र के अनुसार अनुपस्थितता की दर 20 प्रतिशत होगी।

इण्डियन लेबर ईयर बुक, लेबर बजट तथा अन्य प्रकाशनो के अनुसार सन् 1970 मे विभिन्न कारखानो मे अनुपस्थितता की दर अलग-अलग रही है। बागानो मे 19 से 23 प्रतिशत, कोयला खानो मे 12 6 प्रतिशत से 13 5% सूती वस्त्र मिलो मे 7 7 प्रतिशत से 27 5% ऊनी मिलो मे 8 6 प्रतिशत से 14 3%, इजीनियरिंग उद्योग मे 10 6 प्रतिशत से 18 9% तक अनुपस्थितता की दर पायी जाती है।

जून, 1972 मे कुछ निर्माणकारी उद्योगो मे कारणो के अनुसार श्रम अनुपस्थिति प्रतिशत मे निम्न प्रकार थी[1]—

उद्योग	बीमारी मातृत्व या दुर्घटना	सामाजिक या धार्मिक कारण	अन्य	वेतन सहित	बिना वेतन	कुल
लोहू व स्पात (बिहार)	3 8	0 6	8 6	10 2	2 3	12 5
हथियार (उ प्र)	5 7	2 8	7 7	12 7	3 5	16 2
सीमेंट (बिहार)	6 2	8 5	3 1	12 9	4 9	17 8
माचिस (महाराष्ट्र)						
सूती मिलें	2 5	0 6	7 8	7 4	3 5	10 9
मद्रास	4 9	10 2	—	5 2	9 9	15 1
मदुराई	3 4	5 5	6 3	3 6	11 6	15 2
ऊनी मिलें (धारीवाल)	5 5	3 3	7 7	10 5	6 0	16 5

उपरोक्त उद्योगो म सर्वाधिक अनुपस्थिति दर का प्रतिशत 17 8 सीमेंट (बिहार) उद्योग मे रहा है तथा न्यूनतम माचिस (महाराष्ट्र) उद्योग मे रही है।

अधिकाश उद्योगो मे सवेतन अनुपस्थिति रही है लेकिन मद्रास की सूती मिलो (मद्रास व मदुराई) मे बिना वेतन के अनुपस्थिति अधिक रही है जो कि स्वय श्रमिको को मौद्रिक हानि उठानी पडती है। सामाजिक अथवा धार्मिक कारणो से श्रम अनुपस्थिति का प्रतिशत अधिक रहा है।

अनुपस्थितता के कारण (Causes of Absenteeism)—भारतीय उद्योगो मे अनुपस्थितता की दर भिन्न-भिन्न है तथा इसके कारण भी अलग अलग हैं। फिर भी सामान्य रूप से अनुपस्थितता के निम्न कारण है—

1. बीमारी (Sickness)—भारतीय उद्योगो मे अनुपस्थितता का प्रमुख कारण बीमारी है। श्रमिक के कार्य की दशाएँ तथा रहने की दशाएँ खराब हैं। इससे कई फैलने वाली बीमारिया जैसे—हैजा, चेचक और मलेरिया-आदि के कारण वह बीमार हो जाता है तथा कुछ व्यावसायिक बीमारियाँ (Occupational Diseases) के कारण भी वह बीमार रहने लगता है।

2 रात्रि पारियाँ (Night Shifts)—श्रमिको की अनुपस्थितता का कारण रात्रि की पारियाँ होना भी है। दिन की पारी की तुलना मे रात्रि की पारी मे श्रमिक द्वारा कार्य कठिनाई से होता है। वह सुविधाजनक नही होती है। अत वह रात्रि की पारियो मे अनुपस्थित रहने लगता है।

3 श्रम प्रवासिता की प्रवृत्ति (Migratory Character of Labour)—भारतीय उद्योगो मे अधिकांश श्रमिक ग्रामीण है तथा उनका गावो से लगाव रहता

1 *R C Saxena* Labour Problems & Social Security p 78

है। वे फसल काटने तथा फसल बुवाई व अन्य पारिवारिक तथा सामाजिक उत्सवों पर अपने गाँव जाते रहते है। इस प्रवृत्ति से श्रमिकों मे अनुपस्थितता की ऊँची दर पायी जाती है।

4 कल्याण कार्यों की अपर्याप्तता (Inadequacy of Welfare Activities)—भारतीय उद्योगों मे मालिकों द्वारा श्रमिकों हेतु कल्याणकारी कार्य नही किए जाते है। पुस्तकालय, वाचनालय, खेलकूद, मनोरजन, केन्टीन आदि का अभाव होने के कारण श्रमिक कार्य से ऊब जाता है तथा वह कार्य से अनुपस्थित रहने लगता है। इसी प्रकार श्रम सघो द्वारा भी वित्तीय कमी से ये सुविधाएँ प्रदान नहीं की जाती है।

5 रोजगार की असुरक्षा (Insecurity of Employment)—भारतीय उद्योगों मे कार्यरत श्रमिक मध्यस्थो के द्वारा भर्ती किए जाने के कारण उनका रोजगार स्थायी नही हो पाता है। मौसमी उद्योगों (Seasonal Industries) मे वैसे ही श्रमिकों को कुछ महीनो के बाद रोजगार से हटा दिया जाता है। इस प्रकार श्रमिक को अपना रोजगार सुरक्षित मालूम न होने से वे कार्य मे रुचि नही रखते है तथा अनुपस्थित रहने लगते है।

6 अन्य कारण (Other Causes)—भारतीय उद्योगों मे श्रमिकों की अनुपस्थितता की दर ऊँची होने के अन्य कारण भी हैं। इनमे औद्योगिक दुर्घटनाओं, सामाजिक एव धार्मिक उत्सवो, शराबखोरी, जुआखोरी, कठोर कार्य की प्रकृति, जॉबर का दुर्व्यवहार, ऋणग्रस्तता आदि प्रमुख है। इनसे श्रमिक अधिक अनुपस्थित रहने लगता है।

अनुपस्थितता के प्रभाव (Effects of Absenteeism)—श्रमिकों की अनुपस्थितता के कारण न केवल श्रमिको को ही हानि होती है बल्कि अन्य वर्गों उदाहरणार्थ—मालिकों, उपभोक्ताओं, समाज एव राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को भी हानि होती है। ये प्रभाव निम्न है—

1 श्रमिकों को हानि—यदि श्रमिक अनुपस्थित रहता है तो उसे 'न काम न मजदूरी' के सिद्धान्त के आधार पर आर्थिक हानि उठानी पडेगी। उसकी मजदूरी कम होने से उसका जीवन स्तर गिर जाता है।

2 मालिकों को हानि—जब श्रमिक कार्य पर अनुपस्थित रहते है तो मालिको को अपने कारखाने के उत्पादन को निरन्तर बनाए रखने मे कठिनाई होती है। श्रमिकों की तलाश करनी पडती है। अनुपस्थित रहने से नए श्रमिकों की भर्ती की जाती है जिनकी कार्य-कुशलता निम्न होती है। मालिक को 'दूसरी रक्षा-पक्ति' (Second Line of Defence) रखनी पडती हैं जिससे भविष्य मे हडताल होने का भय रहता है तथा उस पर भी व्यय करना पडता है।

3. अनुशासनहीनता—श्रमिकों मे अनुपस्थितता की प्रवृत्ति से श्रमिकों मे अनियमितता आ जाती है। इससे श्रमिकों का अनुशासन समाप्त होने लगता

अनुशासनहीनता से औद्योगिक उत्पादन को निरन्तर बनाए रखने मे कठिनाई आती है ।

4 श्रम व पूंजी के बीच संघर्ष—श्रमिको की अनुपस्थितता के कारण श्रमिको को हानि होती है तथा मालिक इस हानि से बचने के लिए अतिरिक्त श्रमिको को रोजगार पर लगाकर उत्पादन करता है और इसके परिणामस्वरूप बदली श्रमिक (Badli Labour) को प्रोत्साहन मिलता है । उन्हे रोजगार देने के लिए स्थायी श्रमिको को अनिवार्य रूप से अवकाश ग्रहण करना पडता है । इससे दोनो वर्गों मे सघर्ष उत्पन्न हो जाता है ।

5 राष्ट्रीय उत्पादन मे कमी—श्रमिको की अनुपस्थितता के कारण उत्पादन निरन्तर बनाए रखने मे कठिनाई आती है । श्रमिको की कार्यकुशलता कम हो जाती है । अकुशल श्रमिको को रोजगार दिया जाता है । इनके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादन मे गिरावट आती है तथा कीमतो मे वृद्धि होती है और उपभोक्ताओ को ऊँची कीमत पर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

अनुपस्थितता को रोकने के उपाय (Measures to Remove Absenteeism)—अनुपस्थितता के प्रभावो को समाप्त करने के लिए हम निम्नलिखित उपायो को काम मे ले सकते हैं—

1 कार्य की दशाओं मे सुधार—श्रमिको की अनुपस्थितता को कम करने के लिए हमे कारखानो मे कार्य की दशाओ मे सुधार करना होगा । कारखाने मे सफाई, रोशनदान, प्रकाश पखे तथा अच्छे औजारो की व्यवस्था करनी पडेगी । कार्य के घण्टो मे भी कमी करनी होगी । इससे श्रमिक रुचि लेकर कारखाने मे कार्य करेगा ।

2 उचित मजदूरी—श्रमिको की अनुपस्थितता की दर को कम करने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि उसको उचित पारिश्रमिक दिया जाए । इससे श्रमिको को अधिक आय प्राप्त होगी और वह कारखानो मे कार्य करने के लिए आकर्षित होगा ।

3 औद्योगिक दुर्घटना व बीमारी से सुरक्षा—श्रमिको की अनुपस्थितता को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक दुर्घटनाओ को कम किया जाए । इसके लिए सुरक्षा अधिकारियो (Safety Officers) की नियुक्तियाँ की जाएँ । इसके साथ ही मशीनो को ढक कर रखा जाए व प्रशिक्षित व्यक्ति ही इन मशीनो की देख-रेख के लिए रखा जाए । बीमारी के लिए उचित चिकित्सा की व्यवस्था की जाए । छूत की बीमारियो को समाप्त करने हेतु प्रबन्धको द्वारा पहले से ही ठोस कदम उठाने चाहिए । सफाई का पूर्ण ध्यान रखा जाए ।

4. छुट्टी की व्यवस्था—अधिकांश औद्योगिक श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रो से आते हैं और उनका गाँवो से लगाव होने के कारण सामाजिक एव धार्मिक उत्सवो, फसल की बुवाई व कटाई, आराम के लिए बार-बार अपने गाँवो को जाना पडता है । इस अनुपस्थितता को नियमित करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिको के लिए उचित

सवेतन छुट्टियों की व्यवस्था की जाए। यदि सवेतन छुट्टियाँ कम पड़ने पर बिना वेतन के छुट्टियाँ दी जानी चाहिए। आने-जाने का किराया भी दिया जाना चाहिए। इससे श्रमिकों का कारखानों से भी लगाव होगा और वे अधिक अनुपस्थित नहीं रहेंगे।

5. उचित आवास व्यवस्था—भारतीय श्रमिक ग्रामीण क्षेत्रों से आकर औद्योगिक क्षेत्रों में रहते हैं। वहाँ उनको ऐसी बस्तियों में रहना पड़ता है जहाँ पर मानव तो क्या जानवर भी नहीं रह सकते। इन खराब आवास व्यवस्था के कारण श्रमिक अपना परिवार नहीं रख सकता है तथा कई सामाजिक बुराइयों उदाहरणार्थ शराबखोरी, जुआखोरी, वैश्यावृत्ति, अपराध आदि का शिकार हो जाते हैं और अनुपस्थित रहने लगता है। अतः प्रबन्धकों, श्रम-संगठनों, समाज-सुधारकों एवं सरकार का यह दायित्व है कि श्रमिकों के लिए उचित आवास व्यवस्था की जाए, जिससे कि उनकी अनुपस्थितता की दर को कम किया जा सके।

6 उचित शिक्षा की व्यवस्था—उपस्थितता को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक श्रमिकों के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था की जाए। जब श्रमिक शिक्षित होंगे तो वे अपने दायित्व को समझेंगे तथा कार्य पर नियमित रूप से उपस्थित होंगे। इसके साथ ही उनके संगठन भी सुदृढ़ एवं सुसंगठित होंगे।

7 कल्याण कार्यों की उचित व्यवस्था—औद्योगिक श्रमिकों को आन्तरिक तथा बाह्य श्रम कल्याण क्रियाओं की पर्याप्त सुविधाएँ दी जानी चाहिए। कारखाने में विश्राम-गृहों, केन्टीन, पीने का पानी, आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। कारखाने के बाहर श्रमिकों को पुस्तकालय, वाचनालय, मनोरंजन चिकित्सा, खेलकूद, आदि सुविधाएँ प्रदान की जानी चाहिए। इससे श्रमिक व्यस्त रहेगा तथा उसके सारे दिन की थकान दूर हो जाएगी। वह कारखाने में कार्य करने में नियमित रूप से उपस्थित होगा।

बम्बई सूती वस्त्र श्रम जाँच समिति (Bombay Textile Labour Enquiry Committee) ने अनुपस्थितता को दूर करने के सबसे अच्छे सुझाव दिए हैं। इन सुझावों पर श्रम-अनुसंधान समिति (Labour Investigation Committee) ने भी सहमति व्यक्त की है। इस समिति के अनुसार, "अनुपस्थितता को कम करने का प्रभावपूर्ण तरीका कारखाने में कार्य की उचित दशा, पर्याप्त मजदूरी, बीमारी एवं दुर्घटना से बचाव की व्यवस्था एवं आराम के लिए अवकाश लेने की सुविधा है।"[1]

अतः यदि हम यह चाहते हैं कि भारतीय औद्योगिक श्रमिक नियमित रूप से काम पर उपस्थित हों तो इसके लिए यह आवश्यक है कि उसके कार्य एवं रहने की दशाओं में सुधार किया जाए। सवेतन छुट्टियाँ दी जाएँ। जॉबर व प्रबन्धकों का अच्छा व्यवहार श्रमिकों को मिलना चाहिए। कार्य के घण्टे न्यूनतम अधिनियम के अन्तर्गत हों।

निष्कर्ष—1 जुलाई, 1975 को घोषित आर्थिक नवीन कार्यक्रमों के कारण

1. Bombay Textile Labour Enquiry Committee, p 346.

श्रमिको की अनुपस्थिति पर अवश्य अनुकूल प्रभाव पडा है क्योंकि सभी उद्योगो मे श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी अधिनियम, 1948 के अन्तर्गत मजदूरी का प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन किया जा रहा है। इस्पात उद्योग मे आपात् स्थिति से पूर्व 10 महीनो से चले आ रहे मजदूरी विवाद को प्रबन्धको एव श्रमिको ने मिलकर निबटा लिया है और 30 जुलाई, 1975 को एक समझौता हो गया है।[1]

इसी प्रकार श्रमिको को उद्योग मे एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप मे मानने पर विशेष जोर दिया गया है। नवीन आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रमिको का किसी प्रकार से भी शोषण नही हो सकेगा। इसके परिणामस्वरूप विभिन्न उद्योगो जैसे–इस्पात, विद्युत, उत्पादन, कोयला, खाद, सीमेंट, खनिज तेल आदि के उत्पादन मे क्रमश 15 9%, 12%, 12%, 43%, 11 8% और 10% वृद्धि हुई है।[2]

श्रम परिवर्तन
(Labour Turnover)

किसी उद्योग मे श्रमिको की सख्या मे हुए परिवर्तन को श्रम-परिवर्तन कहा जाता है। एक दी हुई अवधि मे किसी कारखाने अथवा उद्योग मे किस सीमा तक पुराने श्रमिक उद्योग को छोडते हैं और नए श्रमिक उद्योग में आते हैं। श्रम अनुसधान समिति (Labour Investigation Committee) के अनुसार, "किसी निश्चित अवधि मे किसी कारखाने के श्रमिको की सख्या मे होने वाले परिवर्तन की दर से श्रम परिवर्तन परिभाषित किया जा सकता है। दूसरे शब्दो मे यह एक प्रकार से पुराने श्रमिको के किसी कारखाने की सेवाओ को छोडने तथा नए श्रमिको के भर्ती होने की मात्रा का माप है।"[3] अत काम छोडकर जाने वाले श्रमिको व नए श्रमिको की सख्या के आधार पर श्रम परिवर्तन को मापा जा सकता है।

श्रम परिवर्तन के प्रभाव
(Effects of Labour Turnover)

कुछ सीमा तक श्रम परिवर्तन लाभदायक होता है। यदि पुराने श्रमिक अवकाश ग्रहण करते हैं और उनकी जगह नए श्रमिको को लगाया जाता है तो इससे बेरोजगारी दूर होती है। लेकिन इस प्रकार का श्रम-परिवर्तन बहुत कम होता है। अधिकांश श्रम-परिवर्तन श्रमिको को त्याग-पत्र देने तथा मालिको द्वारा उन्हे नौकरी से निकालने से होता है। श्रम परिवर्तन से समाज के सभी वर्गों–श्रमिको, श्रम-सगठनो मालिको तथा राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को हानि उठानी पडती है। श्रम परिवर्तन के निम्न प्रभाव होते है—

1. रोजगार की अस्थिरता (Instability of Employment)—श्रम परिवर्तन से सर्व प्रथम श्रमिको को हानि उठानी पडती है। श्रमिक कभी एक कारखाने मे कार्य करते हैं और कुछ समय बाद दूसरे कारखाने मे काम करने लग

1 *N K Singh* New Deal for Steel Workers, Economic Times 1–3–76
2 राजस्थान पत्रिका, 10 जनवरी, 1976
3 Labour Investigation Committee Main Report p 101

जाते हैं । उनको यह पता नही रहता है कि किस उद्योग मे कितने समय तक कार्य करना है । उनके रोजगार मे अस्थिरता पायी जाती है । स्थायी नही होने से उनको स्थायी लाभ उदाहरणार्थ–प्रोवीडेन्ट फण्ड, ऊँची मजदूरी, वृद्धावस्था की पेंशन आदि नही मिल पाते हैं । उनकी कार्य-कुशलता भी घट जाती है ।

2 श्रमिक सघो को हानि—श्रम परिवर्तन के कारण श्रमिक उनके सगठनो मे सदस्य नही बन पाते हैं और न नियमित रूप से चन्दा दे पाते हैं । श्रम परिवर्तन हमारे देश मे एक सुदृढ व सगठित श्रम-सघ आन्दोलन के विकास मे बाधा उपस्थित करता है ।

3. प्रबन्धको को हानि—श्रम परिवर्तन से प्रबन्धको को अपने कारखाने के उत्पादन को निरन्तर एव निर्बाध रखने के लिए नए श्रमिको की भर्ती करनी पडती है और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी पडती है । पुराने श्रमिको के चले जाने से कारखाने के उत्पादन की मात्रा तथा किस्म पर विपरीत प्रभाव पडता है क्योंकि श्रमिको की कार्यकुशलता कम हो जाती है ।

4 श्रम भर्ती मे भ्रष्टाचार को प्रोत्साहन—श्रम परिवर्तन से पुराने श्रमिको के चले जाने से उनके स्थान पर नए श्रमिक भर्ती किए जाते हैं । इन नए श्रमिको की भर्ती मे मध्यस्थ (जॉबर, चौधरी मुकद्दम, मिस्त्री आदि) रिश्वत लेते हैं तथा श्रमिको का आर्थिक शोषण करते हैं । श्रम अनुसधान समिति के अनुसार, "भर्ती की विभिन्न एजेन्सियो से अधिकांश उद्योगो मे भ्रष्टाचार और रिश्वतखोरी पनपती है । भर्ती करने वाले दलाल जिन्हे विभिन्न नामो–सिरदार, कगानी, मुकद्दम, मिस्त्री आदि से जाने जाते हैं वे पुराने श्रमिको को नौकरी से निकाल देते हैं तथा नए श्रमिको की भर्ती द्वारा अपनी जबो को भरते हैं ।"[1]

5 मानवीय व भौतिक साधनो के अधिकतम उपयोग मे बाधा—श्रम परिवर्तन के कारण नए श्रमिको की भर्ती होती रहती है तथा पुराने श्रमिक सस्थान को छोडकर चले जाते है । इससे न तो मानवीय और न ही भौतिक साधनो का अधिकतम उपयोग हो पाता है । पुराने श्रमिको की योग्यता का लाभ नही मिल पाता । उनकी कार्यकुशलता घट जाती है । इससे राष्ट्रीय उत्पादन मे कमी आती है ।

श्रम परिवर्तन का माप
(Measurement of Labour Turnover)

श्रम अनुपस्थिति की भाँति ही श्रम परिवर्तन के सम्बन्ध मे आँकडो का अभाव है । श्रम-परिवर्तन को सही रूप से मापना कठिन है । श्रम-परिवर्तन के मापन मे निम्न कठिनाइयाँ आती हैं—

1. सस्थान को छोडकर जाने वाले तथा प्रवेश करने वाले श्रमिको के अनुपात के आधार पर ही श्रम-परिवर्तन को मापा जाता है, लेकिन इसके सम्बन्ध मे कारखानो द्वारा सही विवरण नही रखा जाता है । इसी प्रकार दोनो के अनुपात मे

1 Labour Investigation Committee Main Report, p 103

भी असमानता उस समय उत्पन्न हो जाती है जब रोजगार मे उतार-चढाव उत्पन्न हो जाता है।

2 बदली श्रमिको (Badli Labour) के कारण भी श्रम-परिवर्तन मापन कठिन है क्योंकि स्थायी श्रमिको को अनिवार्य रूप से अवकाश देकर बदली श्रमिको को रोजगार दिया जाता है। लेकिन वास्तव म इससे श्रम परिवर्तन नही हो पाता है।

3 श्रम-परिवर्तन और अनुपस्थितता के अन्तर का स्पष्ट ज्ञान न होने से श्रम-परिवर्तन को मापने म कठिनाई आती है। कभी-कभी श्रमिक कार्य से अनुपस्थित रह कर बाद म दो चार महीने बाद आ जाता है तो इसे अनुपस्थितता के अन्तर्गत रखा जाए अथवा नही। यह भी कठिनाई श्रम-परिवर्तन के माप मे आती है।

4 श्रमिक किसी उद्योग के एक सस्थान को छोडकर दूसरे सस्थान मे कार्य करने लग जाता है तो इससे श्रम परिवर्तन की दर तो बढ जाती है। लेकिन दक्षता को आधार मानने पर उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पडता है। अत- इसे श्रम परिवर्तन के अन्तर्गत रखा जाए अथवा नही क्योकि इससे कार्यकुशलता पर कोई विपरीत प्रभाव नही पडता।

इन उपर्युक्त कठिनाइयों के कारण विभिन्न भारतीय उद्योगो मे श्रम परिवर्तन की ऊँची दर होने पर भी हम इसको माप नही सकते हैं। फिर भी कई समितियो तथा अनुसधानकर्त्ताओ ने इसके माप के आधार प्रस्तुत किए हैं। श्रम परिवर्तन का माप निम्न सूत्र के आधार पर किया जा सकता है—

$$T=\frac{S}{F}\times 100 \quad \text{or} \quad T=\frac{A}{F}\times 100$$

इसमे **T** *श्रम परिवर्तन,* **S** *सस्थान से अलग हुए श्रमिको की सख्या* (Separation rate), *F सस्थान मे कार्य करने वाले श्रमिको की सख्या तथा* **A** *सस्थान मे नए श्रमिको की सख्या (Accession rate) को प्रदर्शित करते है।*

श्रम-परिवर्तन की सीमा
(Extent of Labour Turnover)

शाही श्रम आयोग, 1931 के अनुसार अधिकाँश कारखानो मे प्रति माह लगाए गए नए श्रमिक कुल श्रमिको की सख्या का 5% थे। बम्बई वस्त्र श्रम जाँच समिति के अनुसार, "यद्यपि भारत के सभी सगठित उद्योगो मे श्रम परिवर्तन तीव्र गति के साथ पाया जाता है, किन्तु श्रम परिवर्तन की सीमा के सम्बन्ध मे विश्वसनीय आंकडे उपलब्ध नही हैं। इनका प्रमुख कारण है—श्रम-परिवर्तन के माप मे होने वाली कठिनाइयाँ। अत जब तक विभिन्न सस्थाओ द्वारा श्रम परिवर्तन के सही व सच्चे आँकडे प्रस्तुत नहीं किए जाते, तब तक श्रमपरिवर्तन का वर्तमान प्रतिशत का कोई व्यावहारिक महत्त्व नही है।"[1]

भारतीय उद्योगो मे श्रम परिवर्तन का मासिक प्रतिशत अग्रांकित प्रकार से हैं।

1 Bombay Textile Labour Enquiry Committee, p 362

सूती वस्त्र उद्योग मे 0 6% ऊनी वस्त्र उद्योग मे 0 4%, सोने की खानो मे 1 6%, सीमेन्ट उद्योग मे 2%, काँच उद्योग मे 2 1%, चावल की मिलो मे 3 1% और जूट उद्योग मे 9 6%। सबसे अधिक श्रम-परिवर्तन की दर जूट उद्योग मे पायी जाती है। जिन उद्योगो मे रोजगार मे उतार-चढाव होते हैं वहाँ श्रम-परिवर्तन अधिक होता है जबकि इसकी विपरीत अवस्था मे श्रम-परिवर्तन कम होता है। फिर भी अनुपस्थितता की तुलना में श्रम परिवर्तन हमारे देश में कम पाया जाता है। श्रम-परिवर्तन पाश्चात्य देशो की तुलना मे भारत मे कम पाया जाता है क्योकि शहरी क्षेत्र मे बेरोजगारी तथा ग्रामीण क्षेत्र मे अर्द्ध-बेरोजगारी विद्यमान होने के कारण दीर्घकाल तक श्रमिक कार्य पर लगा रहता है।

श्रम-परिवर्तन के कारण
(Causes of Labour Turnover)

श्रम-परिवर्तन कई कारणो से होता है लेकिन मोटे तौर पर श्रम परिवर्तन दो कारणो से होता है। प्रथम श्रमिको द्वारा त्याग-पत्र देना तथा द्वितीय श्रमिको को नौकरी से निकाल देना। श्रम परिवर्तन के विभिन्न कारण निम्नलिखित है—

1 प्राकृतिक कारण (Natural Causes)—श्रम-परिवर्तन के कुछ कारण *प्रकृति के नियम पर आधारित हैं जिन्हे मनुष्य नही रोक सकता है।* इन कारणो के परिणामस्वरूप श्रमिको को कार्य छोडना पडता है और उनके स्थान पर नए श्रमिको को भर्ती किया जाता है उदाहरणार्थ श्रमिको की मृत्यु औद्योगिक बीमारियो तथा दुर्घटनाओ के कारण श्रमिक का अयोग्य हो जाना, अधिक आयु हो जाना आदि।

2 श्रमिको द्वारा त्याग-पत्र देना (Resignation by workers)—श्रम परिवर्तन श्रमिको द्वारा काम छोडने अथवा नौकरी से स्तीफा देने से भी होता है। श्रमिक त्याग-पत्र दूसरे व्यवसाय मे अपनी उन्नति अथवा मालिको के व्यवहार से क्षुब्ध होकर देता है। श्रमिको द्वारा त्याग-पत्र कई कारणो से दिए जा सकते है—

(i) कारखानो मे कार्य की दशाओ का ठीक न होना, (ii) उचित मजदूरी न मिलना, (iii) आवास की अच्छी व्यवस्था न होना, (iv) अस्वस्थतता तथा बीमारी, (v) वृद्धावस्था तथा पारिवारिक परिस्थितियाँ, (vi) दूसरी जगह अच्छी नौकरी का मिलना, (vii) मालिकों के दुर्व्यवहार, (viii) श्रम-प्रवासिता अथवा गाँव से श्रमिको का लगाव, (ix) सवेतन छुट्टियाँ न मिलना आदि।

3. मिल-मालिकों द्वारा नौकरी से निकाल देना (Dismissal by employers)—श्रम परिवर्तन मिल मालिको द्वारा श्रमिको को नौकरी से निकाल देने के कारण होता है। मिल-मालिक श्रमिको को कई कारणो से नौकरी से निकाल देते हैं। श्रमिको के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही दुराचरण से श्रमिको को नौकरी से अलग किया जा सकता है। श्रमिको मे अकुशलता तथा उनके द्वारा हडताला मे भाग लेने पर भी नौकरी से बर्खास्त किया जाता है और उनकी जगह नए श्रमिक भर्ती किए जाते है। मौसमी उद्योगो मे कार्य पूरा होते ही श्रमिको को

नौकरी से निकाल दिया जाता है। मजदूरी बिल को कम करने हेतु भी मिल-मालिक अधिक ऊँचे वेतन वाले श्रमिकों को निकाल कर नए श्रमिकों को नीची मजदूरी पर भर्ती कर लेते हैं।

4. बदली प्रणाली (*Badli System*)—*श्रमिकों की अनुपस्थिति में* बदली श्रमिक रखे जाते हैं जिन्हें रोजगार देने के लिए पुराने श्रमिकों को अनिवार्य छुट्टी पर जाना पड़ता है। इससे श्रम-परिवर्तन की दर ऊँची पायी जाती है।

5 अन्य कारण (Other Causes)—श्रम-परिवर्तन होने के अन्य कारण भी हैं। इससे उद्योग से पुराने श्रमिक चले जाते हैं तथा नए श्रमिकों की भर्ती की जाती है। वे निम्न हैं—

(i) ऊँचे जीवन-स्तर की लालसा तथा अन्य कारखानों अथवा संस्थानों में ऊँचे वेतन के आकर्षण से श्रम-परिवर्तन,

(ii) मनोवैज्ञानिक कारणों से श्रम-परिवर्तन। उदाहरणार्थ संयुक्त परिवार प्रथा, ग्रामीण वातावरण, पारिवारिक स्नेह आदि।

(iii) मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों का शोषण करने के कारण श्रम परिवर्तन। वे नए श्रमिकों की भर्ती करते हैं तथा पुराने श्रमिकों को निकाल देते हैं।

(iv) व्यापार-चक्रों (Trade/Business cycles) के कारण रोजगार के अवसरों में उतार-चढ़ाव,

(v) युद्ध-काल में श्रमिकों की अधिक माँग के कारण ऊँची मजदूरी का आकर्षण,

(vi) धर्म, भाषा, रहन-सहन, जाति आदि की भिन्नता से श्रम-परिवर्तन।

श्रम-परिवर्तन को कम करने के उपाय (Measures to Reduce Labour Turnover)

श्रम-परिवर्तन से श्रमिकों, प्रबन्धकों, समाज व राष्ट्र को हानि होती है। इस हानि से बचने के लिए श्रम परिवर्तन की दर को घटाना आवश्यक है। इसके लिए निम्न उपायों को काम में लाया जा सकता है।

1 श्रमिकों की भर्ती में सुधार—श्रम-परिवर्तन को कम करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिकों की भर्ती मध्यस्थों द्वारा न की जाए। श्रमिकों की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से श्रम अधिकारियों अथवा कारखाना प्रबन्धकों द्वारा की जानी चाहिए। रोजगार कार्यालयों की स्थापना बड़े पैमाने पर की जा सकती है। इन कार्यालयों से श्रमिकों की भर्ती में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर किया जा सकता है तथा श्रम-परिवर्तन को कम किया जा सकता है। बदली पद्धति को भी नियन्त्रित किया जाना चाहिए जिससे स्थायी श्रमिकों को अनिवार्य छुट्टियों पर नहीं जाना पड़े।

2. श्रमिकों के कार्य एवं रहने की दशाओं में सुधार—कारखानों में रोशनदान, खिड़कियाँ, सफाई, प्रकाश, स्वच्छ वायु आदि उपलब्ध होने से कार्य करने में श्रमिक रुचि रखेगा। इसके साथ ही श्रमिक की आवास व्यवस्था को भी सुधारा जाना

चाहिए जिससे श्रमिक अपना परिवार साथ रख सके अथवा अन्य सामाजिक बुराइयों से दूर रह सके।

3 श्रमिक की आर्थिक दशा और श्रम कल्याण में वृद्धि—श्रम-परिवर्तन को कम करने के लिए यह जरूरी है कि श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी दी जाए। जब उचित मजदूरी मिलेगी तो श्रमिक एक व्यवसाय को छोड़कर दूसरे व्यवसाय में नहीं जाएगा। श्रम कल्याण में वृद्धि करने के लिए कारखानों में श्रमिकों के लिए कैन्टीन, पीने लायक पानी, विश्रामगृह आदि की सुविधा होनी चाहिए तथा कारखानों के बाहर वाचनालय, पुस्तकालय, मनोरंजन, चिकित्सा, आवास, खेलकूद आदि की सुविधाएँ श्रमिकों हेतु प्रदान की जानी चाहिए। इससे श्रमिकों में श्रम परिवर्तन कम होगा।

4 सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था—श्रम-परिवर्तन को रोकने के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि दुर्घटनाओं, औद्योगिक बीमारियों बेरोजगारी छँटनी, आदि के लिए श्रमिक को सामाजिक सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिए। इससे श्रमिक भविष्य की अनिश्चितताओं में भी काम करता रहेगा।

5 सवेतन छुट्टियों की व्यवस्था—श्रम-परिवर्तन को रोकने हेतु भारतीय औद्योगिक श्रमिकों को पर्याप्त संख्या में सवेतन छुट्टियाँ देना आवश्यक है। जब छुट्टियाँ न हों तो बिना वेतन के छुट्टियाँ प्रदान करनी चाहिए। इससे श्रमिक अपने गाँव सामाजिक, पारिवारिक एवं धार्मिक उत्सवों पर जा सकेगा और इससे श्रम परिवर्तन को कम किया जा सकेगा।

बम्बई श्रम जाँच समिति ने श्रम-परिवर्तन को कम करने हेतु श्रमिकों की भर्ती में सुधार करने को एक महत्त्वपूर्ण उपाय बताया है। इसके अतिरिक्त श्रम परिवर्तन को रोकने के लिए रोजगार कार्यालयों की स्थापना, मध्यस्थों के अधिकारों पर उचित नियन्त्रण, कार्मिक विभाग का संगठन आदि उपाय काम में लेने चाहिए। वर्तमान समय में स्थायी श्रम शक्ति एवं कम श्रम परिवर्तन हेतु यह भी आवश्यक है कि कार्य की दशाओं में सुधार किया जाए, पर्याप्त मजदूरी दी जाए एवं श्रमिकों को प्रबन्ध में सहभागिता प्रदान की जाए। इससे भारतीय औद्योगिक श्रमिक पाश्चात्य देशों की भाँति स्थायी श्रम शक्ति (Stable Labour Force) का निर्माण कर सकेंगे तथा श्रम-परिवर्तन और अनुपस्थितता से होने वाले दुष्परिणामों को रोका जा सकेगा।

भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र में श्रम
(Labour in the Indian Public Sector)

भारतीय अर्थव्यवस्था में सार्वजनिक क्षेत्र का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का अर्थ उद्योगों का स्वामित्व और प्रबन्ध सरकार के अधीन हो। लेकिन यह आवश्यक नहीं है कि प्रबन्ध और स्वामित्व दोनों ही सरकार के हाथ में हों। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगों का महत्त्व इस बात पर निर्भर करता है कि उनकी स्थापना के पीछे क्या उद्देश्य है?

भारत मे मिश्रित अर्थ व्यवस्था को अपनाया गया है जिसके अन्तर्गत निजी व सार्वजनिक क्षेत्रो का साथ-साथ विकास हो सकेगा । भारतीय नियोजित अर्थ-व्यवस्था मे समाजवादी समाज की स्थापना को महत्त्व दिया गया है । इसके उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह आवश्यक है कि सार्वजनिक क्षेत्र मे अधिक से अधिक उद्योग स्थापित किए जाएँ । सन् 1948 मे प्रथम औद्योगिक नीति के प्रस्ताव की घोषणा की गई और सन् 1956 मे दूसरी विस्तृत औद्योगिक नीति की घोषणा की गई है । इसके अन्तर्गत सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो को अधिक व्यापक क्षेत्र प्रदान किया गया ।

सार्वजनिक क्षेत्र मे उद्योग विभिन्न प्रकार के होते है । प्रथम प्रकार के वे उद्योग हैं जो सरकारी विभागो द्वारा चलाए जाते हैं–उदाहरणार्थ रेलवे, डाक व तार विभाग आदि । द्वितीय प्रकार के वे उद्योग जो वैधानिक निगमो (Statutory Corporations) के अन्तर्गत चलाए जाते हैं, जैसे भारतीय खाद्य निगम, राज्य व्यापार निगम, भारतीय उर्वरक निगम आदि । तृतीय प्रकार के वे उद्योग जो कम्पनियो के रूप मे चलाए जाते हैं और इनका पंजीयन सरकारी कम्पनी के रूप मे भारतीय कम्पनी अधिनियम, 1956 के अन्तर्गत होता है ।

भारतीय सार्वजनिक क्षेत्र मे श्रम (Labour in Indian Public Sector)—विभागीय क्षेत्र के सार्वजनिक उद्योगो मे लगे कर्मचारी सरकारी कर्मचारी है, जबकि सरकारी निगमो और कम्पनियो मे कार्य करने वाले कर्मचारी तकनीकी दृष्टि से भिन्न हैं । औद्योगिक कर्मचारी भारतीय औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के अन्तर्गत आते है जबकि *अन्य* कर्मचारी नही । केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियो की गणना के अनुसार 1966 मे सरकार के कुल औद्योगिक श्रमिको का 84% रेल्वे, रक्षा तथा तार एव डाक विभाग मे काम करते थे ।

भर्ती का तरीका
(Methods of Recruitment)

सार्वजनिक क्षेत्र मे भर्ती प्रत्यक्ष एव रोजगार कार्यालयो के माध्यम से की जाती है । व्यवहार मे प्रत्यक्ष रूप से भर्ती का तरीका अधिक पाया जाता है । सार्वजनिक उद्योगो मे ठेका श्रम पद्धति (Contract Labour System) प्रचलित है । लौह एव इस्पात उद्योग मे ठेका श्रम पाया जाता है । भारतीय राष्ट्रीय श्रम सघ कांग्रेस (INTUC) ने इस प्रथा को समाप्त करने की माँग की है । सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे विभिन्न प्रकार के कर्मचारियो की भर्ती तथा चयन का कार्य ईमानदारी और योग्यता के आधार पर होना चाहिए । व्यवहार मे यह देखा गया है कि चयन समिति के अध्यक्ष अथवा सदस्यो आदि ने अपने सम्बन्धियो का चयन किया है । इससे कर्मचारियो मे मनोवैज्ञानिक असन्तोष (Psychological Discontent) फैल जाता है । अत डॉ मेहता एव डॉ माहेश्वरी के अनुसार, 'सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे चयन सही होना चाहिए क्योकि वास्तव मे श्रम असन्तोष किसी भी कारखाने मे यही से शुरू होता है । यहाँ यह बताना व्यर्थ नही होगा कि साक्षात्कार

प्रक्रिया सुनने के लिए चयन स्वतन्त्र होना चाहिए। इसमे गोपनीयता रखने से सदेह उत्पन्न होता है। इसलिए सदेह की सम्भावनाओ को दूर करने का प्रयास किया जाना चाहिए।"[1] विभिन्न प्रकार की नौकरियो के चयन का तरीका भी समान है। चयन वैज्ञानिक आधार पर होना चाहिए। इससे दुर्घटनाएँ, अनुपस्थितता तथा श्रम-परिवर्तन कम हो सकेंगे। जिस क्षेत्र म कारखाना लगाया गया है उस क्षेत्र के लोगो को रोजगार मे प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

श्रमिको को दिया जाने वाला प्रशिक्षण विशिष्टीकरण पर आधारित होता है। इसके कारण श्रमिक एक या सीमित वर्ग की नौकरी के योग्य ही रहता है। अत प्रशिक्षण ऐसा दिया जाए कि श्रमिक एक कार्य से दूसरे कार्य मे एक ही कारखाने मे जा सकें। इससे एक ओर श्रम-परिवर्तन कम होगा और दूसरी ओर श्रम की अधिकता से होने वाली बेरोजगारी को कम किया जा सकेगा।

इन उद्योगो के कर्मचारियो की पदोन्नति वरिष्ठता तथा योग्यता दोनो के मिश्रण के आधार पर की जानी चाहिए।

अविकसित देशो मे कुशल, प्रशिक्षित एव शिक्षित कर्मचारियो के अभाव मे, विशेष रूप से उच्च पदो मे, सार्वजनिक उद्योगो को चलाने मे बडी कठिनाई का सामना करना पडता है।

कार्य के घण्टे (Hours of Work)—आराम, श्रमिको के स्वास्थ्य एव उनकी कार्यकुशलता मे वृद्धि हेतु कार्य के घण्टो मे कमी करने के महत्व को स्वीकार किया गया है। यह सरकारी विधान श्रम सघवाद, श्रमिको की बढती हुई सौदाकारी शक्ति और तकनीकी परिवर्तनो द्वारा ही सम्भव हुआ है।

कारखानो मे (In Factories) वयस्क के लिए 48 घण्टे प्रति सप्ताह और 9 घण्टे प्रतिदिन, जबकि बच्चो व किशोरो के लिए यह क्रमश 4–5 घण्टे प्रतिदिन रखा गया है। इनको बीच मे आराम भी दिया जाएगा।

खानो मे (In Mines) काम करने वाले श्रमिको हेतु कार्य के घण्टे ऊपर कार्य करने वालो के लिए 9 घण्टे प्रतिदिन और 48 घण्टे प्रति सप्ताह जबकि खानो के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिको को 8 घण्टे प्रतिदिन और 48 घण्टे प्रति सप्ताह रखे गए हैं।

बागानो मे (In Plantation) कार्य करने वाले वयस्क श्रमिको और बच्चो व किशोरो के लिए क्रमश 54 घण्टे और 40 घण्टे प्रति सप्ताह रखे गए हैं। प्रतिदिन के घण्टे निश्चित नही हैं फिर भी कार्य का फैलाव (Spread-over) 12 घण्टे से अधिक नही होगा।

सवेतन छुट्टियाँ कारखानो मे वयस्को व बच्चो को क्रमश 20 दिन और 15 दिन कार्य करने पर एक-एक दिन की मिलेगी।

खानो के अन्दर और ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों को एक-एक दिन का सवेतन अवकाश क्रमश 16 दिन और 20 दिन कार्य करने पर मिलेगा।

1 *Dr Mehta and Dr Maheshwari* . Public Undertaking & Labour in India, 1974, p 23

बागानों मे कार्य करने वाले श्रमिकों को वयस्क श्रमिक को 20 दिन कार्य पर और बच्चे को 16 दिन कार्य करन पर एक एक दिन का सवेतन अवकाश मिलेगा।

प्रो मेहता एव प्रो माहेश्वरी के अनुसार "देश के सगठित क्षेत्र के कुल रोजगार (179 39 लाख) का सन् 1973 मे 111 89 लाख अथवा 62 5% सार्वजनिक उद्योगो मे था तथा शेष 67·50 लाख अर्थात् 37 5 प्रतिशत निजी क्षेत्र मे था। जबकि यह प्रतिशत सन् 1961 मे सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो मे क्रमश 58 3 एव 41 7 था।"[1] इस प्रकार सार्वजनिक क्षेत्र म रोजगार मे वृद्धि हुई है। सार्वजनिक उद्योगो का रोजगार प्रशासन, तक्नीकी, क्लर्क एव सेवा, मनोरजन एव खेल-कूद आदि विभागो मे अधिक लगा हुआ है। जबकि निजी क्षेत्र का अधिकांश रोजगार विक्रय खनिज व खानों और अकुशल श्रमिको के रूप मे पाया जाता है। अधिक कर्मचारियो के कारण उत्पादन लागत ऊँची आती है।

मजदूरी (Wages)—श्रमिक को उसकी सेवाओ के बदले दिया जाने वाला पारिश्रमिक ही मजदूरी कहलाता है। श्रम उत्पादन का एक साधन है। मजदूरी का भुगतान समयानुसार तथा कार्यानुसार किया जाता है। हमारे देश मे अभी राष्ट्रीय मजदूरी नीति नही बनाई गई है। मौद्रिक मजदूरी मे स्थिरता नहीं है क्योंकि मुद्रा-स्फिति हमारे देश मे विद्यमान है। हमारी विभिन्न पचवर्षीय योजनाओ मे मजदूरी नीति निम्न प्रकार स रही है—

प्रथम पचवर्षीय योजना—सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो म मजदूरी समान होनी चाहिए। वेतन-मण्डलो (Wage Boards) को स्थायी आधार पर नियुक्त किया जाना चाहिए। मजदूरी की विभिन्नताओ को दूर किया जाना चाहिए और न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948 को प्रभावपूर्ण ढग से लागू किया जाए।

दूसरी पचवर्षीय योजना मे समाजवादी समाज की स्थापना के उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु विभिन्न उद्योगो मे मजदूरी बोर्ड स्थापित करने व उनके द्वारा दी गई सिफारिशो को प्रभावपूर्ण तरीके स लागू करने की योजना बनाई गई है। मजदूरी गणना (Wage Census) का कार्य भी इस योजना काल मे किया गया।

तीसरी पचवर्षीय योजना मे औद्योगिक एव कृषि श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी दिलाने का दायित्व सरकार द्वारा लिया गया। सन् 1965 मे मजदूरी उत्पादन और कीमतो के बीच सम्बन्ध का अध्ययन करने हेतु एक अध्ययन दल नियुक्त किया गया। लकिन सन् 1962 व सन 1965 के चीनी व पाकिस्तानी आक्रमणो से इस क्षेत्र मे कुछ भी प्रगति नही हो सके।

चौथी योजना मे श्रमिको की मजदूरी मे कीमत सूचकाक के अनुसार वृद्धि की गई। इस वृद्धि से उत्पादन लागत म वृद्धि हुई और पुन महँगाई बढ गई।

पाँचवीं पचवर्षीय योजना—इसके अन्तर्गत कीमतो मे स्थिरता रखने के लिए मजदूरी की वृद्धि को श्रम उत्पादकता से जोडने का प्रस्ताव रखा गया है। श्रमिको

1 *Dr Mehta & Dr Maheshwari* Public Undertakings & Labour in India 1974, p 27

की उत्पादकता मे वृद्धि के लिए अच्छा भोजन, पोषाहार एव स्वास्थ्य स्तर, शिक्षा एव प्रशिक्षण का उच्चस्तर, अधिक उत्पादक तकनीकी और अनुशासन मे सुधार आदि पर जोर दिया गया है।

न्यूनतम मजदूरी प्रदान करना आवश्यक है। लेकिन बिना रोजगार की गारन्टी के न्यूनतम मजदूरी का कोई महत्त्व नही है। असगठित क्षेत्रो मे न्यूनतम मजदूरी के विभिन्न प्रावधानो को प्रभावपूर्ण ढग से लागू नही किया जाता है। अत राष्ट्रीय स्तर पर इस न्यूनतम मजदूरी को उचित एव प्रभावपूर्ण ढग से लागू किया जाना चाहिए।

सार्वजनिक एव निजी क्षेत्रो के लिए एक राष्ट्रीय मजदूरी ढांचा तैयार किया जाना चाहिए। इस प्रकार पाँचवी योजना काल मे विचार किया जाएगा। कीमत-मजदूरी-आय नीति (Price-Wages Income Policy) को पाँचवी योजना मे महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इससे स्थिरता के साथ विकास एव सामाजिक न्याय की प्राप्ति हो सकेगी। इन तीनो मे घनिष्ठ सम्बन्ध है तथा तीनो म उचित सन्तुलन भी आवश्यक है। हाल ही मे हमारे प्रधान मन्त्री द्वारा घोषित नवीन आर्थिक कार्यक्रमो (New Economic Programmes) से कीमतो मे गिरावट आई है। इससे श्रमिक वर्ग और गरीब वर्ग के लोगो को राहत मिलेगी तथा देश मे एक निश्चित कीमत मजदूरी आय नीति के लिए माग प्रशस्त होगा।

श्रमिक विवाद और सम्बन्ध (Labour Disputes and Relations)—गत दशक मे सार्वजनिक उद्योगो मे विवादो की सख्या मे वृद्धि हुई। शोषक व शोषित के भेद को समाप्त कर दिया जाना चाहिए। औद्योगिक विवादो से किसी न किसी रूप मे श्रमिको मे पाए जाने वाले असन्तोष का पता चलता है। प्रतिवर्ष 2 करोड रुपये की हानि श्रम दिनो की हानि के कारण से होती है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के उद्योगो मे समान रूप से ही औद्योगिक विवाद देखने को मिलते है।

औद्योगिक विवादो के कई कारण हो सकते है। इनमे मानव निर्मित कारण तथा आधुनिक औद्योगीकरण की जटिलताओ की देन है। विभिन्न कारणो के आधार पर होने वाले विवादो से देखन पर पता चलता है कि सबसे अधिक विवाद मजदूरी और भत्तो से सम्बन्धित होते हैं। डॉ मेहता और डॉ माहेश्वरी के अनुसार यह सन् 1961-62 मे 30 4 प्रतिशत था जो बढ कर सन् 1971-72 मे 37 1% हो गया। इसी प्रकार बोनस, कर्मचारी और छटनी, छुट्टी और कार्य के घण्टो, अनुशासन, अन्य कारणो का प्रतिशत क्रमश सन् 1961 62 मे 6 9%, 29 3%, 3% 30 4% था वह बढकर सन् 1971-72 मे 10 6%,25 6% 3 1%,3 8% एव 20 8% हो गया।

कुल विवादो की सख्या सन् 1961-62 मे 1357 थी वह बढकर सन् 1972-73 मे 2137 हो गई। इन झगडो मे सम्मिलित श्रमिको की सख्या 512 हजार से बढकर 1227 हजार हो गई। इसी अवधि मे मानव दिनो की हानि 4919 हजार से बढकर 12750 हजार हो गई।[1]

1 *Dr Mehta & Dr Agarwal* Public Undertakings & Labour in India 1974, p 60-61

अप्रल से दिसम्बर, 1974 की अवधि मे बिहार मे 38 बड़ी हड़तालें हुईं। सार्वजनिक क्षेत्र मे 8,00,353 कार्य दिवसो तथा निजी क्षेत्र मे इसी अवधि मे 7,24,642 कार्य दिवसो की हानि हुई है। रेल्वे हड़ताल के दौरान और देश के विभिन्न भागो मे सन् 1973-74 मे छुटपुट आन्दोलनो के परिणाम स्वरूप 124 करोड़ रु की हानि हुई है और इसके कारण राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था को 10 गुनी से भी अधिक हानि हुई है।[1]

लेकिन *आपातकालीन स्थिति तथा नवीन आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा* (1 जुलाई, 1975) के पश्चात् हड़तालो, कार्य दिवसो की हानि आदि शून्य रहे हैं क्योंकि सरकार ने श्रमिको के सभी विवादो को 31 अगस्त, 1975 तक निपटाने की *घोषणा कर दी थी तथा शेष विवादो का पचनिर्णय व मजदूरो एव प्रबन्धको के* सामूहिक प्रयास से निपटाने पर जोर दिया गया था।[2]

सार्वजनिक उद्योगो के प्रबन्धको पर श्रम कानूनो और नियमनो का लागू न करना, श्रमिको का अनुचित व्यवहार और अनुचित श्रम व्यवहार, श्रम-सघो को *मान्यता न देना, अनुशासन सहिता को स्वीकार और लागू न करना आदि आरोप* लगाए गए हैं। श्रमिको को प्रबन्ध मे सहभागिता देने के क्षेत्र मे भी सन्तोषजनक प्रगति नही हुई है।

सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे औद्योगिक सम्बन्ध सन्तोषजनक नही रहे हैं। इसके *निम्न कारण दिए गए हैं*—

1 सरकारी नीतियो को सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र मे समान रूप से लागू नही किया गया था। सार्वजनिक उद्योगो के प्रबन्धको ने कई त्रिपक्षीय नीतियो तथा प्रस्तावो को लागू नही किया था। साथ ही कई प्रस्तावो से सार्वजनिक क्षेत्र को छूट *दिलवा दी गई थी। इससे श्रमिक असन्तुष्ट थे।*

2 सार्वजनिक उद्योगो मे अच्छे प्रशासको को ही प्रबन्धको के पद पर नियुक्त कर दिया गया था। अच्छे प्रबन्धक हेतु अच्छे प्रशासक का होना आवश्यक नही है। इससे उनमे तानाशाही, लालफीताशाही तथा जिम्मेदारी टालने आदि के दोष पाए जाते हैं।

3 सार्वजनिक उद्योगो के विस्तार को अपने आप मे एक साधन मानने के कारण प्रबन्धको का महत्व कम हो गया है।

4 श्रमिक सघ अपने *नेताओ के सहारे राजनीतिक दल से मिलकर अपना* कार्य करवा लेते हैं जबकि प्रबन्धक ऐसा करके लाभ नही उठा सकते हैं।

अत मधुर औद्योगिक सम्बन्धो के लिए सरकारी नीतियो को सार्वजनिक क्षेत्र मे पूर्ण रूप से लागू किया जाना चाहिए। सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो को निजी

1 लोकतन्त्र की मर्यादाएँ—निदेशक, जनसम्पर्क निदेशालय राजस्थान जयपुर, जुलाई, 1975
' पृष्ठ 2
2 राष्ट्रीय अनुशासन के तीस दिन सूचना एव प्रसारण मत्रालय, भारत सरकार, पृष्ठ 11.

क्षेत्र के लिए एक मार्गदर्शन का कार्य करना होगा। श्रमिकों को भी राष्ट्रीय हित मे अपने असन्तोष को कम करना चाहिए।

निष्कर्ष—केन्द्रीय सरकार ने विभिन्न प्रमुख उद्योगो मे राष्ट्रीय औद्योगिक समितियो (National Industrial Committees) की स्थापना करने का निश्चय किया है जिससे कि सम्बन्धित उद्योग की विभिन्न समस्याओ जैसे—ले ऑफ, छँटनी, बन्द करना अथवा धीमे कार्य करने की प्रवृत्ति, घेराव अथवा हडताल पर पूर्ण रूप से ध्यान दिया जा सके। ये समितियाँ प्रबन्ध मे श्रमिको की भागीदारी की योजना को क्रियान्वयन का कार्य भी करेंगी। 18 मार्च, 1976 को केन्द्रीय सरकार ने बागान उद्योग हेतु एक द्विपक्षीय समिति (Biparite Committee) की स्थापना की घोषणा कर दी है। इसमे श्रमिको एव प्रबन्धको के 9-9 प्रतिनिधि होगे। यह समिति विभिन्न समस्याओ पर विचार करेगी जिससे कि कार्यकुशलता, उत्पादन और उत्पादकता, किस्म नियन्त्रण तथा क्षमता के पूर्ण उद्योग मे सुधार किया जा सके।[1]

भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी वी गिरि ने भी श्रमिको की उत्पादकता और उद्योगो के विकास हेतु श्रमिको एव प्रबन्धको के मतभेदो को दूर करने हेतु एक *सुव्यवस्थित* व्यवस्था करने का सुझाव दिया है जिसे सरकार की सहायता से विभिन्न उद्योगो मे श्रम-प्रबन्धको के आपसी सहयोग मे वृद्धि करके ही प्राप्त किया जा सकता है।[1]

---

1 Hindustan Times, March 18, 1976
2 Hindustan Times, Feb. 14, 1976

5 भारत में श्रम संघों के कार्य, संरचना, वित्त एवं नियोक्ताओं के संगठन

(Functions, Structure & Finance of Trade Union In India—Employers' Organisation in India)

श्रम सघ की परिभाषा (Definition)—श्री वी. वी गिरि के अनुसार, "श्रम-सघ श्रमिको के ऐच्छिक सगठन है जिनके द्वारा सामूहिक कार्यवाही से उनके हितो की रक्षा की जाती है।"[1]

श्री एव श्रीमती वेब्बस के अनुसार, "श्रम सघ श्रमिको की कार्यदशाओ को बनाए रखने एव उनमे सुधार करने हेतु बनाए गए स्थाई सगठन है।"[2]

श्री वी अग्निहोत्री के अनुसार, "ये रोजगार की दशाओ, मजदूरी का नियमन, राष्ट्रीय जीवन एव अन्य क्षेत्रो मे एक सगठित वर्ग के रूप मे श्रमिको की सहभागिता आदि सम्बन्धित पारस्परिक मामलो मे श्रमिको और मालिको, श्रमिको और सरकार के बीच सम्बन्धो का नियमन का कार्य करते है।"[3]

इस प्रकार श्रम सघ श्रमिको के सगठन हैं जिनके माध्यम से श्रमिको की कार्य की दशाओ मे सुधार करके उनके कल्याण मे वृद्धि की जाती है।

श्रम सघ के कार्य (Functions of Trade Unions)—श्रमिक सगठनो द्वारा अपने सदस्यो के कल्याण के लिए कार्य किया जाता है। ये सगठन अपनी सामूहिक सौदाकारी शक्ति से मालिको पर दबाव डालकर सदस्यो की कार्य की दशाओ तथा रहने की दशाओ मे सुधार करवाने मे सफल हो जाते हैं। श्रम सघ के कार्यों को मोटे तौर पर तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है। वे निम्नलिखित है—

1 रोजगार से सम्बन्धित कार्य (Intra-mural Activities)—ये कार्य श्रमिक जहाँ कार्य करता है, उससे सम्बन्ध रखते है। ये रोजगार से सम्बन्धित दशाओ म सुधार करने हेतु किए जाते हैं। इन कार्यों का उद्देश्य श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी, रोजगार एव कार्य की दशाओ मे सुधार, कार्य के घण्टो मे कमी, मालिको व प्रबन्धको से अच्छा व्यवहार प्राप्त करना, प्रबन्ध मे श्रम सहभागिता आदि प्राप्त करना है। इन

1 *Giri, V V* Labour Problems in Indian Industry, p 1
2 *Webbs, Sidney and Beatrice* History of Trade Unionism, p 1
3 *Agnihotri, V* Industrial Relations in India, p 31

उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु श्रमिक सघो द्वारा सामूहिक सौदाकारी, समझौता, हडताल एव कार्य का बहिष्कार आदि तरीके अपनाए जाते है । ये कार्य सघर्ष के आधार पर किए जाते है । ये श्रमिक सघो के लडाकू कार्य (Militant or Fighting Functions of Trade Unions) कहलाते हैं ।

2. बाह्य अथवा श्रमिको की कार्यकुशलता से सम्बन्धित कार्य (Extra-mural Activities)—श्रमिक सघो द्वारा ये कार्य श्रमिको को आवश्यकता के समय प्रदान किए जाते है तथा इससे श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होती है । श्रमिको को बीमारी, दुर्घटना एव रोजगारी के समय मदद दी जाती है । मनोरजन, वाचनालय, पुस्तकालय, खेलकूद की व्यवस्था शिक्षा आदि कल्याणकारी कार्य श्रम सघो द्वारा किए जाते हैं । सुदृढ श्रम सघ सदस्यो के लिए आवास की व्यवस्था करते है और श्रम पत्रिका का प्रकाशन भी करते हैं । ये कार्य श्रम सघो की वित्तीय स्थिति पर निर्भर करते है । इन्हे श्रमसघो के कल्याणकारी कार्य अथवा भाईचारे से सम्बन्धित कार्य (Welfare or Fraternal Activities) कहा जाता है ।

3 राजनीतिक कार्य (Political Activities)—श्रम सघ देश की राजनीति मे भी सक्रिय योगदान देते हैं । वे अपने सदस्यो को चुनाव के लिए खडा करते है । कुछ देशो मे श्रमदल (Labour Party) है इसके द्वारा चुनाव लडे जाते है । इगलैण्ड मे श्रमिको की कई बार सरकार बनी है । भारत मे भी श्रम सघ अपने सदस्यो को चुनाव के लिए खडा करते है । वे सदैव सरकारी नीति को प्रभावित कर श्रमिको को लाभ पहुँचाने का कार्य करते हैं ।

श्रम सघो के प्राचीन कार्य मालिको और सरकार से श्रमिको के हितो की रक्षा करना ही था । यह सघर्षमय कार्य था । लेकिन आधुनिकीकरण के साथ-साथ श्रम सघो के कार्यों से सम्बन्धित विचारधारा मे परिवर्तन आया है । अब श्रम सघ कम सघर्षमय तथा ज्यादा अपने दायित्व को समझकर श्रमिक कल्याणकारी कार्यो मे भाग लता है।

श्री वी अग्निहोत्री के अनुसार 'श्रम सघो के अधिकाश कार्य श्रमिक सदस्यो की शिकायतो एव अधिक मजदूरी महँगाई भत्ता, बोनस, नौकरी से हटाए एव छँटनी किए श्रमिको को वापिस कार्य पर लेने सम्बन्धी विवादो मे प्रतिनिधित्व करने से सम्बन्ध रखते है ।'[1] कुछ ही श्रम सघो ने श्रमिको के लिए मनोरजन, शिक्षा तथा कल्याणकारी कार्यो की व्यवस्था की है । इसका प्रमुख कारण श्रमिक सघो की वित्तीय स्थिति का कमजोर होना है तथा श्रम सघो के आधुनिक विचार को न समझना है । भारत जैसे एव विकासशील देश म श्रम सघो के 'लडाकू कार्य' (Militant Activities) को कोई स्थान नही है । श्रम सघो द्वारा शिक्षा, चिकित्सा, मनोरजन, कल्याण एव आवास व्यवस्था, श्रमिको हेतु उपभोक्ता एव साख समितियाँ चलान आदि सम्बन्धी कार्य को करना चाहिए । भारतीय अर्थ-व्यवस्था एक विकासशील अर्थ-व्यवस्था है । नियोजित अर्थ-व्यवस्था के लक्ष्यो की प्राप्ति हेतु श्रम सघो को सरकार का पूर्ण सहयोग

1 *V Agnihotri* Industrial Relations in India p 37

करना होगा। यह तभी सभव हो सकता है जब श्रम सघ सघर्षवादी विचारधारा को त्याग कर उसके स्थान पर रचनात्मक कार्य (Constructive Activities) करते हैं।

श्रमसंघ का इतिहास (*History of Trade Unions*)—भारत मे श्रमसघो का विकास औद्योगीकरण की देन है। 19वीं सदी के मध्य मे देश के विभिन्न भागो मे आधुनिक उद्योगो की स्थापना की गई। प्रारम्भिक सगठन मालिको द्वारा बनाए गए थे। श्रमिक मालिको से हुए प्रसविदे को नही ठुकरा सकता था। इसके लिए उसे दण्डित करने का प्रावधान सन् 1860 के अधिनियम मे था। श्रमिक निर्धन थे। उनका मालिको द्वारा शोषण किया जाता था।

इससे हम यह नही कह सकते कि प्रारम्भिक औद्योगीकरण काल मे श्रमिको के हितो के लिए कोई कार्य नही किया गया। श्रम कल्याण कार्य अधिकांशत सामाजिक कार्यकर्त्ताओ, उदारवादियो तथा अन्य धार्मिक नेताओं द्वारा मानवीय आधार पर किए गए थे। सन् 1872 मे बगाल के ब्रह्म समाज के उपदेशक श्री मजूमदार (P. C. Majumdar) ने बम्बई शहर मे श्रमिको के कल्याण के लिए 8 रात्रि शालाएँ चलाईं। दलित वर्ग के कल्याण हेतु भी विभिन्न समाजो द्वारा कई कार्य किए गए। इस समय कुछ स्थानो पर हड़तालें भी हुईं। सन् 1877 मे नागपुर की एम्प्रेस मिल मे मजदूरी के विवाद को लेकर हडताल हुई। सन् 1882 से सन् 1890 की अवधि मे बम्बई तथा मद्रास मे 25 हड़तालें हुईं।

सन् 1875 मे श्री एस एस बनर्जी के नेतृत्व मे बाल एव महिला श्रमिको की दयनीय स्थिति की ओर ध्यान आकर्षित करने हेतु आन्दोलन किया गया। औद्योगिक श्रमिको मे वास्तविक सगठन की नीव सन् 1884 मे जब श्री एस एस. लोखाण्डे ने बम्बई मे कारखाना श्रमिको की एक सभा बुलाई और अपनी माँगो के अनेक प्रस्ताव पास करके भारतीय कारखाना आयोग के पास भेजा। श्री लोखाण्डे ने बम्बई मिल मजदूर सघ (Bombay Mill-hands Association) की स्थापना की। सन् 1881 व सन् 1891 मे कारखाना अधिनियम पास किए गए। सन् 1897 मे ब्रह्मा और भारतीय रेल्वे कर्मचारी समाज (Amalgamated Society of Railway Servants of India & Burma) की स्थापना की गई।

सन् 1905 मे बगाल के विभाजन से राजनीतिक आन्दोलन के साथ-साथ श्रम आन्दोलन का भी विकास हुआ। सन् 1905 मे कलकत्ता मे प्रिण्टर्स यूनियन (*Printers'* Union) और सन् 1907 मे बम्बई मे पोस्टल यूनियन (Postal Union) की स्थापना की गई। सन् 1910 मे बम्बई मे कामगार हितवर्द्धक सभा (Kamgar Hitavardhak Sabha) की स्थापना की गई।

प्रथम महायुद्ध (*1914–18*) *के समय श्रम सघ आन्दोलन का तीव्र विकास* हुआ। भारतीय श्रमिको को विदेशो मे गए सैनिको से जानकारी प्राप्त हुई। रूस मे सन् 1917 मे क्रान्ति से श्रमिको का राज्य बना। कीमतो मे वृद्धि होने से श्रमिको को आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पड़ा है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना के कारण भी श्रम सघ आन्दोलन के तीव्र विकास को प्रोत्साहन मिला।

सन् 1920 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे श्रमिको का प्रतिनिधित्व करने हेतु अखिल भारतीय श्रम सघ काँग्रेस (AITUC) की स्थापना की गई । इसी अवधि मे कई औद्योगिक केन्द्रो मे हड़तालें हुई । सन् 1920 मे सम्पूर्ण देश मे कुल 200 हड़तालो की घोषणा की गई । सन् 1922 के पश्चात् हड़तालो की सख्या मे कमी आई । सन् 1924 से भारतीय श्रम सघ आन्दोलन मे सघर्षवादी विचारधारा पनपने लगी । इसी बीच (सन् 1924-35) साम्यवादियो का श्रम सघो पर आधिपत्य हो गया और इसके परिणामस्वरूप एटक (ATUC) मे विभाजन हो गया । तीसा की महान् मदी के कारण श्रमिको की मजदूरी घट गई तथा उनमे बेरोजगारी फैल गई । सन् 1929 मे नागपुर मे एटक दो भागो मे बँट गई । श्री एन एम. जोशी, श्री वी वी गिरि आदि काग्रेसियो ने एक अलग से राष्ट्रीय श्रम सघ सगम (National Trade Union Federation) की स्थापना की । इसका कार्य गैर-साम्यवादी श्रम सघो के कार्यों का समन्वय करना था । इसी अवधि मे बम्बई, कानपुर, शोलापुर और जमशेदपुर मे बडी सख्या मे श्रमिको ने हड़तालें की । सन् 1929 मे शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour) की नियुक्ति की गई और इसने सन् 1931 मे अपनी रिपोट पेश की । सन् 1931 मे एक और विभाजन हुआ और श्री एस. वी देशपाण्डे तथा श्री बी टी रानादिवे ने अखिल भारतीय लाल श्रम सघ काँग्रेस (All India Red Trade Union Congress) की स्थापना की । सन् 1934 मे सूती वस्त्र मिलो के श्रमिको ने मजदूरी कटौती के विरोध मे एक बडे पैमाने पर बम्बई, नागपुर व शोलापुर मे हड़ताल की । इसी अवधि मे सन् 1926 मे अखिल भारतीय श्रम सघ अधिनियम (All India Trade Union Act, 1926) पास किया गया जिसके अन्तर्गत श्रम सघ बनाने की अनुमति दी तथा श्रमिको के विरुद्ध किसी भी प्रकार के अपराध (श्रम सघ से सम्बन्धित) को अवैधानिक घोषित कर दिया गया ।

सन् 1935 मे लाल श्रम सघ काँग्रेस (Red Trade Union Congress) को एटक (AITUC) मे मिला दिया गया । सन् 1938 मे नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन भी एटक मे मिला दी गई । इस प्रकार सन् 1935-39 के काल मे भारतीय श्रमसघ आन्दोलन मे एकता के क्षेत्र मे प्रगति हुई । यह एकता तीन कारणो से पनपी-प्रथम, सन् 1935 मे लोकप्रिय सरकार की स्थापना हुई, द्वितीय, विधान सभाओ मे श्रमिको की सीट निश्चित करना तथा तृतीय, मालिको की विचारधारा मे परिवर्तन हुआ कि श्रम सघ परमावश्यक है ।

दूसरे महायुद्ध काल (1939-46) मे श्रम सघ आन्दोलन को एक नया जोश मिला । सन् 1940 मे नेशनल ट्रेड यूनियन फेडरेशन को समाप्त कर दिया गया । फिर भी श्रमिको मे एकता का अभाव था । युद्ध मे ब्रिटिश शासन का साथ दिया जाए या नही । इस विषय को लेकर आपस मे फूट पड गई । श्री एम एन राय द्वारा इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर की स्थापना सन् 1941 मे की गई । यह शासन के पक्ष मे युद्ध-काल मे सहयोग देने के पक्ष मे था । सन् 1942 मे 'भारत छोडो आन्दोलन' के

कारण कांग्रेसी नेताओ को जेल मे डाल दिया गया। सन् 1946 मे एटक और इण्डियन फेडरेशन ऑफ लेबर मे प्रतिनिधित्व करने के विषय पर मतभेद उत्पन्न हो गया। केन्द्रीय सरकार के मुख्य श्रम आयुक्त की जाँच के बाद एटक को प्रतिनिधित्व देने वाले श्रमसघ को मान्यता दी गई।

सन् 1947 मे कांग्रेस पार्टी ने अपनी अलग से भारतीय राष्ट्रीय श्रम सघ कांग्रेस (Indian National Trade Union Congress or INTUC) राष्ट्रीय स्तर की श्रम सघ बनाई। वर्तमान समय मे सबसे अधिक श्रमिको का प्रतिनिधित्व करने वाली एक राष्ट्रीय श्रम सघ है।

सन् 1948 मे समाजवादी दल ने अलग से श्रम सघ बनाया जिसे हिन्द मजदूर सभा (HMS) के नाम से जाना जाता है। सन् 1949 मे हिन्द मजदूर सभा मे से एक अलग से श्रम सघ बनाया गया जिसे सयुक्त श्रम सघ कांग्रेस (United Trade Union Congress or UTUC) कहा जाता है। भारत सरकार ने इन चारो श्रम सघो (AITUC, INTUC, HMS, UTUC) को राष्ट्रीय एव अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो तथा सामयिक परामर्श हेतु मान्यता प्रदान करदी है।

इनके अतिरिक्त सन् 1955 मे जनसघ पार्टी द्वारा भारतीय मजदूर सघ (BMS) की स्थापना की गई। सन् 1965 मे सयुक्त समाजवादी पार्टी (SSP) ने भी हिन्द मजदूर पचायत (HMP) नामक श्रम सघ की स्थापना की। ये दोनो ही श्रम सघ भारत सरकार द्वारा केन्द्रीय तथा राज्य सरकारो के परामर्श मे शामिल करने के लिए मान्यता हेतु प्रयास कर रहे है। इनके अतिरिक्त कुछ श्रम सघ स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे हैं। इनमे अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी सघ (All India Bank Employees' Association), राष्ट्रीय डाक एव तार कर्मचारी सगम (National Federation of P & T Workers), भारतीय रेल कर्मचारियो का राष्ट्रीय सगम (National Federation of Indian Railwaymen), अखिल भारतीय खान मजदूर सगम (All-India Mine Workers' Federation) मुख्य हैं।

सन् 1970 मे एटक मे से वामपथी श्रमिक अलग हो गए और भारतीय श्रमसघ का केन्द्र (Centre of Indian Trade Union) की स्थापना हुई। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की विचारधारा वालो मे भी मतभेद होने के कारण इन्टक (INTUC) मे भी एक दरार पडी जिसके परिणामस्वरूप सन् 1971 मे गुजरात का सबसे बडा श्रम सघ मजूर महाजन (Majur Mahajan) इससे पृथक् हो गया। सगठन कांग्रेस के नेताओ ने सन् 1972 मे एक बैठक बुलाकर यह निर्णय लिया कि इन्टक से श्रम सघो का सम्बन्ध विच्छेद कर लिया जाए और इसके परिणामस्वरूप राष्ट्रीय सघ सस्थान (National Labour Organisation or N L O) का जन्म हुआ जिससे गुजरात के सघो ने अपना सम्बन्ध जोड लिया।

राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न विचारधाराओ वाले श्रम सघो मे एकता स्थापित करने हेतु सन् 1973 मे केन्द्रीय श्रम सघो की राष्ट्रीय परिषद् (National Council of Central Trade Unions or NCCTU) की स्थापना की गई।

एक सीमा तक एक राष्ट्रीय स्तर पर सामूहिक मच तैयार करने मे सरकार को सफलता मिली है।

राजस्थान सरकार ने भी सितम्बर 1975 मे श्रम शीर्षस्थ सगठन (Appex Body) हेतु केन्द्रीय आधार पर इन्टक व एटक को समान प्रतिनिधित्व (3-3 सदस्य) देकर एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इससे विभिन्न सघो मे पारस्परिक एकता बढेगी।[1]

श्रम सघो का सगठन (Organisation of Trade Unions)—भारतीय श्रम सघ अधिनियम, 1926 के अन्तर्गत सभी श्रम सघो का पजीयन आवश्यक है। इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रम सघो को सिविल व अपराधी कार्यो के विरुद्ध सरक्षण प्रदान किया जाता है। विभिन्न वर्षो मे केन्द्रीय एव राज्यो के श्रम सघो एव उनकी सदस्य सख्या निम्न प्रकार रही है।[2]

पजीकृत श्रम सघ एव सदस्यता

विवरण	केन्द्रीय श्रम सघ			राज्यीय श्रम सघ		
	1955–56	1970	1971	1955-56	1970	1971
1 रजिस्टर में दर्ज सघो की सख्या	174	802	847	7921	19512	19865
2 विवरण भेजने वाले सघो की सख्या	105	320	200	3901	6683	3509
3 विवरण भेजने वाले सघो की सदस्य सख्या	2,13,000	7,10,751	5,46,340	20,62,000	35,30,318	17 10,720

उपरोक्त तालिका से हमे भारतीय श्रम सघ की वर्तमान स्थिति का ज्ञान प्राप्त होता है। रजिस्टर मे दर्ज सघो की सख्या सन् 1955 मे 174 थी वह सन् 1971 मे बढकर केन्द्रीय सघो की सख्या 847 हो गई है। सदस्यो की सख्या मे भी वृद्धि हुई है। लेकिन सन् 1971 मे सदस्य सख्या मे गिरावट आई है। इसका प्रमुख कारण हमारे देश मे कुछ सघ ऐसे है जो राजनीतिक स्वार्थ की पूर्ति हेतु बनाए जाते हैं और बाद मे समाप्त हो जाते है। इस प्रकार के सघो को जब श्रम सघ (Pocket Trade Union) भी कहा जाता है। छोटे सघो की सख्या काफी है, लेकिन उनकी सदस्य सख्या बहुत कम है। यह श्रम सघो की बाहुल्यता की विशेषता बताती है।

भारतीय श्रम सघ आन्दोलन का स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् विकास काफी तेजी से हुआ है और इसे प्रगति का काल कहा जा सकता है क्योकि—

(1) श्रम सघो पर आन्तरिक तथा बाह्य प्रभावो मे वृद्धि,

(2) श्रम सघो मे राजनीतिक तथा वैचारिक मतभेद के कारण विरोधी भावनाओ का उत्पन्न होना,

(3) औद्योगिक सम्बन्धो मे अनिवार्य न्यायाधिकरण के साथ-साथ सरकारी भूमिका का महत्त्व बढना,

1 राजस्थान पत्रिका, 6 सितम्बर, 1975

2. India 1975, p 297

(4) पजीकृत श्रम सघो को भारतीय श्रम सघ अधिनियम 1926 के अन्तर्गत विशेष सुविधाएँ देना,

(5) श्रमिको द्वारा अपने हितो की रक्षा करने हेतु सामूहिक एकता का विकास,

(6) नियोक्ताओ द्वारा अपने हितो हेतु श्रम सघो की स्थापना करना आदि।

उपरोक्त कारणो से श्रम सघो की सख्या तथा सदस्यता मे काफी वृद्धि हुई है। पजीकृत श्रम सघो की सख्या तथा सदस्य सख्या क्रमश 1961–62 म 11416 और 39 हजार थी जो 1974 मे बढकर क्रमश 18093 तथा 16,8,1,000 हो गई है।[1]

हमारे देश मे कई अखिल भारतीय श्रम सगठन हैं। इनमे से कुछ का भारतीय श्रम सघ अधिनियम, 1926 के अन्तर्गत पजीयन किया गया है। फिर भी श्रमिको के चार राष्ट्रीय स्तर के सगठनो को सरकार द्वारा मान्यता दी गई है। ये निम्नलिखित हैं—

1. भारतीय राष्ट्रीय श्रम सघ कांग्रेस (INTUC)—सन् 1947 मे कांग्रेस *दल से सम्बन्धित श्रम सगठन की स्थापना की गई थी। यह गांधीवादी विचारधारा* के आधार पर देश मे औद्योगिक सम्बन्धो का विकास करना चाहती है।

इसके अन्तर्गत श्रम सघो का गठन उद्योग के आधार पर किया जाता है। इसके साथ ही इसने औद्योगिक सघो के राष्ट्रीय सगम (National Federation) *बनाने के लिए भी प्रोत्साहित किया है। राज्यीय स्तर पर भी फेडरेशन बनाने के* कार्य को प्रोत्साहन दिया गया है। इस श्रम सघ के निम्नलिखित लक्ष्य हैं—

(i) ऐसे समाज का निर्माण जिसमे सभी को समान अवसर मिले,

(ii) सभी श्रमिको को सगठित करना,

(iii) श्रमिको की कार्य तथा रहने की दशाओ मे सुधार,

(iv) *समाज व उद्योग मे श्रमिक स्तर मे वृद्धि करना*

(v) औद्योगिक विवादो को पारस्परिक वार्ता तथा समझौतो के माध्यम से निपटाना

(vi) समझौता वार्ता के असफल होने पर पचनिर्णय द्वारा फैसला,

(vii) *श्रमिको मे उद्योग तथा समाज के प्रति उत्तरदायित्व की भावना* जाग्रत करना,

(viii) श्रमिको की कार्य कुशलता मे वृद्धि करना।

यह सगठन अपने कार्यालय से इण्डियन वर्कर' (Indian Worker) नामक पत्र भी निकालता है। *यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (ILO) से भी निकट का* सम्बन्ध रखती है। उद्योगो के राष्ट्रीयकरण मे विश्वास रखती है तथा विवाद निपटाने के सभी तरीको के असफल होने पर ही हडताल करना।

1 डॉ मामोरिया व डॉ दशोरा भारतीय श्रम समस्याएँ, पृष्ठ 520

2 श्रखिल भारतीय श्रमसंघ कांग्रेस (AITUC)—यह सन् 1920 मे बनाई गई थी। ग्रब यह साम्यवादियो के ग्राधिपत्य मे है। यह देश मे एक समाजवादी समाज की स्थापना करने का स्वप्न देखती है जिसमे उत्पादन के साधनो, वितरण ग्रौर विनिमय का समाजीकरण एव राष्ट्रीयकरण किया जाएगा। इस समाज मे सभी वर्ग शोषण से मुक्त होगे। इन्टक की स्थापना के पश्चात् इसके सदस्यो की सख्या कम हो गई है तथा कई राज्यो मे इसके राज्य स्तर के सगठन बने हुए हैं।

3 हिन्द मजदूर सभा (HMS)—यह समाजवादी पार्टी द्वारा सन् 1948 मे स्थापित की गई थी। इसका उद्देश्य भारत मे एक प्रजातान्त्रिक समाजवादी समाज की स्थापना करना है। भारतीय श्रमिक वर्ग के ग्रार्थिक, राजनीतिक, सामाजिक एव सांस्कृतिक हितो मे ग्रभिवृद्धि करना है। इन उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु वैधानिक प्रजातान्त्रिक एव शान्तिपूर्ण तरीको का उपयोग किया जाएगा।

4. संयुक्त श्रम संघ कांग्रेस (UTUC)—यह सन् 1949 मे बनाई गई थी। जब समाजवादी नेता हिन्द मजदूर सभा के कार्यक्रम से सहमत नही हो पाए तो उन्होने इस सगठन का गठन किया। इसका उद्देश्य श्रम सघो का एक केन्द्रीय स्तर पर गठन करना है तथा राजनीतिक दलो से श्रमिक सघो को पृथक् रखा जाएगा। यह सगठन ग्रधिक लोकप्रिय नही हो पाया है तथा इसकी प्रगति भी ग्रसन्तोषजनक रही है।

श्रम सघो मे बाह्य नेतृत्व
(Outside Leadership in Trade Unions)

भारतीय श्रम सघ ग्रान्दोलन की सबसे प्रमुख विशेषताएँ इसका बाह्य नेतृत्व तथा विभिन्न राजनीतिक दलो से सम्बद्ध होना है। प्रारम्भ से ही श्रम सघ विभिन्न राजनीतिज्ञो के नेतृत्व मे विकसित हुए हैं। भारतीय श्रम सघ ग्रधिनियम, 1926 (Indian Trade Union Act of 1926) की धारा 22 के तहत किसी भी श्रम सघ के कुल पदाधिकारियो के ग्राधे से कम किसी रोजगार या उद्योग मे नही होने चाहिए। शेष पदाधिकारी बाहरी व्यक्ति हो सकते हैं।

शाही श्रम ग्रायोग (Royal Commission on Labour, 1931) ने सिफारिश की थी कि, "एक सघ के सदस्यो द्वारा सक्रिय भाग लेने की वांछनीयता को ध्यान मे रखते हुए कम से कम दो तिहाई ग्रान्तरिक व्यक्ति होने चाहिए।"[1] लेकिन इस सिफारिश को लागू नही किया गया। श्री एस मुकर्जी के ग्रनुसार, 'ग्राज के श्रम सघ पुराने श्रम सघो से काफी भिन्न है। उनकी सदस्यता, शिकायत निवारण पद्धति मजदूरी समझौते एव सामूहिक सौदाकारी की जटिलताएँ, सामान्य सदस्यो की सजगता, प्रशासनिक निर्णयो एव गतिशील ग्रन्तर सघ, जटिलताएँ, सघ-प्रबन्ध एव सघ-सरकार के सम्बन्धो ग्रादि मे महत्वपूर्ण परिवर्तन हो गए है। जिस वातावरण मे श्रम सघ पनपता है उस बाह्य वातावरण की उपेक्षा नही की जा सकती है। इसे

1 Report of the Royal Commission on Labour, 1931, p 331

वातावरण सम्बन्धी विभिन्न बाह्य तत्त्वो जैसे सरकार, जनता एव ग्रन्य सघो से सम्बन्ध रखना पड़ता है। एक श्रम सघ नेता जहाँ तक श्रम सघ के कार्यों को करता है, वह एक व्यावसायिक प्रबन्धक से कम नही है। सफल नेतृत्व पर ही श्रम सघ द्वारा अपने सदस्यो को पूर्ण रूप से सन्तुष्ट किया जा सकता है। सकट काल मे उसके दृढ निश्चय से ही सदस्यो की वफादारी खोने, सघो से प्रतिस्पर्द्धा अथवा सरकार की श्रम विरोधी नीति पर विजय प्राप्त की जा सकती है।"[1]

भारतीय श्रम सघो पर बाह्य नेतृत्व तथा राजनीति से सम्बद्धता के निम्नलिखित दोप है—

1 बाह्य नेतृत्व तथा राजनीति से सम्बद्धता से श्रमिको के सामाजिक तथा आर्थिक उद्देश्यो की प्राप्ति के स्थान पर व्यक्तिगत स्वार्थों अथवा ईर्ष्या के परिणामस्वरूप श्रम सघो की सत्ता का दुरुपयोग किया जाता है। श्री किरकाल्डी (H S Kirkaldy) के अनुसार बाहरी व्यक्ति अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु श्रमिको का शोषण करते है।

2 बाह्य नेतृत्व के कारण श्रम सघो मे आन्तरिक नेतृत्व नही पनप सका है। इससे भारतीय श्रम सघ आन्दोलन का विकास आत्मनिर्भरता तथा प्रजातान्त्रिक तरीको के आधार पर नही हो सका है।

3 श्रम सघो के अधिकांश नेता सामान्य श्रमिक वर्ग मे से नही हैं। वे औद्योगिक एव तकनीकी जानकारी नही रखते है। कभी-कभी इस अज्ञानता के कारण वे श्रमिको के हितो को प्रबन्धको के सम्मुख गलत प्रस्तुत कर देते हैं। इससे श्रमिको और मालिको के सम्बन्ध खराब हो जाते है और आए दिन झगडे होते रहते हैं।

4 बाह्य नेतृत्व और राजनीति की सम्बद्धता से श्रम सघो मे बाहुल्यता (Multiple Unions) पायी जाती है। अलग अलग राजनीतिक दलो द्वारा अपने स्वार्थ की पूर्ति हेतु श्रम सघ बनाए जाते है। इससे श्रम सघ कमजोर हो जाते हैं तथा आपस मे प्रतिस्पर्द्धा होने लगती है। यह श्रम सघो की बाहुल्यता और प्रतिस्पर्द्धा भारत मे सुदृढ एव सगठित श्रम सघ आन्दोलन के विकास मे बाधा उत्पन्न करती है।

बाह्य नेतृत्व तथा राजनीति की सम्बद्धता के कारण भारतीय श्रम सघ आन्दोलन को निम्नलिखित लाभ हैं—

1. वर्तमान समय मे श्रमिको मे जागृति, श्रम सघो की वर्तमान स्थिति तथा श्रमिको की कार्य तथा आवास की दशाओ मे जो सुधार हुआ है वह बाह्य नेतृत्व की ही देन है।

2. बाह्य नेतृत्व के कारण मालिको से बाहरी व्यक्ति डरते नही हैं क्योकि वे श्रमिक नहीं हैं। वे श्रमिको के हितो की रक्षा करते है और इसके परिणामस्वरूप भारतीय श्रम सघ आन्दोलन की सामूहिक सौदाकारी मे वृद्धि हुई है।

1 *S Mookerjee* An Article on 'Professionalising Trade Union Leaders" appeared in Economic Times, May 28, 1975

3 बाह्य नेतृत्व करने वाले अधिकाँश व्यक्ति किसी न किसी राजनीतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं वे श्रमिको मे एकता तथा जागरुकता की भावना पैदा करते है। अपनी महत्त्वपूर्ण सेवाओ तथा मार्गदर्शन से वे श्रमिक वर्ग की अज्ञानता को दूर करके श्रमिको के हितो की रक्षा करते है।

एक श्रम सघ के नेता को श्रम सघ का कार्य एक व्यवसायी (Profession) के रूप मे करना चाहिए। एक व्यवसायीकरण (Professionalisation) की पूर्व शर्तें निम्नलिखित है—

(1) एक श्रमसघ के नेता को अपना पूर्ण समय श्रम सघ के कार्य मे लगाना चाहिए।
(2) सुशिक्षा एव प्रशिक्षण के माध्यम से उसे श्रमसघ म विशिष्ट कुशलता प्राप्त करनी चाहिए।
(3) सामाजिक एव व्यावसायिक क्षेत्र मे ऊँचा स्थान रखन हेतु उसकी विशिष्ट कुशलता के लिए उचित पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।

बाह्य नेतृत्व से सम्बन्धित समस्या के बारे मे कोई उचित नीति निर्धारित नही की जा सकी है। यहाँ तक कि केन्द्रीय श्रम सघ सगठनो मे भी इस विषय म एकता नही पायी जाती है।[1]

श्रम सघो के नेतृत्व मे व्यावसायीकरण (Professionalisation) की स्थिति को सुदृढ आधार पर चलाने के लिए आवश्यक है कि श्रम सघो के विभिन्न दोषो जैसे बाह्य नेतृत्व राजनीतिक प्रभाव, श्रम सघो की बाहुल्यता वित्तीय कमजोरी तथा सगठनात्मक अस्थिरता को दूर किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 के अनुसार श्रम सघ के बाह्य नेतृत्व को कानूनी रोक के बजाय आन्तरिक शक्तियो के माध्यम से नियन्त्रित करना होगा। इस आयोग ने आन्तरिक नेतृत्व को सुदृढ करने हेतु निम्न सुझाव दिए हैं[2]—

(1) श्रमिको की शिक्षा मे वृद्धि करना
(2) श्रमिको को तग करने तथा अन्य श्रमिको के अनुचित व्यवहार हेतु वैधानिक दण्ड दिया जाए
(3) श्रम सघ सगठनकर्त्ताओ द्वारा सघ के सगठन हेतु श्रमिको को प्रशिक्षण देना,
(4) सघ के कार्यकर्त्ताओ म बाह्य व्यक्तियो के अनुपात पर निम्न प्रकार से सीमा निर्धारित करना—
   (i) जहाँ 1000 से कम श्रमिक हो वहाँ बाहरी व्यक्तियो का अनुपात 10%से अधिक न हो,
   (ii) 1000 से 10,000 के बीच 20%
   (iii) 10 000 से अधिक होने पर 30 प्रतिशत,
   (iv) उद्योग के अनुसार श्रम सघो मे 30 प्रतिशत की छूट।

1. *S Mookerjee* Article on Professionalising T U Leaders Economic Times May 28, 1975
2 Report of the National Commission on Labour 1969 p 291

(5) भूतपूर्व कर्मचारियों को आन्तरिक व्यक्ति समझा जाए,
(6) कोई भी श्रम सघ का अधिकारी किसी भी राजनीतिक दल मे किसी पद पर नही होगा।

राष्ट्रीय आयोग के एक अध्ययन दल ने सिफारिश की कि कोई भी श्रम सघ का अधिकारी एक निश्चित पजीकृत श्रम सघो से ज्यादा का अधिकारी नहीं बन सकता।

सघ प्रतिस्पर्द्धा
(Union Rivalry)

भारतीय श्रम सघ की एक महत्वपूर्ण विशेषता आन्तरिक एव बाह्य प्रतिस्पर्द्धा का पाया जाना है। वर्तमान समय मे श्रम सघ हमारी औद्योगिक प्रणाली तथा आर्थिक एव सामाजिक जीवन का एक आवश्यक अग बन गए है। प्रारम्भ मे गांधीजी तथा श्री वी वी गिरि जैसे श्रम नेताओ ने मानवीय दृष्टिकोण से श्रमिको को सगठित किया था लेकिन बाद मे स्वतन्त्रता आन्दोलन मे इससे सहायता ली गई।

हाल ही के वर्षो मे देश मे विभिन्न औद्योगिक हडतालो का प्रमुख कारण अन्तर-सघ एव बाह्य सघ मे प्रतिस्पर्द्धा का पाया जाना है। इस प्रतिस्पर्द्धा से भारतीय औद्योगिक सम्बन्धो का विकास सामूहिक सौदाकारी के आधार पर नही हो पाया है। इस विशेषता से भारतीय श्रम सघ आन्दोलन का विकास श्रमिक सघो व सदस्यो की सख्या के रूप मे मात्रात्मक विकास (Quantitative Growth) हुआ है लेकिन इससे गुणात्मक पहलू के मार्ग मे बाधाएँ आई हैं। अन्तर यूनियन व बाह्य यूनियन प्रतिस्पर्द्धा को कई अन्य तत्वो से और भी अधिक प्रोत्साहन मिला है। वे तत्त्व निम्नलिखित है–

(1) भूतकालीन घटनाओ जैसे ब्रिटिश शासन का महायुद्ध काल मे साथ देना अथवा नही देना आदि के कारण श्रम सघो मे प्रतिस्पर्द्धा को प्रोत्साहन मिला है।
(2) राजनीतिक दलो द्वारा औद्योगिक श्रमिको का सहयोग प्राप्त करने की आकांक्षा ने विभिन्न श्रम सघो मे फूट डाल कर इस प्रकार की प्रतिस्पर्द्धा को जन्म दिया है।
(3) स्थानीय श्रम सघ के नेताओ मे व्यक्तिगत कारणो से आपसी मतभेद होने से भी श्रम सघो का विघटन हुआ है और प्रतिस्पर्द्धा को बढावा मिला है।
(4) श्रम सघो के बाह्य नेतृत्व के कारण।
(5) प्रबन्धको के श्रमिक सघो को मान्यता न देने के दृष्टिकोण ने भी इस प्रवृत्ति को बढावा दिया है।
(6) श्रम सघ विधान भी ऐसा बना हुआ है जिससे हमारे देश मे श्रम सघ आन्दोलन का सुदृढ विकास नही किया जा सकता।
(7) श्रमिको द्वारा श्रम सघो के कार्यों मे सहभागिता बहुत कम होती है और इससे बाह्य नेतृत्व को बढावा मिलता है।

उपरोक्त सभी तत्त्व एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध रखते है और इनका प्रभाव अलग-अलग सस्थानो अथवा उद्योगो मे अलग-अलग है। हाल ही के वर्षों मे सघ प्रतिस्पर्द्धा को नियन्त्रित करने हेतु कुछ महत्त्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। चारो केन्द्रीय श्रम सगठनो ने मिलकर अन्तर यूनियन प्रतिस्पर्द्धा को रोकने के लिए मई, सन् 1958 ने एक आचार सहिता (Code of Conduct, 1958) तैयार की है। इसमे निम्न प्रस्ताव रखे गए हैं—

(1) एक उद्योग मे कोई भी श्रमिक किसी भी श्रम सघ मे शामिल हो सकता है।

(2) श्रम सघो की दोहरी सदस्यता नही होगी।

(3) श्रम सघ प्रजातान्त्रिक आधार पर कार्य करेंगे।

(4) सघो के प्रबन्ध निकायो एव पदाधिकारियो का नियमित और प्रजातान्त्रिक चुनाव होना चाहिए।

(5) किसी भी सघ द्वारा श्रमिको की अज्ञानता अथवा पिछड़ेपन का लाभ उठाकर शोषण नही करना चाहिए।

(6) जातिवाद साम्प्रदायिकता और प्रान्तीयता को कोई स्थान नही दिया जाना चाहिए।

(7) अन्तर-यूनियन कार्यों मे किसी प्रकार का उपद्रव, हिंसा, डराना-धमकाना आदि को कोई स्थान न होगा।

(8) सभी केन्द्रीय श्रम सगठन कम्पनी यूनियनो के लिए लड सकेंगी।

श्रम सघ की मान्यता के लिए अनुशासन सहिता (Code of Discipline, 1958) मे प्रावधान हैं तथा एक मान्यता प्राप्त श्रम सघ को निम्न अधिकार प्रदान किए गए हैं जिससे कि सघो की प्रतिस्पर्द्धा पर रोक लगाई जा सके—

1 सामान्य प्रश्न जैसे किसी सस्थान मे श्रमिको की रोजगार एव कार्य की दशाओ से सम्बन्धित विवादो को रखना एव इन पर मालिको के साथ सामूहिक समझौता करना।

2 अपने क्षेत्र मे सदस्यो से सदस्यता शुल्क एकत्र करना।

3 जिस उद्योग मे श्रम सघ के सदस्य हैं, वहाँ सभाओ, आय तथा व्यय का विवरण आदि का नोटिस लगाने का अधिकार।

4 औद्योगिक विवादो को रोकने व उनके निपटारे हेतु श्रमिको से विचार-विमर्श करना, मालिको से शिकायत निवारण पर विचार करना, सस्थान के उस भाग का निरीक्षण करना जहाँ श्रमिक कार्य कर रहे हैं।

5 किसी सस्थान मे बनाई गई शिकायत निवारण समिति में श्रम सदस्यों का नामजद करना।

6 सयुक्त प्रबन्ध परिषदो मे श्रमिको को नामजद करना।

7 विभिन्न गैर कानूनी द्वि पक्षीय समितियो जैसे उत्पादन समिति, कल्याण *समिति, केन्टीन समिति आदि मे श्रमिक सदस्यो को नामजद करना ।*

लेकिन अन्तर यूनियन की आचार सहिता को महत्त्वपूर्ण सफलता नही मिल सकी है । इसके कई कारण हैं—

1 इस आचार सहिता का क्षेत्र ऐसा है कि इससे व्यक्तिगत एव राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु श्रम सघो का आसानी से उपयोग किया जा सकता है ।

2 इस आचार सहिता से विभिन्न श्रम सघो मे आपस मे सहयोग की भावना को प्रोत्साहन नही मिल सका है ।

3 इस आचार सहिता को बहुत ही कम श्रम सघो द्वारा लागू किया गया है ।

4 स्वतन्त्र तथा असम्बद्ध श्रम सघ जैसे अखिल भारतीय बैंक कर्मचारी सघ, अखिल भारतीय रेल कर्मचारी सघ आदि इस आचार सहिता के अन्तर्गत नही आते हैं ।

5 यह आचार सहिता ऐच्छिक है । इसमे कोई दण्ड का प्रावधान नही है ।

6 इसके कई प्रावधानो का कई बार उल्लघन किया गया है ।

7 अधिकाँश श्रमिक इस आचार सहिता तथा इसकी उपयोगिता के विषय मे कुछ भी नही जानते हैं ।

राष्ट्रीय श्रम आयोग 1969 ने अपनी रिपोर्ट मे श्रम सघो मे एकता प्रदान करने के लिए निम्न कार्यवाही करने का सुझाव दिया है ।[1]

1 बाह्य नेतृत्व और राजनीतिक दल के प्रभाव को समाप्त कर आन्तरिक नेतृत्व द्वारा श्रमसघो का गठन किया जाना चाहिए ।

2 श्रम सघो को मान्यता देकर मान्यता प्राप्त श्रम सघ के द्वारा सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन देना ।

3 श्रम सघ को मान्यता देने की पद्धति मे भी सुधार किया जाना चाहिए ।

4 सघ की सुरक्षा को प्रोत्साहन दिया जाए ।

5 यदि श्रम सघो द्वारा बाह्य यूनियन विवाद नही निपटाए जाए तो श्रम न्यायालयो द्वारा इनका निपटारा किया जाना चाहिए ।

श्रम सघो का वित्त
(Finances of Trade Unions)

श्री अग्निहोत्री के अनुसार, "श्रम सघ की वित्त समस्या श्रम सघ आन्दोलन की सफलता के लिए विभिन्न तत्त्वो मे से एक महत्त्वपूर्ण तत्त्व है ।"[2]

श्रम सघो की आय का प्रमुख स्रोत सदस्यता शुल्क है । अन्य स्रोत उपहार श्रम-पत्रिकाओ की बिक्री, विनियोग पर ब्याज तथा अन्य सग्रह आदि हैं । श्रम सघ अपने सदस्यो के समय पर शुल्क वसूल करने मे असफल रहे हैं । इसके कुछ कारण

1 Report of the National Commission on Labour, 1969 p 292
2 *Agnihotri V* Industrial Relations in India 1970

हैं उदाहरणार्थ—श्रमिको की गरीबी, कम मजदूरी, श्रमिको की ऋणग्रस्तता, कोष एकत्रित करने हेतु स्टॉफ की कमी, औसत श्रम सदस्यो का श्रम सघ कार्यों मे अनुदार दृष्टिकोण। श्री एस मुकर्जी के अनुसार, "वे कम आय तथा सदस्यता के उतार-चढाव से पीडित है। मासिक चदा ही प्रमुख आय का स्रोत है। सदस्यो द्वारा एक सघ से दूसरे सघ मे अपनी वफादारी को बदलने से सघो की वित्तीय अस्थिरता तथा दुर्बलता को बढावा मिला है।"[1]

राष्ट्रीय श्रम आयोग की रिपोर्ट, 1969 के अनुसार श्रम सघो की आय एव व्यय के कई वर्षों के आँकडो से नि सदेह पता चलता है कि श्रम सघो की वित्तीय स्थिति सामान्यतया कमजोर है। इसके परिणामस्वरूप कई श्रम सघ अपने पूर्ण विकास को प्राप्त करने के पूर्व ही समाप्त हो जाते हैं। कई सघ अपने सदस्यो को नियमित सेवाएँ प्रदान करने की स्थिति मे नहीं हैं। अधिकाँश सघो मे दुर्बल वित्तीय स्थिति के कारण सदस्यता असमुचित रही है। श्रम सघो की व्यय की विभिन्न मदो मे कार्यालयो का व्यय, कर्मचारियो का वेतन लेखाँकन एव कानूनी व्यय, विभिन्न विवाद लाभ प्रकाशन इत्यादि शामिल किया जाता है।

विकासशील देशो मे तीव्र आर्थिक विकास हेतु एक स्थायी एव सुसगठित श्रम सघ का होना आवश्यक है। दूसरी आर्थिक स्थिति सुदृढ होने पर अपने सदस्यो के कल्याण एव हितो की रक्षा आसानी से कर सकता है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देश मे श्रमसघो की वित्तीय स्थिति बडी दुर्बल है जिसे निम्न तालिका से देखा जा सकता है[2]—

वर्ष	विवरण प्रस्तुतकर्ता श्रम सघ	आय (लाख रु)	व्यय (लाख रु)	प्रति सदस्य वार्षिक आय (रु)	प्रति सदस्य वार्षिक व्यय (रु)
1951–52	2509	50 84	45 32	3 00	2 82
1956–57	4390	80 17	71 81	3 36	3 00
1961–62	6954	171 13	151 34	4 59	4 06
1965–66	7086	256 74	221 00	5 87	5 05
1969	8254	340 71	299 98	—	—
1970	6864	336 26	276 18	—	—
1971	3662	237 94	230 26	—	—

1 *S Mookerjee* Professionalisation of T U Leaders, Economic Times May 28, 1975

2 Pocket Book of Labour Statistics, 1974, p 57

पूर्वोक्त तालिका से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते है---

1 श्रमिक सघो की आय सन् 1951-52 मे 50·84 लाख रुपये थी जो कि बढकर 1971 मे 237 94 लाख रुपये हो गई है अर्थात् गत दो दशको मे यह वृद्धि केवल 4½ गुनी हुई है।

2 व्यय सन् 1951-52 मे 45 32 लाख रुपय से बढकर सन् 1971 मे 230 26 लाख रुपये हो गया है। यह वृद्धि 5 गुनी है। दोनो ही मदो मे विशेष वृद्धि नही हुई है।

3 प्रति सदस्य वार्षिक आय इसी अवधि मे 3 रु से बढकर 9 72 रु हुई है अर्थात् तीन गुनी वृद्धि हुई है जबकि प्रति सदस्य वार्षिक व्यय इसी अवधि मे 2 82 रु से बढकर 7 86 रु हुआ अर्थात् केवल 2½ गुनी वृद्धि हुई है।

4 श्रम सघो की आय का प्रमुख स्रोत सदस्यो से प्राप्त चन्दा है जो कुल आय का 72 2% रहा है तथा व्यय का अधिकांश भाग व्यवस्थापकीय मद पर व्यय होता है जो कुल व्यय का 26 3% है।

अत निष्कर्ष मे यह कहा जा सकता है कि श्रमिको के कल्याणकारी कार्यो पर व्यय करने हेतु बहुत ही नगण्य राशि बचती है जो कि आज की स्थिति मे पर्याप्त नहीं है।

भारतीय श्रम सघ अधिनियम, 1926 के अन्तर्गत श्रम सघो के कोष को राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु व्यय नही किया जा सकता है। इसके लिए अलग से कोष बनाया जा सकता है। लेकिन इस कोष मे चन्दा देने के लिए श्रमिको पर किसी प्रकार का प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष दबाव नही डाला जा सकता है।

राष्ट्रीय श्रम आयोग, 1969 मे श्रम सघो को मान्यता देने की सिफारिश की है। जब श्रम सघ को सामूहिक सौदाकारी हेतु मान्यता प्रदान कर दी जाएगी तो इससे श्रमिको को लाभ होगा तथा वे अपनी यूनियनो के प्रति वफादार रहेगे और इसके परिणामस्वरूप नियमित रूप से चन्दा भी प्राप्त होता रहेगा। वर्तमान चन्दे की दर 25 पैसे मासिक के स्थान पर 1 रु मासिक किया जाना चाहिए।

श्री अग्निहोत्री ने श्रम सघ की वित्तीय स्थिति को सुधारने हेतु सुझाव दिया है कि, "सघो की सदस्यता मे वृद्धि, सांस्कृतिक एव मनोरजन कार्यक्रमो से कोष प्राप्त करना, उपहार, विशेष कोषो का सृजन तथा इसके लिए अन्य उपायो के माध्यम से श्रम सघो की वित्तीय स्थिति को सुधारा जा सकता है।"[2]

भारत मे श्रम सघ आन्दोलन को सुदृढ आधार पर विकसित करने तथा सघो के पजीयन हेतु सन् 1926 मे भारतीय श्रम सघ अधिनियम (Indian Trade Union Act, 1926) पास किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी सात व्यक्ति मिलकर एक श्रम सघ का पजीयन करा सकते हैं। सबसे प्रमुख लाभ पजीकृत श्रम सघ से यह है कि इसके सदस्यो तथा पदाधिकारियो को दीवानी तथा फौजदारी दायित्वो से मुक्ति मिलती है। अपजीकृत सघो को अवैधानिक घोषित नही

1 डॉ मामोरिया व डा दशोरा भारतीय श्रम समस्याएँ, पृष्ठ 553

2 *Agnihotri V* Industrial Relations in India, 1970, p 43

किया जाता है । इस अधिनियम की प्रमुख धाराएँ श्रम सघों के पजीयन, पजीकृत श्रम सघो के दायित्व और जिम्मेदारियां पजीकृत सघो के अधिकार आदि है । इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रम सघो का रजिस्ट्रार नियुक्त किया जाता है जो कि इस अधिनियम के विभिन्न प्रावधानो के प्रशासन को देखता रहता है । वह सघ के रिकार्ड, रिटर्न, लेखे-जोखे आदि का निरीक्षण भी कर सकता है । इस अधिनियम की सबसे बडी कमी यह है कि इसम श्रम सघ को अनिवार्य मान्यता से सम्बन्धी प्रावधान नहीं है तथा सदस्य सख्या केवल 7 रखी है जिससे श्रम सघो की बाहुल्यता को बढ़ावा मिला है ।

भारतीय श्रम सघ के दोष
(Defects of Indian Trade Unions)

भारतीय श्रमसघ आन्दोलन ने न केवल स्वाधीनता आन्दोलन मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है बल्कि इन्होने श्रमिक वर्ग के सामाजिक एव आर्थिक स्तर को भी ऊँचा उठाने का एक सराहनीय कार्य किया है । श्रमिको मे एकता, सहयोग एव भ्रातृत्व की भावना को जाग्रत किया है । फिर भी भारतीय श्रम सघ का विकास पाश्चात्य देशो की भाँति सुदृढ एव सुसगठित श्रम सघ के रूप मे नही हो पाया है । श्रमिक सघ के विकास मे कई बाधाएँ आई हैं तथा कुछ सगठन के भी दोष है । ये दोष निम्नलिखित हैं—

1 **स्थायी श्रम शक्ति का अभाव (Lack of Stable Labour Force)**—भारतीय श्रमिक ग्रामीण क्षेत्र से आते है और समय-समय पर वे अपने गाँव जाते रहते है । वे औद्योगिक शहरो मे स्थायी रूप से नही बस पाते हैं । यह भारतीय श्रमिको की प्रवासिता की विशेषता (Migratory Character of Labour) के कारण है । इससे पाश्चात्य देशों की भाँति एक स्थायी औद्योगिक श्रम शक्ति का प्रादुर्भाव नही हो पाया है । इससे श्रमसघो की सदस्यता स्थायी रूप से नही हो पाती है ।

2 **गरीबी और निम्न मजदूरी (Poverty and Low Wages)**—श्रमिको को कम मजदूरी मिलती है । वे अपनी अनिवार्य आवश्यकताओ की पूर्ति भी मुश्किल से कर पाते है । इससे वे गरीबी के दुष्चक्र (Vicious Circle of Poverty) से ग्रसित रहते हैं । वे नियमित रूप से सघो की सदस्यता शुल्क जमा नही करा पाते हैं । इसके परिणामस्वरूप श्रम सघो की वित्तीय स्थिति कमजोर हो जाती है और वे अपना सुदृढ विकास नही कर पाते हैं ।

3 **असगठित करने वाली शक्तियां (Disintegrating Forces)**—भारतीय श्रम सघ की सबसे प्रमुख कमी श्रमिको मे एकता का अभाव है । श्रमिको मे एकता का अभाव धर्म, भाषा, जाति और वेशभूषा के कारण पाया जाता है । इससे उनमे एकता नही पनपती तथा मालिक भी इसके आधार पर 'फूट डालो और शासन करो' की नीति अपना कर श्रमिको का शोषण करता है ।

4 **बाह्य नेतृत्व (Outside Leadership)**—भारतीय श्रम सघो का नेतृत्व

अधिकांश बाहरी व्यक्तियो द्वारा किया जाता है । वे अपने स्वार्थों को पूरा करने के लिए श्रमिको का शोषण करते हैं । औद्योगिक व तकनीकी जानकारी के अभाव मे वे श्रमिको के हितो को मालिको के सम्मुख रखने मे असमर्थ रहते हैं । ये श्रमसघो को पूरा समय नही दे पाते हैं और वे श्रमिको को गुमराह करते हैं ।

5. राजनीतिक दलो से सम्बद्धता (Affiliated to Political Parties)—भारतीय श्रम सघ की यह कमजोरी रही है कि इस पर विभिन्न राजनीतिक दलों का आधिपत्य रहा है । प्रत्येक राजनीतिक दल अपनी स्वार्थ सिद्धि हेतु औद्योगिक श्रमिको का सहारा लेते हैं । वर्तमान समय मे एटक (AITUC), इन्टक (INTUC), हिन्द मजदूर सभा (HMS), सयुक्त श्रम सघ काँग्रेस (UTUC), भारतीय मजदूर सघ (BMS), हिन्द मजदूर पचायत (HMP) आदि श्रम सघ विभिन्न राजनीतिक दलो से सम्बन्ध रखते हैं तथा इन दलो द्वारा श्रमसघो का गठन अपने राजनीतिक स्वार्थों को पूरा करने के लिए किया जाता है । इससे श्रम सघ आन्दोलन मे श्रम सघो की बाहुल्यता तथा आपसी प्रतिस्पर्द्धा से एक सुदृढ श्रम सघ आन्दोलन के मार्ग मे बाधा उपस्थित होती है ।

6. अधिक कार्य के घण्टे और निम्न जीवन स्तर (Low Standard of Living and Hours of Work)—भारतीय श्रमिको को कम मजदूरी मिलने के कारण उनका जीवन स्तर निम्न है तथा कार्य के घण्टे लम्बे होने के कारण श्रमिक थक जाता है । इस थकान तथा खराब दशाओ मे कार्य करने के पश्चात् श्रमिक के पास इतना समय तथा शक्ति नही रह पाती है कि वह श्रम सघो के कार्यों में सक्रिय भाग ले । जब सघ के कार्यों मे श्रमिक रुचि नही लेते हैं तो इससे श्रम सघ सुदृढ नहीं बनाया जा सकता ।

7. मालिको का विरोधी रुख (Hostile Attitude of Employers)—भारतीय श्रम सगठन अपनी सुदृढ नीव पर विकसित नही हो पाता है क्योकि मालिको का दृष्टिकोण इनके विरुद्ध है । वे श्रमसघो को अपने हित के विरुद्ध समझकर विभिन्न प्रकार के अनुचित कदम उठाते हैं । वे श्रम सघ के नेताओ का स्थानान्तरण, फूट डालना, गुण्डे रखना आदि कार्य करते हैं । इस विचारधारा के कारण श्रमिक श्रम सघो मे भाग नही ले पाते हैं । वे श्रम सघों को मान्यता नही देते हैं । सघ पदाधिकारियो को रिश्वत देकर अपनी ओर कर लेते हैं ।

8 जॉबर तथा मध्यस्थों का विरोधी रुख (Hostile Attitude of Jobbers and Intermediaries)—श्रमिको की भर्ती मे जॉबर तथा मध्यस्थो का महत्त्व शुरू से ही रहा है । वे कारखाने के पुराने एव अनुभवी श्रमिक होते हैं जिनके माध्यम से नए श्रमिको की भर्ती की जाती है । ये श्रमिको का विभिन्न रूपो मे शोषण करते हैं । वे श्रमिको को नौकरी से हटाने तथा नए श्रमिको को नौकरी पर लगाने का महत्त्वपूर्ण अधिकार रखते हैं । श्रम सघों के गठन से इन जॉबरो व मध्यस्थो की दाल नही गल पाती है और उनके अधिकार समाप्त हो जाते हैं । अत वे प्रभावपूर्ण स्थिति को रखने के लिए श्रम सघो के बनाने मे बाधा उपस्थित करते हैं । इसके परिणामस्वरूप सुदृढ श्रम सघ का गठन नही हो पाता है ।

9. श्रमसघों की बाहुल्यता (Multiplicity of Trade Unions)—भारतीय श्रमसघ आन्दोलन का सुदृढ विकास न होने का एक प्रमुख कारण एक ही उद्योग मे कई सघो का होना है। इससे श्रमसघो मे आपस मे प्रतिस्पर्द्धा रहती है तथा वे श्रमिको के हितो को पूरा करने मे असमर्थ रहते हैं। भारतीय श्रमसघ अधिनियम, 1926 के अन्तर्गत कोई भी 7 श्रमिक मिलकर श्रमसघ बना सकते हैं। इस प्रावधान के कारण कई सघो की स्थापना हुई है।

इस प्रकार भारतीय श्रमसघ के उपरोक्त दोष से एक सुदृढ एव सुसगठित श्रमसघ आन्दोलन (A Strong and Well-organised Trade Union Movement) का प्रादुर्भाव नही हो सका है।

भारत मे श्रम सघवाद के इस दुष्चक्र से हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि बाह्य नेतृत्व से राजनीति सघवाद, सघो की बाहुल्यता, अन्तरसघीय प्रतिस्पर्द्धा, निम्न सदस्यता, दुर्बल वित्त, कल्याण एव अन्य सृजनात्मक क्रियाएँ अप्रभावपूर्ण सामूहिक सौदाकारी आदि दोष उत्पन्न होते हैं और इसके परिणामस्वरूप भारतीय श्रमसघ इस दूषित चक्र में फँसा हुआ है। अत इस दूषित चक्र को तोडने के लिए यह आवश्यक है कि बाह्य नेतृत्व के स्थान पर आन्तरिक नेतृत्व पर जोर दिया जाए। इसके लिए श्रमिक वर्ग को शिक्षित करना पड़ेगा तथा वैधानिक तरीके से बाह्य नेतृत्व पर रोक लगानी होगी।

भारत मे श्रमसघो को सुदृढ बनाने के उपाय
(Measures to Strengthen Trade Unions in India)

भारतीय श्रमसंघ आन्दोलन का सुदृढ एव सुसगठन करने के लिए हमे कुछ उपाय काम मे लेने पड़ेंगे।

श्री वी वी गिरि ने एक सुदृढ श्रमसघ आन्दोलन की आवश्यकता पर बल देते हुए लिखा है कि, "श्रमिको के हितो की रक्षा करने तथा उत्पादन के लक्ष्यो को पूरा करने के लिए सुदृढ श्रमसघ आन्दोलन नितान्त आवश्यक है। यदि श्रमसघ मे इन उद्देश्यो को पूरा करने की क्षमता व दृढता नही है तो भारत मे पूर्ण समाजवादी प्रजातन्त्र के आधार पर बनाए जाने वाले औद्योगिक कलेवर की नीति दृढ नही होगी और राज्य अपने श्रेष्ठतम आदर्शों के होते हुए भी श्रमिक वर्ग को मौलिक अधिकार देने मे असमर्थ रहेगा।"[1] वर्तमान समय मे भारतीय श्रम सघवाद को दृढ करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते है—

1. स्थायी श्रम शक्ति का विकास (Development of a Stable Labour Force)—भारतीय श्रम सघवाद का सुदृढ विकास करने हेतु पाश्चात्य देशो की तरह एक स्थायी औद्योगिक श्रम शक्ति का विकास परमावश्यक है। इसके लिए श्रम प्रवासिता की विशेषता (Migratory Character of Labour) को नियमित व नियन्त्रित करना होगा। कार्यों की दशाओ एव आवास व्यवस्था मे सुधार करना

1 *Giri V V*. Labour Problems in Indian Industry, 1959, p 44

होगा जिससे कि ग्रामीण क्षेत्रों से आए श्रमिक स्थायी रूप से औद्योगिक क्षेत्रों मे रहने लग जाएँ। मनोरंजन के साधनों की व्यवस्था, वाचनालय, पुस्तकालय, चिकित्सा, भर्ती की व्यवस्था मे सुधार आदि के सम्बन्ध मे ठोस कार्य करने चाहिए।

2. श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार (Improvement in Economic Position of Workers)—श्रमिको की दरिद्रता तथा निम्न मजदूरी की स्थिति में सुधार करने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिको को उचित मजदूरी दी जाए। इसके साथ ही उन्हे विभिन्न प्रकार के प्रेरणात्मक भुगतान (Incentive Payment) किए जाने चाहिए। इससे श्रमिक की आर्थिक स्थिति मे सुधार होने से वे नियमित रूप से श्रमसघो को चन्दा देंगे और श्रमसघो की वित्तीय स्थिति सुधरने से एक सुदृढ श्रमसघ आन्दोलन का विकास हो सकेगा।

3 असंगठित करने वाली शक्तियों को समाप्त करना (Eradication of Disintegrating Forces)—धर्म, भाषा, जाति, रंगभेद और वेश-भूषा के कारण श्रमिको में एकता नहीं आ पाती है। इसलिए इन विघटनकारी शक्तियो को समाप्त करने के लिए श्रमिको में शिक्षा का प्रसार करना होगा। शिक्षा के कारण श्रमिक एक-दूसरे के निकट आने का प्रयास करेंगे। भारत सरकार ने श्रमिको की शिक्षा हेतु एक केन्द्रीय बोर्ड की स्थापना सन् 1958 मे की थी। इसकी क्रियाओ मे और अधिक वृद्धि करनी चाहिए जिससे श्रमिक का मानसिक विकास हो सके।

4. आन्तरिक नेतृत्व (Inside Leadership)—भारतीय श्रम सघवाद के सुदृढ विकास हेतु यह आवश्यक है कि श्रमिको के नेता श्रमिको मे से ही होने चाहिऐ क्योंकि औद्योगिक एव तकनीकी जानकारी के कारण वे अपने मामलो को मालिको के सम्मुख अच्छी तरह पेश कर सकते हैं। इसके लिए श्रमिको को श्रम सगठन के अधिकारियो मे अधिक अनुपात दिया जाना चाहिए तथा विधान द्वारा बाहरी व्यक्तियो पर रोक लगाई जानी चाहिए।

5. कल्याणकारी कार्यों को प्रोत्साहन (Promotion of Welfare Activities)—भारतीय श्रमसघ शिकायत निवारण तथा औद्योगिक विवादो के निपटारे का कार्य करते हैं। एक तरह से लडाकू कार्य (Fighting or Militant Functions) हैं। श्रमसघो को कल्याणकारी कार्य जैसे-पुस्तकालय, वाचनालय, मनोरंजन, चिकित्सा, खेलकूद आदि करने चाहिए जिससे श्रमिक श्रमसघो मे अधिक रुचि से भाग लें।

6 एक उद्योग मे एक सघ (One Union in One Industry)—श्री वी वी. गिरि ने सही ही कहा है कि एक सुदृढ श्रमसघवाद के लिए श्रमसघो की बाहुल्यता को कम करना होगा। यह तभी सम्भव है जबकि एक उद्योग मे एक से अधिक सघ नहीं होना चाहिए। इससे श्रमसघो की सामूहिक सौदाकारी मजबूत होगी। इससे श्रमिको मे एकता होगी तथा श्रमिकों और मालिकों के आपसी सम्बन्ध मधुर होंगे।

7. कोषों की पर्याप्तता (Adequacy of Funds)—भारतीय श्रमसघो की वित्तीय स्थिति कमजोर है क्योंकि सदस्यो द्वारा चन्दा नियमित रूप से नहीं दिया जाता है तथा चन्दे की दर भी बहुत कम है। अत श्रमसघ की वित्तीय स्थिति सुदृढ करने

के लिए वर्तमान चन्दे की दर मे वृद्धि 25 पैसे मासिक से बढाकर 1 रुपया मासिक करना चाहिए और साथ ही चन्दा श्रमिको से नियमित रूप से लिया जाना चाहिए। इसके साथ ही आय मे वृद्धि हेतु श्रमसघ की सदस्यता मे भी वृद्धि करनी चाहिए।

इस प्रकार एक सुदृढ श्रमसघ की आवश्यकता पर बल देते हुए प्रो आर सी सक्सेना ने लिखा है कि, "श्रमिको के हितो की रक्षा करने और उत्पादन के लक्ष्यो को पूरा करने के लिए एक सुदृढ श्रमसघ आन्दोलन आवश्यक है।"[1]

"सभी कठिनाइयो पर विजय प्राप्त करने और स्वस्थ श्रम सघ के विकास के लिए हमे गम्भीर प्रयास करने चाहिए, जिससे कि औद्योगिक शान्ति, श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि और देश मे अधिक उत्पादन प्राप्त हो सके।"[2]

भारत मे नियोक्ताओ के सगठन
(Employers' Organisation in India)

जिस प्रकार श्रमिक सघ श्रमिको के हितो की रक्षा के लिए बनाए जाते हैं उसी प्रकार नियोक्ताओ के सगठन बनाने का उद्देश्य नियोक्ताओ के हितो की रक्षा करना है तथा उनको एकता के सूत्र मे बांधना है जिसके परिणामस्वरूप उनकी सामूहिक सौदाकारी शक्ति मजबूत हो सके। श्रमिको के साथ विभिन्न विवादो के सम्बन्ध मे सामूहिक सौदा कर सकेंगे।

"19वी शताब्दी के मध्य जिन चैम्बर ऑफ कामर्स की विभिन्न औद्योगिक केन्द्रो मे स्थापना की गई, वे प्रमुख रूप से व्यापारिक हितो से सम्बन्धित थी।"[3]

नियोक्ताओ के सगठनो के विकास को जानने के लिए यह आवश्यक है कि नियोक्ताओ के सगठनो का किस आधार पर विकास किया गया। प्रारम्भिक काल मे किस प्रकार के सगठन बनाए गए। प्रो जी एल श्रीवास्तव (Prof G L. Shrivastava) ने नियोक्ताओ के सगठनो को तीन वर्गों मे विभाजित किया है। वे निम्नलिखित हैं[4]—

(1) व्यापारिक सघ (Commercial Associations)
(2) औद्योगिक सघ (Industrial Associations)
(3) नियोक्ताओ के सघ (Employers' Associations)

1 व्यापारिक सघ (Commercial Associations)—इन सघो का निर्माण *व्यापार पर विचार करने वाली सस्थाओ, व्यापारियो की सस्थाओ,* बैंकर्स, दुकानदारो और अन्य व्यापारियों द्वारा किया गया था। ये सघ विभिन्न व्यापारिक केन्द्रो मे पाए जाते हैं। 19वी शताब्दी के मध्य मे इस प्रकार के सघ योरोपीय व्यावसायियो ने

1 *Saxena, R C* Labour Problems & Social Welfare, p 112
2 Ibid, p 115
3 Compiled by *IIPM* Personnel Management in India, 1962, p 152
4 *Shrivastava G L* Collective Bargaining & Labour Management Relations in India, p 308

कलकत्ता, बम्बई मद्रास कानपुर आदि स्थानो पर बनाए । सन् 1920 मे इन सभी सघो ने मिलकर एक केन्द्रीय सगठन की स्थापना की जिसका नाम एसोसियटेड चेम्बर्स ऑफ इण्डिया एण्ड सीलोन रखा गया ।

भारतीय व्यापारियो ने भी इस प्रकार के सघ बनाए । सन 1887 म कलकत्ता म नेशनल चेम्बर ऑफ कॉमर्स, सन् 1907 मे बम्बई मे इण्डियन चेम्बर ऑफ कॉमर्स सन् 1900 मे कलकत्ता मे मारवाडी चेम्बर ऑफ कॉमर्स आदि सघो का निर्माण किया । देश की श्रम नीति को इन सघो ने अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया ।

2 **औद्योगिक सघ (Industrial Associations)**—इन सघो की स्थापना उद्योगो के आधार पर की गई । इनका उद्देश्य सदस्यो के हितो की रक्षा करना तथा सरकार से इन उद्योगो मे कुछ छूट प्राप्त करना था । विभिन्न महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रो पर क्षेत्रीय आधार पर इस प्रकार के सघ बनाए गए । इनमे बम्बई मिल-मालिक सघ (Bombay Mill-owners' Association) की स्थापना सन् 1875, भारतीय चाय सघ सन् 1881, भारतीय जूट मिल सघ 1884 अहमदाबाद मिल-मालिक सघ 1891, भारतीय खान सघ 1892 आदि प्रमुख सघो की स्थापना की गई । 1931 मे भारतीयो द्वारा इण्डियन माइनिंग फेडरशन की स्थापना की गई ।

प्रथम महायुद्ध (1914 18), अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) की स्थापना तथा भारतीय श्रमसघ अधिनियम 1926 आदि के कारण व्यक्तिगत रूप से नियोक्ताओ द्वारा अपने हितो की रक्षा के लिए एक केन्द्रीय सगठन की आवश्यकता को महसूस किया गया । इसके परिणामस्वरूप सन् 1927 मे फेडरेशन ऑफ इण्डियन चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स एण्ड इण्डस्ट्री (FICCI) की स्थापना की गई ।

3 **नियोक्ताओ के सघ (Employers' Associations)**—इनका उद्देश्य श्रम समस्याओ का सामना करना है । इनमे अखिल भारतीय औद्योगिक नियोक्ताओ का सगठन (AIOIE) जिसे अब अखिल भारतीय नियोक्ताओ का सगठन (AIOE) कहा जाता है की स्थापना सन् 1923 मे की गई । भारत के नियोक्ताओ का सगम (Employers Federation of India or EFI) की स्थापना बम्बई मिल मालिक सघ के सरक्षण मे सन् 1933 मे की गई । इनका उद्देश्य श्रमिक समस्याओ का एक जुट होकर मुकाबला करना था । इसके साथ ही उद्योग को प्रभावित करने वाले विधान का साथ देना अथवा विरोध करना, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (ILC), समितियो आदि म प्रतिनिधित्व करने हेतु सदस्यो को नामजद करना, श्रम और पूंजी के बीच मधुर सम्बन्ध स्थापित करना आदि उद्देश्य हैं । सन् 1941 मे अखिल भारतीय निर्माता सघ (AIMO) की स्थापना की गई ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् हमारे देश मे योजना के विकास, औद्योगीकरण, विभिन्न श्रम कानून और श्रमसघ आन्दोलन आदि तत्त्वो ने नियोक्ताओ को अपने सगठन मजबूत करने के लिए प्रोत्साहित किया है । अब वे श्रम मामलो पर सरकार को सलाह भी देते हैं ।

नियोक्ता सघो की सख्या, आय तथा व्यय का विवरण निम्न प्रकार है[1]—

वष	विवरण प्रस्तुतकर्ता सघ	कुल सघ	आय (लाख रु)	व्यय (लाख रु मे)
1951	47	118	28 73	29 84
1956	38	79	1 62	1 91
1961	105	167	18 30	19 10
1962	133	198	43 68	40 74
1966	158	316	81 05	82 70
1969	169	320 (E)	27 37	24 62
1970	138	330 (E)	60 43	54 99
1971	47	—	14 48	12 75

उपरोक्त तालिका से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते है—

1 कुल सघो की सख्या मे 1951 से 1970 की अवधि मे निरन्तर वृद्धि हुई है। यह वृद्धि 2½ गुनी से भी अधिक है, लेकिन विवरण प्रस्तुतकर्त्ता सघो की सख्या सन् 1951 से सन् 1969 की अवधि मे निरन्तर वृद्धि होने के पश्चात् इसमे गिरावट आई है और 1971 म उतनी ही सख्या रह गई जितना कि सन् 1951 मे थी। इसका कारण यह है कि नियोक्ता सघो का महत्व कम होता जा रहा है क्योकि सभी को श्रम अधिनियमो की अनुपालना करनी पडती है।

2 सन् 1951 71 की अवधि मे नियोक्ता सघो की आय मे उतार-चढाव आते हैं तथा सन् 1971 मे इनकी आय सन् 1951 की तुलना मे लगभग आधी रह गई है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इनसे महत्त्वपूर्ण कार्य नही किए जा सकते हैं।

3 नियोक्ता सघो मे व्यय मे भी उतार चढाव रहे है तथा सन 1951 की तुलना मे सन् 1971 मे व्यय आधे से भी कम रह गया है।

4 नियोक्ता सघो के सन् 1959 60 की अवधि मे श्रम सस्थान शिमला द्वारा दिए गए आँकडो के अनुसार इन सघो की आय का 55 5% सदस्यो से चन्दे के रूप मे प्राप्त होते हैं तथा व्यय का 43 6% व्यवस्थापकीय मदो पर खच हो जाता है।

अत हम कह सकते है कि भारतीय नियोक्ताओ के सघ भी आर्थिक दृष्टिकोण से समृद्धिशाली नही कहे जा सकते हैं।

वर्तमान समय मे नियोक्ताओ के सगठनो को तीन स्तरो पर सगठित किया जाता है। वे अग्रलिखित हैं[1]—

1 Pocket Book of Labour Statistics 1974, p 57
2 डॉ मामोरिया व डॉ दशोरा भारतीय श्रम समस्याएँ पृष्ठ 565
3. *Dr Bhagoliwal, T N* Economics of Labour & Social Welfare 1973, p 81.

(1) स्थानीय सगठन (Local Organisations),
(2) औद्योगिक सघ (Industrial Associations),
(3) फेडरेशन (Federations)।

स्थानीय सगठन चैम्बर ऑफ कॉमर्स के माध्यम से कार्य करते हैं। इनके अन्तर्गत स्थानीय उद्योग आते है। औद्योगिक सघ भारतीय नियोक्ताओ द्वारा सगठित सामान्य सगठन हैं। प्रादेशिक उद्योगो के सगठन इन औद्योगिक सगठनो से सम्बद्ध होते हैं। जूट सूती वस्त्र, इजीनियरिंग, चाय चीनी, सीमेन्ट, कागज आदि उद्योगो मे इस प्रकार के औद्योगिक सगठन बनाए गए है। इन सघो द्वारा मिलकर इन उद्योगो मे कार्य करने वालो को प्रबन्ध के क्षेत्र मे शिक्षण व प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान की हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग 1969 के अनुसार नियोक्ताओ के सगठनो की बाहुल्यता से सामूहिक सौदा करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। इसलिए इन्हे एक उद्योग मे एक से अधिक सगठनो को मिलाकर एक कर देना चाहिए। इसके लिए सयुक्त समितियाँ (Joint Committees) की स्थापना करनी चाहिए।

अखिल भारतीय नियोक्ताओ का सगठन (AIOE) तथा भारत के नियोक्ताओ का सगम (EFI) दोनो सन् 1956 मे भारतीय नियोक्ताओ की परिषद् (Council of Indian Employers—C I E) मे शामिल होते हैं। राष्ट्रीय श्रम आयोग ने C I E मे A I M O को भी शामिल करने की महत्त्वपूर्ण सिफारिश की है।

नियोक्ताओ के राष्ट्रीय स्तर के सगठन न तो श्रम सगठनो के साथ समझौता करते हैं और न ही वे औद्योगिक सम्बन्धो की समस्या का अध्ययन करते हैं। वे केवल अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (ILC) मे भाग लेने वाले प्रतिनिधियो के मार्ग दर्शन हेतु नीति निर्धारण का कार्य करते है।

स्थानीय तथा औद्योगिक सगठन औद्योगिक सम्बन्धो को महत्त्वपूर्ण ढग से प्रभावित कर सकते हैं क्योंकि वे आसानी से अपने सदस्यो तथा श्रमसघो से सम्पर्क कर सकते है। इस विभिन्न सगठनो द्वारा सामूहिक सौदाकारी तथा ऐच्छिक पच फैसले को प्रोत्साहित करना चाहिए। औद्योगिक सघो द्वारा उद्योग स्तर पर श्रमसघो के साथ सामूहिक सौदाकारी की प्रवृत्ति को प्रोत्साहित करना चाहिए।

राष्ट्रीय श्रम आयोग रिपोर्ट, 1969 के अनुसार श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो की दृष्टि से नियोक्ताओ के सगठनो को निम्न कार्य करने चाहिए[1]—

(1) विभिन्न स्तरो पर सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन दिया जाए,
(2) द्विपक्षीय एव त्रिपक्षीय समझौतो को सदस्यो द्वारा पूर्ण रूप से लागू करने के कार्य को देखना,
(3) बिना किसी भेदभाव तथा देरी के सदस्यो द्वारा सभी मजदूरी से सम्बन्धित अवार्डस को लागू किया गया,
(4) मालिको द्वारा अनुचित श्रम व्यवहारो को समाप्त किया जाए,

1 Report of the National Commission on Labour, 1969, p 304

(5) सदस्यो द्वारा उत्पादकता तथा औद्योगिक शान्ति के अनुकूल कार्मिक नीतियो को ग्रहण किया जाए,

(6) प्रबन्ध के विवेकीकरण को प्रोत्साहन देना,

(7) उद्योग मे श्रम की साझेदारी, श्रम और प्रबन्ध के हितो को समान बताना उद्योग और समाज के उद्देश्यो मे एकता को प्रोत्साहन देने आदि विषयो पर नियोक्ताओ को शिक्षा दी जाए,

(8) श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो के क्षेत्र मे सदस्यो के सामूहिक कल्याण के लिए प्रशिक्षण, अनुसधान व सदेशवाहन के माध्यम से कार्य करना।

उपरोक्त कार्य नियोक्ता सगठनो द्वारा ऐच्छिक रूप से करने चाहिए। इससे उनकी सामूहिक सौदाकारी शक्ति बढेगी और देश मे अच्छे श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो को प्रोत्साहन मिलेगा।

6 सामूहिक सौदाकारी के सिद्धान्त—भारत में सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करने के उपाय और उसकी समस्या

(Principles of Collective Bargaining—Measures to encourage Collective Bargaining in India Problems of Collective Bargaining in India

किसी भी देश की आर्थिक प्रगति के लिए औद्योगिक एकता परमावश्यक है। औद्योगिक एकता के लिए यह आवश्यक है कि दोनों पक्ष श्रमिक और नियोक्ता एक दूसरे के साथ सहयोग करें और उनमें उद्योग में साझेदारी की भावना जाग्रत हो। अब नियोक्ताओं के परम्परागत दृष्टिकोण (Traditional Attitudes) को त्याग कर आधुनिक दृष्टिकोण अपनाना होगा। श्रमिक को एक वस्तु न समझकर मानव समझना होगा और औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए श्रमिकों को साझेदारी के रूप में स्थान देना होगा।

अर्थ (Meaning)—सामूहिक सौदाकारी की विभिन्न विद्वानों ने अलग अलग परिभाषाएँ दी हैं।

प्रो फिलप्पो के अनुसार 'सामूहिक सौदाकारी एक प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत श्रम संगठनों और व्यावसायिक संगठनों के प्रतिनिधि एक समझौते या प्रसंविदे के समझौते का प्रयास करने के लिए मिलते हैं जिसके अन्तर्गत कर्मचारी मालिक संगठनों के सम्बन्ध आते हैं।[1]

श्री अग्निहोत्री के अनुसार सामूहिक सौदाकारी श्रमिकों और नियोक्ताओं की आवश्यकताओं और उद्देश्यों की पूर्ति का एक तरीका है जो कि औद्योगिक समाज का एक प्रमुख भाग है। यह वास्तव में उद्योग में प्रजातन्त्र के सिद्धान्तों तथा व्यवहारों का विस्तार है।[2]

प्रो रिचर्डसन के अनुसार जब कई श्रमिक एक सौदाकारी इकाई के रूप में एक नियोक्ता अथवा नियोक्ताओं के समूह के साथ सम्बन्धित श्रमिकों की रोजगार की दशाओं पर समझौते के उद्देश्य से करार करते हैं।[3]

1 *Flippo E B* Principles of Personnel Management p 468
2 *Agnihotri V* Industrial Relations in India p 54
3 *Richardson J H* An Introduction to the Study of Industrial Relations p 229

इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत श्रमिको और नियोक्ताओ के बीच हुए लिखित समझौते के करार, प्रशासन, क्रियान्वयन आदि को सम्मिलित किया जाता है।

एक प्रभावपूर्ण सामूहिक सौदाकारी की शर्तें (Conditions for an Effective Collective Bargaining)

औद्योगिक विवादो को निपटाने तथा श्रम के हितो की रक्षा के लिए सामूहिक सौदाकारी एक महत्त्वपूर्ण तरीका है। लेकिन इसको प्रभावपूर्ण बनाने के लिए निम्नलिखित पूर्व शर्तें (Prerequisites) होना आवश्यक है।[1]

1 सामूहिक सौदाकारी की सफलता की पहली शर्त एक सुदृढ एव सुसगठित श्रमसघ का होना है। इस श्रमसघ को मान्यता भी मिलनी चाहिए। यही कारण है कि एक भारत जैसे विकासशील देश मे सामूहिक सौदाकारी कमजोर एव असगठित श्रमसघ के कारण सफल नहीं हो रही है।

2 एक प्रगतिशील एव सुदृढ प्रबन्ध होना चाहिए। इसे अपने उत्तरदायित्वो और व्यवसाय के मालिको, श्रमिको उपभोक्ताओ और देश के प्रति अपने कर्त्तव्यो के प्रति सजग होना चाहिए।

3 आधारभूत उद्देश्यो तथा पारस्परिक अधिकारो और कर्त्तव्यो पर दोनो पक्ष एकमत होने चाहिए।

4 जहाँ एक ही कम्पनी मे कई इकाइयाँ है वहाँ स्थानीय प्रबन्ध को सत्ता की सुपुर्दगी कर देनी चाहिए। इससे स्थानीय इकाइयो का भी सहयोग मिलगा तथा उनका कार्यभार भी बँट जाएगा।

5 औद्योगिक समस्या के निवारण हेतु तथ्यो की जाँच करने की विचारधारा तथा नए तरीको को अपनाने की इच्छा होना आवश्यक है। इसके अन्तर्गत कार्य एव गति का अध्ययन कार्यभार का प्रमापीकरण, पदोन्नति आदि आते है। इन पर दोनो पक्ष राजी होने चाहिए।

सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया (Process of Collective Bargaining)

सामूहिक सौदाकारी किस प्रकार होती है। इसके विषय मे जानने के लिए इस प्रक्रिया की विभिन्न अवस्थाओ को जानना आवश्यक है। यह प्रक्रिया एक जटिल लेकिन रुचिपूर्ण प्रक्रिया है।

प्रो फिलप्पो के अनुसार, सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया की कुछ प्रमुख क्रियाएँ तथा कार्यवाही की अवस्थाएँ निम्नलिखित है[2] —

1. पूर्व करार अवस्था (Pre negotiation Phase)—श्रम सघ अपने सदस्यों की कार्य की दशाओ तथा उनके हितो के सरक्षण की एक सस्था है। कम्पनी को

1 Personnel Management in India, Compiled by IIPM p 175
2 *Flippo, E B* Principles of Personnel Management, p 469

प्रभावपूर्ण सौदे के लिए श्रमसंघों से समय पर पूर्ण उत्साह, शक्ति एवं कुशलता से मिलना चाहिए। यह प्रथम अवस्था महत्त्वपूर्ण है। जब किसी भी श्रम मामले पर लिखित में हस्ताक्षर हो जाते हैं तब दूसरे मामले के लिए पूर्व-करार अवस्था शुरू हो जाती है। मजदूरी, कार्य के घण्टे, पेंशन, छुट्टियाँ और पारिश्रमिक के विभिन्न प्रकारों के सम्बन्ध में प्रबन्धकों को सही आँकड़े एकत्रित करके रखने चाहिए। यदि श्रमसंघ औद्योगिक संघ है तो इसकी सामूहिक सौदाकारी कम होती है जबकि क्राफ्ट यूनियन की सौदाकारी शक्ति सुदृढ़ होती है। सामूहिक सौदाकारी प्रबन्ध की भाँति एक कला है। लेकिन यह एक कला भी है जिसे अध्ययन तथा तैयारी द्वारा सुधारा जा सकता है।

2 करारकर्त्ता (Negotiators)—सामूहिक सौदाकारी में करार करने वालों में प्रबन्धक पक्ष की ओर से कोई भी व्यक्ति हो सकता। वह औद्योगिक सम्बन्ध निर्देशक, उत्पादन विभाग का अध्यक्ष श्रम अधिकारी आदि कोई भी हो सकता है। करारकर्त्ताओं को सफल करार हेतु कार्य की दशाओं और प्रबन्ध श्रमिकों के भूतकालीन सम्बन्धों की पर्याप्त एवं तथ्य पूर्ण जानकारी होना आवश्यक है।

श्रमसंघ की ओर से स्थानीय संघों के प्रतिनिधि भाग लेने चाहिए। यदि महत्त्वपूर्ण श्रम मामला है तो उसके लिए राष्ट्रीय स्तर के संघ के प्रतिनिधि भाग ले सकते हैं। पाश्चात्य देशों में ये करारकर्त्ता सौदाकारी और करार की कला में विशेषज्ञ होते हैं और पूर्ण समय के होते हैं।

3 सौदाकारी की व्यूह रचना (Strategy of Bargaining)—श्रम समस्याओं को सौदाकारी प्रक्रिया से ही दूर किया जा सकता है। सौदाकारी में 'देना व लेना' (Give and Take) की विचारधारा सम्मिलित होती है। श्रमिक अपनी माँगों को मनवाते हैं जबकि मालिक उनकी माँगें मन्जूर करते हैं। सौदाकारी व्यूह रचना वह नीति है जिसके अन्तर्गत किस आधार पर सौदाकारी के समझौते पर हस्ताक्षर किए जाते हैं। सौदाकारी मेज (Bargaining Table) पर किस प्रकार की कार्यवाही की जानी चाहिए। किसी श्रम संघ की माँगों हेतु अधिकतम छूट की सीमा का निर्धारण के सम्बन्ध में मुख्य करारकर्त्ताओं में सहमति होनी चाहिए।

श्रमसंघ पदोन्नति स्थानान्तरण, कार्य में परिवर्तन तथा अन्य निर्णयों के लागू करने हेतु दोनों पक्षों की पारस्परिक सहमति हेतु छूट प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। समझौते को लागू करने का उत्तरदायित्व प्रबन्धकों का है। प्रबन्धकों को श्रमिकों द्वारा हड़ताल करने के विषय में डरना नहीं चाहिए।

4. सौदाकारी की कुशलता (Tactics of Bargaining)—सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया के अन्तर्गत एक दूसरे पक्ष को गुमराह करने की क्रिया एवं कुशलता आती है। श्रमिकों द्वारा जो माँगें रखी जाती हैं वे बढ़ा-चढ़ाकर रखी जाती हैं जिससे कम-से-कम माँगें स्वीकृत होने पर भी अधिक माँगें मन्जूर हो जाती हैं। प्रबन्धकों को भी सौदाकारी शुरू करने के समय श्रमसंघों की माँगों को ध्यान में रखना चाहिए जिससे समझौता करते समय ध्यान रखा जा सके।

5. **समझौता (Contract)**—श्रम-प्रबन्ध समझौते के माध्यम से प्रबन्ध और श्रम के सम्बन्धो को नियमित किया जाता है। जब दोनो पक्षो द्वारा सौदाकारी प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है तो उस समय समझौता हो जाता है। यह समझौता दो-तीन वर्ष तक चलता है। समझौते पर हस्ताक्षर करने पर ही सौदाकारी समाप्त नहीं हो जाती है, बल्कि अन्य मामलो पर सौदाकारी प्रक्रिया शुरू हो जाती है। समझौते विभिन्न विषय पर किए जा सकते है जैसे सघ की सुरक्षा, शिकायत निवारण, पदोन्नति, स्थानान्तरण, मजदूरी, कार्य की दशाएँ, आदि।

सामूहिक सौदाकारी की आवश्यकता
(Need for Collective Bargaining)

प्रो श्रीवास्तव के अनुसार सामूहिक सौदाकारी की आवश्यकता निम्न आधारो पर की जाती है[1]—

1 व्यक्तिगत श्रमिक द्वारा व्यक्तिगत सौदाकारी के अन्तर्गत श्रम की विभिन्न विशेषताओ के कारण निम्न दशाएँ स्वीकृत कर सकता है और इसके परिणामस्वरूप पारिश्रमिक की सामान्य दर निम्न हो सकती है। श्रम की गतिशीलता कम होती है, वह सामाजिक एव धार्मिक तत्वो से प्रभावित होने के कारण एक ही स्थान मे कार्य करता रहता है और इसके परिणामस्वरूप व्यक्तिगत सौदाकारी से शोषण होता है। इससे बचाने के लिए सामूहिक सौदाकारी की आवश्यकता है।

2 शीघ्र कार्य करने वाले श्रमिको द्वारा कम मजदूरी स्वीकार की जा सकती है और इसके परिणामस्वरूप सामान्य मजदूरी दर कम हो जाने से श्रमिको की आमदनी भी घट जाती है। इसलिए आमदनी का ऊँचा स्तर बनाए रखने हेतु सामूहिक सौदाकारी आवश्यक है।

3 एक या दो नियोक्ताओ की एकाधिकारी प्रवृत्ति के कारण श्रम की माँग पर नियन्त्रण करके श्रमिको का शोषण किया जाता है। श्रमिकों को इस शोषण से बचाने तथा मालिको की एकाधिकारी प्रवृत्ति को समाप्त करने हेतु सामूहिक सौदाकारी आवश्यक है।

4 मजदूरी का निर्धारण बाजार की माँग एव पूर्ति की शक्तियो के द्वारा किया जा सकता है, लेकिन इसके अतिरिक्त अन्य मामले जैसे कार्य की दशाएँ, श्रमिको के स्वास्थ्य एव सुरक्षा, विवेकीकरण आदि को व्यक्तिगत निर्णयो द्वारा लागू किया जाता है। इसलिए सामूहिक सौदाकारी आवश्यक है।

5 सामूहिक सौदाकारी इसलिए भी आवश्यक है कि श्रमिको को उद्योग के प्रबन्ध एव कार्य मे भागीदारी दी जाए। इससे श्रमिक सन्तुष्ट होगे तथा महत्त्वपूर्ण श्रम मामलो को प्रभावित कर सकेंगे।

1 *Shrivastava, G L* . Collective Bargaining and Labour Management Relations in India, p. 11.

6 उत्पादन को निरन्तर रूप से बनाए रखने के लिए दोनो पक्षो का सहयोग एव एकता आवश्यक है। यह सामूहिक सौदाकारी के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

7 श्रमिक के वस्तुवादी दृष्टिकोण (Commodity Approach) के स्थान पर मानवीय सम्बन्ध दृष्टिकोण (Human Relations Approach) अपनाना आवश्यक है। श्रम को अब मानवीय साधन समझा जाने लगा है और उसके साथ मानवीय व्यवहार करने हेतु सामूहिक सौदाकारी आवश्यक है।

सामूहिक सौदाकारी के सिद्धान्त (Principles of Collective Bargaining)

प्रो चैम्बरलेन ने सामूहिक सौदाकारी प्रक्रिया के अन्तर्गत निम्न सिद्धान्तो का विवरण दिया है[1]—

1 सामूहिक सौदाकारी प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी भाग लेने वालो को पूर्ण जानकारी एव स्वीकृति प्राप्त करनी चाहिए। विभिन्न शिकायतो के सम्बन्ध मे अपनाए गए विधान, प्रतिनिधियो के नियुक्त करने का तरीका, विभिन्न कदम और समय सीमा आदि का प्रत्येक श्रमिक को पूर्ण ज्ञान होना चाहिए।

2 सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत काम मे आने वाली शिकायत पद्धति को बनाए रखना चाहिए। इससे कार्य मे निरन्तरता बनाई रखी जा सकेगी।

3 सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत की गई शिकायतो का निवारण देरी से नही किया जाना चाहिए। इसके लिए शीघ्र निर्णय लिए जाने चाहिए अन्यथा श्रमिको का विश्वास इस प्रक्रिया से हट जाएगा।

4 सामूहिक सौदाकारी प्रक्रिया के अन्तगत जिन शिकायतो का निवारण किया जाता है उस प्रणाली को लागू करना चाहिए और उस पर प्रतिरोध रखना होगा अन्यथा श्रमिक का विश्वास समाप्त हो जाएगा। अत इस पद्धति के अन्तर्गत अधिक अपील करने की छूट नही दी जानी चाहिए।

5 सामूहिक सौदाकारी में भाग लेने वाले प्रतिनिधियो को व्यक्तिगत हानि नही होनी चाहिए क्योकि वे कार्यालय सम्बन्धी कार्य भी करते है।

6 श्रमिको को यह आश्वासन मिलना चाहिए कि इस प्रक्रिया के अन्तर्गत उनको न्याय मिलेगा। अन्यथा यह पद्धति सफल नही हो सकेगी।

भारत मे सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन देने के उपाय (Measures to Encourage Collective Bargaining in India)

भारत एक विकासशील देश है। यहाँ पर औद्योगिक श्रमिक पाश्चात्य देशो की भाँति स्थाई रूप से औद्योगिक क्षेत्रो मे निवास नही करते हैं। श्रमसघ आन्दोलन का विकास भी सुदृढ एव सुसगठित आधारो पर नही हो पाया है। भारतीय श्रमिक

1 *Shrivastava, G L* Collective Bargaining and Labour Management Relations in India, p 27

अज्ञानी, अशिक्षित और रूढ़िवादी हैं। इसलिए उनका शोषण मालिकों द्वारा तथा बाहरी नेतृत्व के द्वारा किया जाता है। श्रमसंघों की वित्तीय स्थिति भी सुदृढ़ नहीं है तथा श्रमसंघ विभिन्न राजनीतिक दलों से सम्बद्ध है। इन सभी कमियों के कारण हमारे देश में सामूहिक सौदाकारी को प्रभावपूर्ण तरीके से लागू नहीं किया जा सकता है और न ही इसको पूर्ण सफलता मिल सकी है। अतः भारत में सामूहिक सौदाकारी शक्ति को प्रोत्साहित करने के लिए निम्न उपाय काम में लेने चाहिए—

1. एक सुदृढ़ एवं सुसंगठित श्रमसंघ का निर्माण—भारतीय श्रमसंघ आन्दोलन का विकास तीव्र गति से हुआ है लेकिन पाश्चात्य देशों की भाँति यह सुदृढ़ एवं सुसंगठित नहीं है। इसके लिए हमें श्रमिकों के कार्यों एवं आवास की दशाओं में सुधार करना होगा। श्रमिकों को मनोरंजन, वाचनालय, पुस्तकालय, चिकित्सा, आदि की सुविधाएँ दी जाएगी। इसके परिणामस्वरूप वे औद्योगिक क्षेत्रों की ओर अधिक आकर्षित होंगे। शिक्षा का प्रसार करना होगा जिससे कि श्रमिक अपने अधिकारों और उत्तरदायित्वों को अच्छी तरह समझ सकें। इसके साथ ही अनुशासन संहिता, 1958 (Code of Discipline, 1958) में दिए गए श्रमसंघ की मान्यता की कसौटियों को प्रभावपूर्ण ढंग से लागू करना चाहिए। इसके साथ ही भारतीय श्रमसंघ अधिनियम, 1926 में संशोधन करके श्रम संघों को अनिवार्य मान्यता देने का प्रावधान रखना चाहिए। बाह्य नेतृत्व पर वैधानिक आधार पर रोक लगाकर श्रमसंघों में आन्तरिक नेतृत्व को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए। इससे हमारे देश में एक सुदृढ़ एवं संगठित श्रमसंघ आन्दोलन का प्रादुर्भाव होगा।

2. एक प्रगतिशील और सुदृढ़ प्रबन्ध का होना (Existence of a Progressive and Strong Management)—प्रबन्धकों को परम्परागत विचारधारा जिसके अन्तर्गत श्रमिक को नौकरी से लगाकर उसे तुरन्त हटाया (Hire and Fire Approach) जाता था। उस दृष्टिकोण के स्थान पर एक प्रगतिशील प्रबन्धक के रूप में कार्य करना है। प्रबन्धकों को श्रमिकों को उद्योग में भागीदार समझना चाहिए। औद्योगिक प्रजातन्त्र हेतु उसे प्रबन्ध में सहभागिता दी जानी चाहिए। प्राचीन प्रबन्धक अपने लाभ को अधिकतम करने का उद्देश्य रखते थे। लेकिन आधुनिक प्रबन्धक के उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों में वृद्धि हो गई है। उसे अपना निजी हित ही नहीं देखना है बल्कि उसे व्यवसाय के मालिकों, श्रमिकों, उपभोक्ताओं और राष्ट्र के प्रति अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों के प्रति सचेत रहना चाहिए। इस विचारधारा के परिणामस्वरूप देश में एक प्रगतिशील एवं सुदृढ़ प्रबन्धकों का विकास होगा और इसी के आधार पर सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया को सफलता मिल सकेगी।

3. एकता एवं पारस्परिक सहयोग (Unanimity and Mutual Co-operation)—एक प्रभावपूर्ण सामूहिक सौदाकारी की प्रक्रिया के लिए यह आवश्यक है कि दोनों पक्षों के निश्चित उद्देश्य होने चाहिए और इनको सबके उद्देश्य समझना चाहिए। दोनों ही पक्षों द्वारा शान्ति और अनुशासन बनाए रखने, कार्य के तरीकों

व दशाओं में सुधार, कर्मचारियों की आय में वृद्धि के साथ साथ उद्योग के लाभ में वृद्धि करना आदि उद्देश्यों को समान उद्देश्य समझना चाहिए। दोनों पक्षों में आधारभूत उद्देश्यों पर एकमत होना चाहिए। इसके साथ ही दोनों पक्षों पारस्परिक अधिकारों तथा कर्त्तव्यों को मान्यता दी जानी चाहिए। एक दूसरे के अधिकारों तथा कर्त्तव्यों का आदर करना चाहिए।

4 **सत्ता को सुपुर्द करना (Delegation of Authority)**—जिस प्रकार प्रबन्ध की सफलता के लिए सत्ता की सुपुर्दगी आवश्यक है उसी प्रकार यह सामूहिक सौदाकारी प्रक्रिया की सफलता के लिए भी आवश्यक है। सौदाकारी मेज (Bargaining Table) पर बैठने वाले दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों को समझौते पर करार करने के सम्बन्ध में व्यापक अधिकार होने चाहिए और इन अधिकारों का सबको ज्ञान होना चाहिए। इसके साथ ही आपस में एक दूसरे के अधिकारों का आदर भी किया जाना चाहिए तथा दूसरे पक्ष के समझौता करने वालों में विश्वास भी होना चाहिए। दोनों पक्षों में सामूहिक आदर तथा विश्वास के अभाव में सामूहिक सौदाकारी प्रभावपूर्ण नहीं हो सकती है।

5. **तथ्य अन्वेषण विचारधारा को स्वीकृति (Acceptance of Fact Finding Approach)**—दोनों पक्षों द्वारा सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत न केवल लाभ प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए बल्कि औद्योगिक समस्याओं को सन्तोषप्रद ढग से निपटाने के तरीकों को ढूँढना चाहिए। सामूहिक सौदाकारी में लड़ने के दृष्टिकोण के स्थान पर समस्या हल का दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। विभिन्न प्रकार के नए तरीकों जैसे नौकरी मूल्यांकन, कार्य एवं गति अध्ययन, विवेकीकरण आदि को लागू करने की इच्छा होनी चाहिए। कार्यभार के प्रमापीकरण, पदोन्नति, प्रेरणात्मक योजनाओं आदि को लागू करने हेतु भी दोनों पक्ष सहमत होने चाहिए।

भारत में सामूहिक सौदाकारी की समस्या
(Problem of Collective Bargaining in India)

श्री एन एम लोखाण्डे के नेतृत्व में सर्वप्रथम सन् 1884 में कारखाना श्रमिकों की एक सभा सामूहिक प्रतिनिधित्व करने के लिए बुलाई गई थी और कारखाना आयोग के सम्मुख स्मरण-पत्र पेश किया गया था। प्रथम महायुद्ध (1914 18) के समय कामकार हितवर्द्धक सभा ने कार्य की दशाओं में सुधार करने और ब्रिटिश शासन का युद्ध में साथ देने के लिए सभी के सहयोग पर जोर दिया गया था। युद्धोपरान्त श्रमिकों की बढ़ती हुई आर्थिक कठिनाइयों, रूसी क्रान्ति, राष्ट्रीय आन्दोलन, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना अखिल भारतीय श्रमसंघ कांग्रेस (AITUC), भारतीय सैनिकों का विदेशों से प्राप्त अनुभव आदि तत्वों से भारतीय श्रमसंघ के विकास में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई। सन् 1920 में सर्वप्रथम अहमदाबाद की सूती वस्त्र उद्योग में श्रमिकों और मालिकों के बीच श्रम प्रबन्ध सम्बन्धों के नियमन हेतु सामूहिक सौदाकारी सम्पन्न हुई। यह देश भर में सबसे

पहला उदाहरण था। लेकिन आगे आने वाले कुछ वर्षों मे इस क्षेत्र मे कोई प्रगति नही हुई। सन् 1926 मे भारतीय श्रमसघ अधिनियम (Indian Trade Unions Act of 1926) के अन्तर्गत श्रम सघो को सामूहिक सौदाकारी के अधिकार प्राप्त हुए।

व्यापार विवाद अधिनियम 1929 (Trade Disputes Act of 1929) के अन्तर्गत भी सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन मिला। बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1934, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम 1946 और मध्यप्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम, 1960 आदि विभिन्न कानूनन प्रावधानो के कारण हमारे देश मे श्रम और प्रबन्धको के पारस्परिक हितो पर विचार-विमर्श की सुविधा प्रदान की गई। इससे सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन मिला। इनके अतिरिक्त कुछ ऐच्छिक उपायो के माध्यम से भी सामूहिक सौदाकारी के विकास मे सहायता मिली है। उदाहरणार्थ—त्रिपक्षीय सम्मेलन, सयुक्त परामर्श मण्डल, औद्योगिक समितियाँ, उत्पादन समितियाँ आदि।

भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा अनुशासन सहिता तथा आचरण सहिता तैयार की गई। अनुशासन सहिता, 1958 (Code of Discipline, 1958) द्वारा दोनो पक्षो द्वारा अनुचित श्रम व्यवहार नही अपनाए जाएँगे तथा उद्योग मे अनुशासन बनाया रखा जा सकेगा। यह दोनो पक्षो द्वारा ऐच्छिक रूप से अपनाया गया है। इसके क्रियान्वयन हेतु केन्द्रीय तथा राज्य स्तरो पर क्रियान्वयन इकाइयो की स्थापना की गई है, जिसके अन्तर्गत शिकायत निवारण पद्धति श्रमिको से परामर्श करके तैयार की जाएगी। इससे सामूहिक सौदाकारी के विकास मे सहायता मिली है। इसके साथ ही उद्योगो मे श्रमिको को प्रबन्ध मे सहभागिता (Participation in Management) दी गई है। इसके लिए सयुक्त परिषदो (Joint Councils) मे श्रमिकों के प्रतिनिधि भी लिए जाते है। आचार सहिता, 1958 (Code of Conduct 1958) के अन्तर्गत राष्ट्रीय स्तर के चारो प्रमुख सगठनो (INTUC, AITUC, HMS, UTUC) ने देश मे श्रम सगठनो के सुदृढ विकास हेतु तथा आपसी प्रतिस्पर्द्धा रोकने के लिए एक ऐच्छिक आचार सहिता को स्वीकार किया है। इससे श्रमसघो मे एकता को प्रोत्साहन मिलेगा जिसके परिणामस्वरूप सामूहिक सौदाकारी हेतु आवश्यक शर्ते पूरी हो सकेगी। भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा शिकायत पद्धति और स्थायी आदेश (Standing Orders) के नमूने तैयार किए गए है। यह भी पारस्परिक हितो की रक्षा करते हैं तथा इनके क्रियान्वयन मे पारस्परिक सहयोग तथा आपसी विचार-विमर्श से सामूहिक सौदाकारी को बढावा मिलता है।

सामूहिक सौदाकारी की सफलता के लिए श्रमिको तथा नियोजको के सगठनो का सुदृढ होना परमावश्यक है। प्रथम पचवर्षीय योजना मे इस पर जोर दिया गया था। हमारे देश मे सन् 1952 से कुछ उद्योगो मे प्रादेशिक तथा राष्ट्रीय स्तरो पर सामूहिक समझौते सम्पन्न हुए हैं। भारत के नियोजको के सगम (Employers' Federation of India) के एक सर्वेक्षण के अनुसार सन् 1956-60 की अवधि

मे हुए विभिन्न औद्योगिक विवादो का सामूहिक समझौतो द्वारा निपटाने का प्रतिशत अध्ययन के अन्तर्गत लिए गए उद्योगो मे 32 और 49 के बीच था।[1]

भारत मे जितने भी सामूहिक समझौते सम्पन्न हुए उनमे कुछ ऐच्छिक समझौते थे, कुछ ऐच्छिक-अनिवार्य समझौते थे और कुछ समझौतो को कानून का दर्जा दिया गया था। ऐच्छिक समझौतो के अन्तर्गत प्रत्यक्ष रूप से दोनो पक्ष करार कर लेते हैं तथा ऐच्छिक रूप से इन्हे लागू कर देते है। ऐच्छिक अनिवार्य समझौते वे है जिनके अन्तर्गत समझौता अधिकारी के सम्मुख दोनो पक्षो द्वारा करार किया जाता है और उसे निपटाया जाता है। औद्योगिक अधिकरणो (Industrial Tribunals) के सम्मुख जब दोनो पक्षो द्वारा अपने विचार रखे जाते हैं और फिर न्यायालय द्वारा निर्णय देकर समझौता कराया जाता है।

हमारे देश मे अधिकांश सामूहिक समझौते संयन्त्र स्तर (*Plant level*) पर हुए हैं फिर भी कुछ महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रो जैसे बम्बई और अहमदाबाद मे सूती वस्त्र उद्योग के अन्तर्गत उद्योग स्तर पर सामूहिक समझौते हुए है। कुछ महत्वपूर्ण सामूहिक समझौते निम्नलिखित है[2]—

सर्वप्रथम महात्मा गाँधी की प्रेरणा से सामूहिक समझौता सन् 1920 मे अहमदाबाद सूती वस्त्र उद्योग के नियोक्ताओ और श्रमिको के बीच सम्पन्न हुआ। सन् 1952 मे अहमदाबाद मिल मालिक संघ तथा सूती वस्त्र श्रमसंघ के बीच सभी विवादो को निपटाने हेतु ऐच्छिक पंच फैसला स्वीकार किया गया जिसका नवीनीकरण सन् 1955 मे किया गया। इसके अन्तर्गत बोनस समझौते को लागू किया गया था। सन् 1955 मे बाटा शू क० लि० तथा बाटा मजदूर संघ के बीच तालाबन्दी और हड़ताल, रोजगार की दशाएँ आदि के सम्बन्ध मे समझौता हुआ। सन् 1956 मे बोनस के सम्बन्ध मे समझौता बम्बई मिल मालिक संघ और राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ के बीच सम्पन्न हुआ। ऐसा ही बोनस समझौता बागान श्रमिको के इतिहास मे उत्तरी बंगाल और असम के बागान श्रमिको तथा मालिको के बीच सम्पन्न हुआ। श्री खण्डू भाई देसाई के हस्तक्षेप से यह समझौता सम्पन्न हुआ। इससे 8 लाख श्रमिको को 6 करोड रुपयो के रूप मे बोनस मिला। सन् 1951 मे श्रमिकों और प्रबन्धको के प्रतिनिधियो के एक सम्मेलन मे विवेकीकरण और अन्य मामलो (Rationalisation and Allied Matters) पर दिल्ली समझौता (Delhi Agreement) हुआ। यह एक राष्ट्रीय स्तर का समझौता था। सन् 1957 मे दूसरा राष्ट्रीय स्तर का समझौता बोनस पर भारतीय चाय संघ और भारतीय चाय बागान संघ तथा इण्टक व हिन्द मजदूर सभा के बीच सम्पन्न हुआ। इसी वर्ष उद्योग स्तर पर बोनस के विषय मे बम्बई मे रेशम एवं कला रेशम मिल संघ तथा मिल मजदूर सभा के बीच एक समझौता सम्पन्न हुआ। इसके अन्तर्गत सन् 1955 से 1957 तक के तीन वर्षों हेतु 10 दिन की मजदूरी के बराबर बोनस दिया जाना तय हुआ।[2] सन् 1957 मे टाटा आयरन स्टील क० (TISCo) तथा

1 Report of the National Commission on Labour 1969, p 321
2 *Agnihotri V* Industrial Relations in India p 66
3 *Srivastava G L* Collective Bargaining & Labour Management Relations in India p 53-58

टाटा मजदूर सघ (Tata Workers' Union) के बीच श्रमिकों की उन्नति तथा उत्पादन मे वृद्धि हेतु समझौता किया गया। अन्य महत्त्वपूर्ण सामूहिक समझौतो मे सन् 1956 का मोदी स्पीनिंग एण्ड वीविंग मिल्स क०लि०, मोदीनगर (उत्तर प्रदेश) और मिल कर्मचारी सघ के बीच का समझौता, सन् 1956 का नेशनल न्यूज प्रिन्ट एण्ड पेपर मिल्स लि० नेपानगर और कर्मचारियो के बीच हुआ समझौता, सन् 1956 का इण्डियन एल्युमिनियम क०लि०, बेलूर एव इसके श्रमिको के बीच हुआ समझौता आदि प्रमुख हैं। सन् 1971 मे भारत के नियोक्ताओं के सगम (Employers' Federation of India) के सदस्यो ने कुछ विषयो पर सामूहिक समझौते किए है। ये विषय मजदूरी, रोजगार की दशाएँ, कार्य की दशाएँ श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध, अन्य लाभ, शिकायत निवारण प्रक्रिया आदि है।[1]

हाल ही मे स्पात उद्योग मे भी श्रमिको की मजदूरी के सम्बन्ध मे एक सामूहिक समझौता 30 जुलाई 1975 को सम्पन्न हुआ है। इस विवाद पर समझौते के पूर्व के 10 महिनो तक रस्साकसी हो रही थी लेकिन अन्ततं यह समझौता हो गया जो कि एक महत्त्वपूर्ण भूमिका के रूप मे सामूहिक सौदाकारी का मार्ग प्रशस्त करेगा।[2]

भूतपूर्व राष्ट्रपति श्री वी वी गिरि ने भी विभिन्न प्रमुख उद्योगो मे सरकार की सहायता से उत्पादन बढाने हेतु समझौता पेनल (Conciliation Penals) तैयार करने का सुझाव दिया है जिससे कि श्रमिको मे आपसी सहयोग एव सद्भावना का विकास हो सके। इससे दोनों पक्षों के मतभेदो मे कमी होगी और इसके परिणाम-स्वरूप उत्पादकता एव उत्पादन मे वृद्धि होगी।[3]

18 मार्च, 1976 को बागान उद्योग हेतु श्रमिको और मालिको के बराबर 2 सदस्यो की एक द्विपक्षीय समिति की स्थापना की है जो कि सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन देगी। इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी औद्योगिक प्रजातन्त्र का एक महत्त्व-पूर्ण अग बन गया है। विकसित देशो मे सामूहिक सौदाकारी को एक राष्ट्रीय नीति माना जाता है तथा वहाँ इसके अतिरिक्त कोई विकल्प नही है जिसके माध्यम से श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो को नियमित तथा नियन्त्रित किया जा सके। इन देशो मे एक प्रभावपूर्ण सामूहिक सौदाकारी की आवश्यक शर्त विद्यमान है, लेकिन भारत जैसे विकासशील देश मे ये दशाएँ नही मिलती है। इसके परिणामस्वरूप सामूहिक सौदाकारी का पूर्ण विकास नही हुआ है। फिर भी भारत सरकार के अथक् प्रयत्नो द्वारा इसके विकास को प्रोत्साहन मिला है। भारत सरकार द्वारा श्रमिको की शिक्षा, प्रबन्ध मे श्रमिको की सहभागिता, अनुशासन सहिता और आचरण सहिता, श्रम मालिक समितियाँ, सयुक्त परिषदें, शिकायत निवारण पद्धति, स्थायी आदेशो के नमूने आदि की व्यवस्था की गई है जिससे सामूहिक सौदाकारी के विकास मे सहायता मिली है। इनके अतिरिक्त द्विपक्षीय समितियाँ, त्रिपक्षीय समितियाँ एव सम्मेलन सयुक्त परामर्श मण्डल, उत्पादन एव औद्योगिक समितियो आदि के माध्यम से भी सामूहिक सौदाकारी को बढावा मिला है। अत अब धीरे धीरे सामूहिक सौदाकारी को बढावा मिल रहा है। इससे हमारे देश मे औद्योगिक शक्ति की स्थापना की जा सकेगी तथा राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि होगी। लेकिन हमारे देश मे प्रभावपूर्ण सामूहिक सौदाकारी के विकास के लिए पूर्व दशाओ को पूरा करना होगा।

---

1 New Deal for Steel Workers by N K Singh, Economic Times, 1-3-76
2 Hindustan Times, Feb 14 1976
3 *Agnihotri, V* Industrial Relations in India, p 67

Ahu

7 औद्योगिक शान्ति, औद्योगिक अशान्ति के निवारण एवं निपटाने हेतु उपाय, औद्योगिक शान्ति के तरीकों के रूप में—समझौता, मध्यस्थता और पंचनिर्णय, श्रम संघ-प्रबंध सम्बन्धों में सरकार की भूमिका

(Industrial Peace, Preventive &Settlement Measures for Industrial Unrest; Conciliation, Mediation & Arbitration as Methods of Industrial Peace, Role of Govt in Union-Management Relations)

सभी देशो मे औद्योगिक शान्ति की समस्या समान है चाहे वे विकसित देश हो अथवा विकासशील। औद्योगीकरण के समय से ही सभी देश यह प्रयास कर रहे हैं कि औद्योगिक शान्ति स्थापित की जाए। पूर्ण औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए जो साधन काम मे लाए जाते है उनमे भिन्नता पायी जाती है क्योकि सभी देशो की सामाजिक, आर्थिक एव राजनीतिक परिस्थितियाँ समान नही हैं। श्री वी अग्निहोत्री के अनुसार, "श्रमिको और मालिको के बीच मधुर सम्बन्ध बनाए रखना एक महत्वपूर्ण कार्य है। प्रश्न यह है कि किस प्रकार उनके मतभेदो को बिना देश की अर्थव्यवस्था को अस्त-व्यस्त किए निपटाया जाए।"[1]

किसी भी देश की श्रम नीति मे सन्तोषप्रद औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने का कार्य बहुत महत्वपूर्ण है। प्रो भगोलीवाल के अनुसार, "इस प्रकार औद्योगिक सम्बन्ध औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना और उसे बनाए रखने मे महत्वपूर्ण योगदान देते है। यह किसी भी देश की प्रगति की पूर्वदशा है। किसी भी देश के सफल औद्योगीकरण के लिए अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध परमावश्यक हैं।"[2] आधुनिक राज्य का यह अधिकार एव कर्तव्य है कि वह औद्योगिक अशान्ति होने पर उसमे हस्तक्षेप करे। उसके उत्पन्न होने वाले कारणो को दूर करे। अत औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि औद्योगिक झगडो को रोकने तथा उनके निपटाने की व्यवस्था की जाए।

1 *Agnihotri, V* · Industrial Relations in India, p 127
2 *Bhagoliwal, T N* Economics of Labour and Social Welfare, p 95

औद्योगिक शान्ति
(Industrial Peace)

जब भी हम श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो का अध्ययन करते हैं तब हमे औद्योगिक शान्ति शब्द की जानकारी मिलती है । इसकी कोई निश्चित परिभाषा नही है । फिर भी औद्योगिक शान्ति के अन्तर्गत श्रमिको एव मालिको के बीच मधुर सम्बन्धो का पाया जाना आता है । औद्योगिक शान्ति का विपरीत या विलोम औद्योगिक अशान्ति (Industrial Unrest) है। औद्योगिक अशान्ति का अर्थ है किसी भी औद्योगिक संस्थान मे कार्य करने वाले श्रमिको मे असन्तोष का पाया जाना है। श्रमिको मे यह असन्तोष कई कारणो से हो सकता है जिनमे आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा मनोवैज्ञानिक तत्त्व प्रमुख हैं । इस अशान्ति को प्रदर्शित करने हेतु श्रमिक हड़ताल करने, धीमे कार्य की प्रवृत्ति आदि तरीको का उपयोग करते हैं । इसका अर्थ यह नही है कि औद्योगिक शान्ति औद्योगिक अशान्ति का ठीक विलोम शब्द है, बल्कि औद्योगिक शान्ति का अर्थ है उद्योग मे कार्य करने वाले श्रमिको तथा उनके मालिको के बीच मधुर एव अच्छे सम्बन्धो का होना । अच्छे एव मधुर सम्बन्ध तभी सभव होते हैं जब दोनो पक्षो (श्रम एव पूजी) मे एकता और विश्वास हो । यह दोनो पक्षो के सहयोग का कारण एव परिणाम है । इस प्रकार औद्योगिक शान्ति का अर्थ औद्योगिक अशान्ति की अनुपस्थिति से नही है, बल्कि यह वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत श्रमिको और मालिको के बीच पारस्परिक एकता एव मधुर सम्बन्ध पाए जाते हैं तथा दोनो पक्षो के सगठनो द्वारा आपसी एकता से पारस्परिक हितो को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है ।

औद्योगिक शान्ति बनाए रखने मे श्रमिको और मालिको का पूर्ण दायित्व है और औद्योगिक सम्बन्धो के अन्तर्गत इन दोनो पक्षो को शामिल किया जाता है । लेकिन औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए दोनो पक्षो मे पारस्परिक एकता एव सहयोग होना जरूरी है । मालिको को अपना परम्परागत दृष्टिकोण त्याग कर आधुनिक दृष्टिकोण को अपनाना चाहिए जिसके अन्तर्गत श्रमिक को औद्योगिक प्रजातन्त्र की सफलता के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप मे माना जाता है । लेकिन आधुनिक समय मे भी सभी मालिक या नियोक्ता प्रगतिशील नही हैं और उनके पुराने दृष्टिकोण मे भी पूर्ण रूप से परिवर्तन नही आया है । अत आधुनिक कल्याणकारी राज्य का यह अधिकार एव उत्तरदायित्व है कि वह औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए हस्तक्षेप करे । औद्योगिक शान्ति के लिए दोनो पक्षो मे पूर्ण सहयोग होना परमावश्यक है । इस प्रकार के सहयोग पर बल देते हुए डॉ. पुनीकर ने लिखा है कि, "यह सहयोग कई प्रकार का होता है तथा इसका सगठन विभिन्न स्तरो पर औद्योगिक सगठन के विकास, कर्मचारी के सगठन की शक्ति और राज्य की विचारधारा या दृष्टिकोण के अनुसार किया जाता है ।"[1]

1 *Punekar, S D* Industrial Peace in India, p 81.

(2) श्रमिकों को जब रोजगार एव कार्य की दशाओ श्रम सगठनो के कार्यों मे हस्तक्षेप, सरकारी आदेशो, समझौता, न्यायाधिकरण आदि के लागू न करने पर असन्तोष प्रकट करना पडता है। इस प्रकार की शिकायतो से ही औद्योगिक सम्बन्ध मधुर एव अच्छे नही हो सकते हैं। अत. श्रमिको की शिकायतें जो कि विभिन्न मामलो से सम्बन्धित होती हैं, पर पूर्ण रूप से ध्यान रखना चाहिए। जब श्रमिकों की छोटी सी शिकायत पर प्रबन्धक ध्यान नही देते है तो इससे श्रमिको मे असन्तोष बढने लगता है। इस असन्तोष के परिणामस्वरूप ही औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है (3) उद्योगो मे कार्य करने वाले श्रमिको मे अनुशासन होना भी परमावश्यक है। अनुशासन के अभाव म साधनो का पूर्ण उपयोग नही हो पाता है। उत्पादन कुशलता मे कमी आती है और राष्ट्रीय उत्पादन मे गिरावट आती है। इससे औद्योगिक शान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाता है क्योकि अनुशासनहीनता के विरुद्ध मालिको द्वारा कडी कार्यवाही करने पर श्रमिको मे असन्तोष उत्पन्न हो जाता है।

औद्योगिक अशान्ति कई रूपो मे उत्पन्न होती है। श्रमिको द्वारा हडताल कर दी जाती है तथा प्रबन्ध तालाबन्दी का सहारा लेते हैं। तालाबन्दी से कार्य करने का स्थान ही बन्द कर दिया जाता है। इन दोनो परम्परागत तरीको (हडताल व तालाबन्दी) के अतिरिक्त श्रमिक अपना असन्तोष प्रकट करने के लिए अन्य तरीके भी अपनाते हैं। इन तरीको से भी औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न होती है। इन तरीको मे धीरे काम करना, नियमानुसार कार्य, ठहरे रहना, बैठे रहना, सभी द्वारा आकस्मिक अवकाश पर जाना, आदि प्रमुख हैं। हाल ही के वर्षों मे हमारे देश मे विशेष रूप से पूर्वी राज्यो मे औद्योगिक अशान्ति का एक महत्त्वपूर्ण तरीका अपनाया जाने लगा है। वह है घेराव (Gherao)। घेराव से न केवल उद्योग तथा देश की अर्थव्यवस्था पर ही प्रतिकूल प्रभाव डलता है बल्कि यह श्रमसघो के लिए भी घातक सिद्ध होता है, इससे न केवल दोनो पक्षो की एकता समाप्त होती है बल्कि कानून व्यवस्था बनाए रखने मे भी बाधा उत्पन्न होता है।

औद्योगिक अशान्ति के कारण
(Causes of Industrial Unrest)

प्राचीन समय मे उत्पादन छोटे पैमाने पर होता था कार्य करने वाले श्रमिकों की सख्या कम होती थी। इससे श्रमिको और मालिको मे निकट के सम्बन्ध होने से आपस मे मतभेद नही होते थे। आधुनिक समय मे तीव्र औद्योगीकरण ने बडे पैमाने के उद्योगो को जन्म दिया। इन उद्योगो मे श्रम विभाजन और विशिष्टीकरण अपनाया जाता है। इससे श्रमिको की सख्या अधिक होती है। मालिक तथा प्रबन्धक अलग-अलग होते हैं। इसके परिणामस्वरूप श्रमिको और नियोजको के बीच निकट का सम्बन्ध नही होता है। आधुनिक पूँजीवादी पद्धति के आधार पर उत्पादन होने से उत्पादको का उद्देश्य अधिकतम लाभ कमाना होता है। श्रमिक और पूँजी दोनो उत्पादन के महत्त्वपूर्ण साधन हैं। लेकिन दोनो के हित परस्पर विरोधी हैं। श्रमिक अधिक मजदूरी तथा पूँजीपति अधिक लाभ प्राप्त करना चाहते हैं। इससे दोनो पक्षो

मे सघर्ष होता है और इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न होती है। स्वर्गीय डॉ राधाकमल मुकर्जी ने इस औद्योगिक सघर्ष के कारणो पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, "समस्त ससार म पूँजीवादी उद्योग के विकास, जिसके अन्तर्गत उत्पादन के औजारो पर एक छोटे उद्यमी द्वारा नियन्त्रण रखा जाता है, ने प्रबन्ध और श्रम के बीच सघर्ष उत्पन्न कर दिया है।"[1]

औद्योगिक विवादो की उत्पत्ति के दो कारण हैं—प्रथम, आर्थिक कारण एव द्वितीय, गैर-आर्थिक कारण।

आर्थिक कारण (Economic Causes) वे कारण है जिमसे श्रमिक वर्ग की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के झगडे मजदूरी, महँगाई भत्ता, बोनस, कार्य के घण्टे, कार्य की दशाएँ सवेतन अथवा बिना वेतन के छुट्टियां आदि के कारण उत्पन्न होते हैं। श्रमिको को कम मजदूरी, महँगाई, बोनस आदि देने पर उनकी आमदनी कम होती है और उनके परिणामस्वरूप उनकी आवश्यकताएँ पूरी नही होनी हैं। लम्बे कार्य के घण्टे, खराब कार्य की दशाएँ तथा कम छुट्टियो आदि होने पर श्रमिको की कार्यकुशलता कम हो जाती है और इससे उत्पादन घटता है। इस प्रकार इन आर्थिक कारणो से औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है।

गैर आर्थिक कारण (Non Economic Causes) भी औद्योगिक विवादो को उत्पन्न करते हैं। ये गैर-आर्थिक कारण मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा राजनीतिक होते हैं। श्रम उत्पादन का एक साधन ही नही है बल्कि वह मानव भी है। उसकी अपनी इच्छाएँ आवश्यकताएँ, भावनाएँ आदि होती हैं। यदि उसके साथ अच्छा व्यवहार नही किया जाता है तो इससे उसके मन पर विपरीत प्रभाव पडता है। यदि उसी के साथ मानवीय व्यवहार किया जाता है तो वह रुचि लेकर कार्य करता है। उसकी कार्यक्षमता मे वृद्धि होती है और उत्पादन मे भी वृद्धि होती है। हॉथोर्न प्रयोग (Hawthorne Experiment) द्वारा यह सिद्ध कर दिया गया है कि श्रमिक उसकी कार्य की दशाओ तथा मजदूरी बोनस महँगाई आदि आर्थिक कारणो से ही नही प्रभावित होता है बल्कि वह किस प्रकार के प्रबन्धको के नीचे कार्य करता है इससे भी प्रभावित होता है। श्रमिक एक आर्थिक मनुष्य (Economic Man) ही नही है बल्कि वह सामाजिक आर्थिक मनुष्य (Socio-Economic Man) भी है। अत उसके साथ मानवीय व्यवहार अच्छा न होने पर एक असन्तुष्ट श्रमिक वर्ग उत्पन्न होता है तथा उनकी इस असन्तुष्टि के कारण हडताल, धीरे कार्य करना, बैठे रहना, घेराव आदि रूपो मे औद्योगिक विवाद उत्पन्न होगे। राजनीतिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु भी हडताल आदि की जाती है। हमारे देश के श्रमिक सघ आन्दोलन द्वारा की गई हडतालें आर्थिक उद्देश्यो की पूर्ति के साथ-साथ राजनीतिक उद्देश्य (स्वाधीनता प्राप्त करना) प्राप्त करना था। आज भी हमारे श्रमिक सघो मे बाह्य नेतृत्व तथा इनका विभिन्न राजनीतिक दलो से सम्बन्ध यह स्पष्ट करता है कि स्वार्थ सिद्धि हेतु

1 *Mukerjee, R K* Indian Working Class p 372

श्रमिक संघो द्वारा हड़ताल करवाई जाती है और इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है ।

इस प्रकार श्रमिको मे असन्तोष उनकी आर्थिक आवश्यकताओ के पूरा न होने, उनके रोजगार की सुरक्षा न होना तथा उनकी कार्य की दशाएँ खराब होने के कारण उत्पन्न होता है । इससे औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है । इस प्रकार औद्योगिक अशान्ति न केवल एक पूँजीवादी प्रणाली की ही देन है, बल्कि सभी प्रकार की अर्थव्यवस्थाओ मे औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न होती है । यह जरूर है कि एक अर्थव्यवस्था से दूसरी अर्थव्यवस्था मे इसकी मात्रा भिन्न हो सकती है । प्रो लेस्टर ने इस पर जोर देते हुए लिखा है कि, "जब लोग अपनी सेवाएँ उनकी सेवाओ के क्रेता को बेचते हैं और उनकी कार्यशील आत्मा को वहाँ खर्च करते हैं तो विभिन्न मात्रा मे असन्तोष, असन्तुष्टि और औद्योगिक अशान्ति होती है । कर्मचारी विशेष रूप से अधिक मजदूरी, स्वस्थ कार्य की दशाएँ, उन्नति के अवसर, सन्तोषप्रद कार्य, औद्योगिक कार्यो मे सहमति और मजदूरी की हानि, अधिक कार्य और पक्षपातपूर्ण व्यवहार के विरुद्ध रक्षा आदि मे रुचि रखते हैं ।"[1]

भारत मे भी औद्योगिक विवादो अथवा अशान्ति के कारण राजनीतिक, मनोवैज्ञानिक तथा आर्थिक हैं । इनमे आर्थिक कारण महत्त्वपूर्ण है । हमारे देश मे विभिन्न हड़तालो के पीछे आर्थिक कारण हैं । भारतीय श्रमिको की मजदूरी बढ़ती हुई कीमतो की तुलना मे बहुत कम है तथा उनकी कार्य एव आवास की दशाएँ भी बहुत खराब हैं । भारतीय श्रमिको के साथ मानवीय व्यवहार नही किया जाता है । आज भी अधिकांश नियोजको द्वारा श्रमिको के प्रति परम्परागत दृष्टिकोण (Traditional Approach) रखा जाता है । उनको उद्योग मे भागीदार नही समझा जाता है । इसके परिणामस्वरूप उनमे असन्तोष उत्पन्न हो जाता है । भारत मे औद्योगिक अशान्ति के अन्य कारणो मे सामूहिक सौदाकारी का अभाव, श्रमिको और मालिको के बीच निकट का सम्बन्ध न होना तथा अमानवीय व्यवहार प्रमुख हैं।

राष्ट्रीय श्रम आयोग के अध्ययन दल द्वारा हमारे देश मे औद्योगिक अशान्ति के कुछ कारण प्रस्तुत किए हैं । उनमे अधिक कानून का उपयोग अथवा श्रम कानूनो का जटिल होना, औद्योगिक शान्ति और झगड़ो के निपटाने की व्यवस्था का अपर्याप्त होना आदि कारण प्रमुख हैं । इसके अतिरिक्त भारतीय श्रमसघ आन्दोलन का विकास भी सुदृढ नही हुआ है । श्रमसघो मे बाह्य नेतृत्व, आपसी प्रतिस्पर्धा, राजनीतिक दलो से सम्बन्ध, अनिवार्य रूप से श्रमसघो को मान्यता न दिलाने का कानूनी प्रावधान, मालिको का अनुदार दृष्टिकोण आदि भी औद्योगिक शान्ति बनाए रखने मे बाधक हैं ।

औद्योगिक अशान्ति के परिणाम
(Consequences of Industrial Unrest)

औद्योगिक अशान्ति के परिणामस्वरूप श्रमिको द्वारा हड़ताल तथा नियोजको

1. *Lester, R A* Economics of Labour, p 3

द्वारा तालाबन्दी के हथियार का उपयोग किया जाता है। इसके परिणामस्वरूप देश का आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन अस्त-व्यस्त हो जाता है। औद्योगिक अशान्ति मे केवल श्रमिक तथा नियोजक ही शामिल नहीं होते है, बल्कि इससे जनता पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडता है। इससे राष्ट्रीय उत्पादन मे गिरावट आती है। प्रो ए सी पीगू ने औद्योगिक विवादो से होने वाली हानियो पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि, "जब समस्त अथवा एक ही उद्योग के किसी भाग मे हडताल अथवा तालाबन्दी के कारण श्रम और औजार बेकार पडे रहते हैं, तो इससे राष्ट्रीय लाभांश को नुकसान होता है और इससे आर्थिक कल्याण को नुकसान होता है।"[1]

इस प्रकार जिस उद्योग मे हडताल तथा तालाबन्दी होती है उसमे उत्पादन गिर जाता है और श्रमिको को 'न काम न मजदूरी' (No work no wages) के कारण हानि उठानी पडती है। यदि एक उद्योग दूसरे उद्योग का पूरक है तो इससे दूसरे उद्योग का उत्पादन भी प्रभावित होता है। उदाहरण के तौर पर रेल्वे हडताल से विभिन्न उद्योगो को कच्चा माल समय पर नही पहुँच पाने से उत्पादन कम हो जाता है और बना हुआ माल एक जगह जमा होने से मालिको को हानि उठानी पडती है। यदि उद्योग जनोपयोगी सेवा के अन्तर्गत आता है जैसे बिजली, कोयला, रेल आदि तो इससे जनता को आने-जाने मे कठिनाई आती है। काफी समय व धन की हानि होती है।

इस प्रकार औद्योगिक विवादो अथवा अशान्ति के कारण न केवल सम्बन्धित उद्योग व उसमे कार्य करने वाले श्रमिको को हानि होती है बल्कि पूरक उद्योगो, जनता को असुविधाएँ तथा राष्ट्रीय उत्पादन मे कमी आदि रूपो मे नुकसान उठाना पडता है।

अब प्रश्न यह उठता है कि श्रमिको तथा मालिको द्वारा हडताल तथा तालाबन्दी करना उचित है अथवा नही। श्रमिको द्वारा हडताल रूपी हथियार का उपयोग उनकी शिकायतो के निवारण हेतु किया जाता है। श्रमिक एक मानवीय साधन है और यह नाशवान है। भारत जैसे विकासशील देश मे सुदृढ श्रमसघ के अभाव मे श्रमिको का शोषण मालिको द्वारा किया जाता है। उन्हे कम मजदूरी दी जाती है। उनकी कार्य की दशाएँ एव आवास व्यवस्था खराब होती हैं। उनके साथ मानवीय व्यवहार नही किया जाता है। इन सब के कारण वह अपने असन्तोष को हडताल के माध्यम से प्रकट करता है। मालिको से अपनी माँगे मनवाने हेतु हडताल करते हैं। हडतालो से श्रमिको, मालिको, देश, समाज सभी को हानि होती है तथा कई बार यह कहकर कि हडताल से जनता को असुविधा होती है, इसकी आलोचना की जाती है। लेकिन जब श्रमिको की उचित माँगो की उपेक्षा मालिको द्वारा स्वीकार नही की जाती है तो इस स्थिति मे श्रमिको द्वारा हडताल करना उचित है। इसके विपरीत मालिको द्वारा अपने हितो की रक्षा करने हेतु तालाबन्दी की जाती है।

1. *Pigou, A C.*, Economics of Welfare, Part III, Chap I, p. 411.

तालाबन्दी से भी सभी पक्षो को हानि होती है। कानून व्यवस्था बनाए रखने मे असमर्थ होने पर तालाबन्दी करना उचित है। लेकिन श्रमिको की हडताल को असफल करने हेतु तालाबन्दी करना अनुचित है। अत हडताल तथा तालाबन्दी का उपयोग अन्तिम शस्त्रो के रूप मे किया जाना चाहिए। पहले हडताल तथा तालाबन्दी के पीछे छिपे हुए कारणो को दूर करना चाहिए। इसके साथ ही श्रमिको व मालिको को अपनी पारस्परिक बातचीत से माँगो को स्वीकार कर लेना चाहिए। विभिन्न देशो मे हडताल तथा तालाबन्दी के नियमन व नियन्त्रण के लिए अलग अलग अधिनियम बनाए गए हैं। भारत जैसे विकासशील देश मे औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) मे हडताल और औद्योगिक विवादो को रोकने तथा उनके निपटाने हेतु काम मे लाए गए विभिन्न तरीको का वर्णन करेंगे।

औद्योगिक विवादो को रोकने के उपाय
(Measures for the Prevention of Industrial Disputes)

हडतालो से सम्पूर्ण आर्थिक एव सामाजिक ढाँचा अस्त व्यस्त हो जाता है। इससे औद्योगिक अशान्ति को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इसलिए औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए जिन कारणो से विवाद उत्पन्न होते हैं, उन कारणो को रोकना चाहिए। यह सही कहा जाता है कि इलाज से पूर्व रोक लगाना' हमेशा अच्छा रहता है (Prevent on is always better than cure)। अत, प्रथम प्रयास हमे औद्योगिक विवादो को रोकने हेतु करना चाहिए। श्रमिको और नियोक्ताओ के पारस्परिक हितो के लिए उनके बीच की खाई को पाटना होगा। उन्हे एक दूसरे के निकट लाकर उनमे पारस्परिक एकता एव विश्वास उत्पन्न करना होगा। औद्योगिक विवादो के रोकने के तरीको मे समस्त उपाय शामिल हैं जिनके द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से दानो पक्षो के आपसी सम्बन्ध सुधरते है तथा औद्योगिक विवादो पर रोक लग जाती है। औद्योगिक विवादो को रोकने के उपायो के अन्तर्गत श्रमिको और उद्योग के समस्त सम्बन्धो को शामिल किया जाता है। दोनो पक्षो (श्रमिक और नियोक्ताओ)के सम्बन्धो के अतिरिक्त विवादो को रोकने म प्रगतिशील विधान बनाना एव क्रियान्वयन करना, मजदुर मालिक समितियाँ एव परिषदें मजदूरी बोर्ड, लाभाँश मे हिस्सा, सहभागिता त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन एव समितियाँ शिक्षा, आवास व्यवस्था कल्याण कार्य आदि उपाय महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान करते है। इन उपायो के माध्यम से श्रमिको और मालिको के बीच की खाई अथवा अन्तर को कम किया जा सकता है। उनमे पारस्परिक एकता एव विश्वास उत्पन्न होता है। विकसित देशो मे इन उपायो का पूर्ण विकास एव उपयोग हुआ है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देश मे इन उपायो का पूर्ण विकास और उपयोग नही हो पाया है। फिर भी हाल ही के वर्षों मे सरकार ने औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के उपायो के विकास मे महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

सुदृढ श्रमसघ का महत्त्व (Importance of a Strong Trade Union)—औद्योगिक विवादो को निपटाने तथा शान्ति बनाए रखने के लिए एक सुदृढ एव सुसगठित श्रम सघ का होना परमावश्यक है। इससे श्रमिको और मालिको के बीच

एकता एव मधुर सम्बन्ध उत्पन्न होगे। वे एक दूसरे के निकट आ सकेंगे। सुदृढ श्रम सघ होने पर श्रमिको की सौदाकारी शक्ति बढेगी और मालिको द्वारा उनका शोषण नही हो सकेगा। सुदृढ श्रम सगठनो के माध्यम से सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन मिलेगा और श्रमिको का प्रतिनिधित्व भी श्रमसघ ही कर सकेंगे। इस प्रकार किसी भी देश मे औद्योगिक विवादो को रोकने तथा निपटाने हेतु एक सुदृढ एव सुसगठित श्रमसघ परमावश्यक है। लेकिन भारत जैसे विकासशील देश मे एक सुदृढ श्रमसघ का अभाव होने से औद्योगिक विवादो को रोकने मे इसका कोई खास महत्त्वपूर्ण योगदान नही रहा है। श्रमसघ की विभिन्न दुर्बलताओ का अध्ययन हम पिछले अध्याय मे कर चुके है।

प्रबन्ध मे श्रमिको की साझेदारी (Workers' Participation in Management)—श्रम और प्रबन्ध सम्बन्धो को अच्छे एव मधुर बनाने के लिए यह आवश्यक है कि उसकी मनोदशा मे परिवर्तन किया जाए। श्रमिक को एक उत्पादन का साधन मात्र ही नही मानना चाहिए, बल्कि उसको उद्योग मे साझेदारी देनी चाहिए। प्रबन्ध मे श्रमिको का प्रतिनिधित्व भी होना चाहिए। ऐसी व्यवस्था हेतु सयुक्त परिषदो (Joint Councils) की स्थापना की जाती है। इन परिषदो मे श्रमिको तथा प्रबन्धको के बराबर बराबर प्रतिनिधि होते हैं। इस प्रकार की योजना का उद्देश्य औद्योगिक विकास एव देश की प्रगति है। औद्योगिक विकास हेतु औद्योगिक शान्ति आवश्यक है। इस प्रकार श्रमिको को प्रबन्ध के क्षेत्र मे साझेदारी देने से श्रमिक भी अपने आप को उद्योग का अभिन्न अग मानकर चलते हैं और उद्योग की प्रगति को अपनी प्रगति मानते हैं। इस प्रकार की विचारधारा से श्रमिक व प्रबन्धक दूसरे के निकट आते हैं। उनमे पारस्परिक एकता एव विश्वास उत्पन्न होता है। इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक विवादो को रोकने मे महत्त्वपूर्ण योगदान मिलता है।

लाभ हिस्सेदारी (Profit Sharing)—इससे भी अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने मे मदद मिलती है। लाभ मे हिस्सेदारी का अर्थ है श्रमिको को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त उद्योग के लाभ मे से मालिको द्वारा हिस्सा देना है। यह हिस्सा मालिको और श्रमिको के बीच हुए एक निश्चित समझौते के आधार पर दिया जाता है। लाभ मे हिस्सा देने के परिणामस्वरूप श्रमिको पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पडता है वे हडताल नही करते हैं तथा कार्य करते रहते है। हिस्सा मिलने से वे रुचि एव ध्यान के साथ कार्य करते हैं और उनकी आमदनी बढने से उनका जीवन स्तर बढता है तथा इसके परिणामस्वरूप श्रमिको की कार्यकुशलता मे वृद्धि होने से उत्पादन मे वृद्धि होती है। लाभ मे हिस्सा देने मे श्रमिको और प्रबन्धको के बीच एक स्नेहिल एव मधुर सम्बन्धो को प्रोत्साहन मिलता है। उद्योग के लाभ मे से हिस्सा मिलने पर श्रमिक अपनी जिम्मेदारियो तथा कर्त्तव्यो को समझने लगते हैं। इस प्रकार इन सभी प्रभावो के परिणामस्वरूप औद्योगिक विवादो को रोकने मे महत्त्वपूर्ण मदद मिलती है। इस योजना से औद्योगिक विवादो को पूर्ण रूप से समाप्त नही किया जा सकता है। फिर भी इससे इन पर रोक अवश्य लग जाती है।

मजदूर मालिक समितियाँ (Works Committees)—इन समितियो की स्थापना विभिन्न देशो मे कर दी गई है। प्रत्येक उद्योग मे श्रमिक व मालिको के बराबर-बराबर प्रतिनिधियो को शामिल करके इस प्रकार की समितियो का निर्माण किया जाता है। जहाँ 100 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ इसका निर्माण करना आवश्यक है। इनके द्वारा औद्योगिक विवादो को रोकने मे मदद मिलती है। इन समितियो के बनाने का सबसे महत्वपूर्ण उद्देश्य दोनो पक्षो मे पारस्परिक एकता एव विश्वास उत्पन्न करना है जिससे दोनो पक्ष एक दूसरे पक्ष को अच्छी तरह समझ सकें तथा एक दूसरे के निकट आ सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु इन समितियो द्वारा कुछ कार्य भी किए जाते हैं। इन कार्यों मे उत्पादन, कार्य एव रोजगार की दशाएँ, श्रम कल्याण, प्रशिक्षण, मजदूरी, बोनस और अनुशासन आदि शामिल किए जाते हैं। इस प्रकार इन समितियो के माध्यम से अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो को प्रोत्साहन मिलता है तथा औद्योगिक विवादो को रोकने मे मदद मिलती है। सन् 1973 के अन्त मे इन समितियो की सख्या 766 थी।[1]

शिकायत प्रक्रिया (Grievance Procedure)—औद्योगिक विवादो को रोकने के लिए यह आवश्यक है कि प्रत्येक सस्थान अथवा उद्योग मे एक उचित शिकायत निवारण पद्धति हो। जब छोटी-छोटी शिकायतो का निवारण प्रबन्धको द्वारा नही किया जाता है तो बाद मे ये शिकायतें श्रमिको मे असन्तोष पैदा करती हैं और उसके परिणामस्वरूप श्रमिक हड़ताल करते है। शिकायत निवारण प्रणाली सरल एव सुगम होनी चाहिए तथा इसमे किसी प्रकार का पक्षपात नही होना चाहिए। पक्षपात होने पर श्रमिको का विश्वास कम हो जाएगा। शिकायत निवारण मे भी अधिक समय नही लगना चाहिए। न्याय मे देरी का अर्थ न्याय से इन्कार करना है। अत शिकायत निवारण की उचित प्रणाली से औद्योगिक विवादो को रोकने मे सहायता मिलती है।

त्रिपक्षीय परामर्श व्यवस्था (Tripartite Consultative Machinery)—इस प्रकार की व्यवस्था करने के पीछे श्रमिको और मालिको के बीच मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करके औद्योगिक शान्ति स्थापित करना है। इन परामर्श समितियो के अन्तर्गत तीनो पक्षो-श्रम, प्रबन्ध एव सरकार—का प्रतिनिधित्व होता है। तीनो पक्ष एक मेज पर बैठकर पारस्परिक हितो पर विचार विमर्श करते हैं। उदाहरणार्थ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (ILO) द्वारा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (ILC) मे तीनो पक्षो के प्रतिनिधि जाते हैं और विश्व के श्रम मामलो की ससद् का कार्य करती है। इससे तीनो पक्ष एक दूसरे के निकट आते हैं। उनमे आपसी एकता तथा विश्वास को बढ़ावा मिलता है जिसके परिणामस्वरूप औद्योगिक विवादो को रोका जा सकता है।

औद्योगिक विवादों के निपटाने के उपाय
(Measures for the Settlement of Industrial Disputes)

जब औद्योगिक विवादो के रोकने के उपाय अपर्याप्त अथवा अप्रभावपूर्ण

1 India-A Reference Annual, 1975, p 296

रहने हैं तो उसके परिणामस्वरूप हड़तालें व तालाबन्दी होते हैं और औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न होती है। अत औद्योगिक विवादो के निपटाने हेतु कुछ उपाय काम मे लिए जाते हैं। प्रो भगोलीवाल ने सामान्य रूप से औद्योगिक विवादो को निपटाने हेतु निम्न उपाय या तरीको का वर्णन किया है[1]—

(1) अन्वेषण (Investigation)
(2) अनिवार्य मध्यस्थता (Voluntary Mediation)
(3) ऐच्छिक समझौता एव पच फैसला (Compulsory Conciliation & Arbitration)
(4) अनिवार्य समझौता एव पच फैसला (Compulsory Conciliation & Arbitration)

अब हम इन विभिन्न तरीको का वर्णन करेंगे।

1 अन्वेषण (Investigation)—किसी भी औद्योगिक विवाद के उत्पन्न होने पर उसकी जाँच के लिए सरकार न्यायालय अथवा बोर्ड की नियुक्ति करती है। इस प्रकार की जाँच सरकार द्वारा अनिवार्य रूप से की जा सकती है। इसमे दोनो पक्ष—श्रम व मालिक से सहमति लेना जरूरी नही है। ऐच्छिक अन्वेषण (Voluntary Investigation) के अन्तर्गत श्रमिक अथवा प्रबन्धक अथवा दोनो द्वारा इसके लिए आवेदन किया जाता है और इस आवेदन के आधार पर जब अन्वेषण किया जाता है तो यह ऐच्छिक अन्वेषण कहलाता है। इस प्रकार के अन्वेषण से प्रत्यक्ष रूप से औद्योगिक झगडो का निपटारा नही होता है। इससे विवाद के कारणो का पता चलता है और इन तथ्यो को जनता के समक्ष रख दिया जाता है। इस प्रकार की व्यवस्था से विवादो को अप्रत्यक्ष रूप से निपटाने मे सहायता मिलती है। इस प्रकार के अन्वेषण के अन्तर्गत सरकारी आदेश द्वारा हड़ताल अथवा तालाबन्दी पर रोक लगा दी जाती है। अन्वेषण के समय नियोजको पर भी रोजगार की दशाओ मे परिवर्तन न करने की रोक लगा दी जाती है। लेकिन इस प्रणाली या तरीके से विवादो को निपटाने मे महत्त्वपूर्ण सफलता नही मिलती। इसका प्रमुख कारण श्रमिको और मालिको द्वारा अन्वेषण प्रतिवेदन (Investigation Report) के प्रति उदासीन रहना है। जनता भी इस प्रकार के विवादो की ओर बहुत कम ध्यान देती है। यह तरीका औद्योगिक झगडो के निपटाने मे उन देशो मे से ही अधिक सफल हुआ है जहाँ पर सभी सुशिक्षित हैं, मालिक व श्रमिक अपने अधिकारो तथा कर्त्तव्यो को समझते हैं और जनता की उपेक्षा नही करते।

2 मध्यस्थता (Mediation)—औद्योगिक विवादो के निपटाने का यह दूसरा तरीका है। श्रमिको तथा मालिको के बीच झगडा समाप्त करने के लिए किसी मध्यस्थ का सहारा लेना पडता है। यह मध्यस्थ बाहरी व्यक्ति होता है तथा इसकी नियुक्ति दोनो पक्षो की सहमति से की जाती है। यह मध्यस्थ सरकारी अथवा गैर-सरकारी व्यक्ति हो सकता है। मध्यस्थता एक प्रकार से दोनों पक्षों के झगडे मे

1 *Bhagoliwal, T N* Economics of Labour & Social Welfare, p 111.

हस्तक्षेप करने वाला निष्क्रिय कार्य है। एक मध्यस्थ दोनो पक्षो की एक दूत के रूप मे सेवा करता है। वह दोनो पक्षो पर किसी भी अपनी इच्छा तथा निर्णय को नही थोपता है। वह दोनो पक्षो मे समझौता कराने का प्रयास करता है लेकिन अन्तिम निर्णय मध्यस्थ का न होकर दोनो पक्षो का होता है। मध्यस्थ दोनो पक्षो के आपसी झगड़ो को ऐच्छिक समझौते द्वारा निपटाने का प्रयास करता है। मध्यस्थता से दोनो पक्ष एक दूसरे के निकट आते है। इससे उनके सम्बन्ध अच्छे होते हैं और समझौते पर आसानी से पहुँच जाते है।

मध्यस्थ कोई प्रसिद्ध व्यक्ति हो सकता है अथवा सरकारी अथवा गैर-सरकारी बोर्ड भी हो सकता है। मध्यस्थता करने वाले का प्रयास सहानुभूतिपूर्ण तथा कुशलतापूर्ण होना चाहिए। मध्यस्थ का व्यक्तित्व ही दोनो पक्षो को प्रभावित करके आपसी झगडे को निपटाने मे सहायक होता है।

मध्यस्थता ऐच्छिक भी हो सकती है और अनिवार्य भी। ऐच्छिक मध्यस्थता वह स्थिति है जिसके अन्तर्गत किसी औद्योगिक विवाद के निपटारे हेतु किसी मध्यस्थ के लिए श्रमिक अथवा नियोक्ता अथवा दोनो पक्ष आवेदन करते हैं और उसकी मध्यस्थता से विवाद को निपटाने मे मदद मिल जाती है तथा दोनो पक्षो मे समझौता सम्पन्न हो जाता है। अनिवार्य मध्यस्थता (Compulsory Mediation) के अन्तर्गत किसी औद्योगिक विवाद के निपटारे हेतु सरकार किसी बाहरी व्यक्ति, सरकारी बोर्ड अथवा गैर-सरकारी बोर्ड को नियुक्त करती है।

3. ऐच्छिक समझौता एवं पचफैसला (*Voluntary Conciliation and Arbitration*)—प्रो आर. सी सक्सेना के अनुसार, "समझौता एव पच फैसला दोनो औद्योगिक विवादो को शान्तिपूर्ण ढग से निपटाने के मान्यता प्राप्त राजकीय हस्तक्षेप के तरीके हैं।"[1] ये दोनो तरीके एक दूसरे से जुडे हुए है।

समझौता औद्योगिक विवाद निपटाने की वह प्रक्रिया (Process) है जिसके अन्तर्गत मालिको और श्रमिको के प्रतिनिधियो को एक तीसरे व्यक्ति या व्यक्ति समूहो के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। इसके अन्तर्गत समझौता अधिकारी (Conciliation Officer) नियुक्त किया जाता है। यह दोनो पक्षो को आपसी विचार-विमर्श करवा कर समझौता करवाने का प्रयास करता है। समझौताकर्त्ता (Conciliator) मतभेद वाले विषयो पर सलाह और सुझाव देने का कार्य करता है।

समझौता भी दो प्रकार का होता है—ऐच्छिक समझौता (Voluntary Conciliation) एव अनिवार्य समझौता (*Compulsory Conciliation*)। ऐच्छिक समझौता औद्योगिक विवाद निपटाने की वह विधि है जिसके अन्तर्गत दोनो पक्ष (श्रमिक एव मालिक) आपसी झगडे को ऐच्छिक रूप से किसी बाहरी व्यक्ति द्वारा निपटाने के लिए सहमत हो जाते है। उन पर किसी प्रकार का दबाव नही होता है। ऐच्छिक समझौते के अन्तर्गत समझौता अधिकारी का निर्णय लागू करना जरूरी नहीं होता है। वह सरकार द्वारा ऐच्छिक समझौते की व्यवस्था करता है। प्रत्येक

1 *Saxena, R C*, Labour Problems & Social Welfare p 200

श्रमनिरीक्षक (Labour Inspector) अपने क्षेत्र का समझौता अधिकारी (Conciliation Officer) होता है तथा श्रम आयुक्त (Labour Commissioner) सम्पूर्ण राज्य का समझौता अधिकारी (Conciliation Officer) होता है। यह सुविधा राज्य सरकारो तथा केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदान की जाती है। कभी-कभी समझौता बोर्ड (Board of Conciliation) भी नियुक्त किया जाता है जिससे श्रमिको व मालिको (विवादग्रस्त उद्योग के) के बराबर-बराबर प्रतिनिधि एक स्वतन्त्र सभापति की अध्यक्षता मे कार्य करते हैं। समझौते मे सम्बन्धित पक्षो का व्यवहार महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। दोनो पक्षो की सौदाकारी शक्ति द्वारा समझौता कर लिया जाता है। प्रभावपूर्ण समझौता व्यवस्था के लिए यह आवश्यक है कि इसकी व्यवस्था स्थायी आधार पर की जाए जिसमे कि दोनो पक्षो मे सन्तुलन बनाये रखा जा सके। समझौते के द्वारा दोनो पक्षो के विरोधी विचारो को दूर किया जा सकता है। दोनो पक्ष ठडे दिमाग से समझौता अधिकारी की सहायता से समझौता करने मे सफल हो जाते है। समझौता अधिकारी का व्यक्तित्व भी दोनो पक्षो के बीच विवाद के निपटाने मे महत्त्वपूर्ण योगदान देता है। समझौता अधिकारी का कार्य एक प्रशासनिक कार्य है न कि न्यायिक (Judicial)। अत समझौता अधिकारी की सद्भावना और उसकी सहन शक्ति ही दोनो पक्षो को समझौता कराने मे मदद करती है। ऐच्छिक समझौता एक मध्यस्थ, व्यक्तिगत, सामूहिक, सामाजिक एव सरकारी व्यवस्था के माध्यम से करवाया जा सकता है। समझौता अधिकारी को महत्त्वपूर्ण अधिकार होने पर भी प्रभावपूर्ण समझौता होता है। यदि दोनो पक्षो को यह मालूम है कि समझौता अधिकारी को न्यायाधिकरण (Adjudication) का भी अधिकार है तो वे समझौते के लिए कुछ सीमा तक सहमत हो जाते है। भारत में यह अनुभव रहा है कि जिन समझौता अधिकारियो को न्यायाधिकरण के अधिकार हैं वहाँ समझौता प्रभावपूर्ण रहा है। इसके साथ ही स्थाई समझौता व्यवस्था भी प्रभावपूर्ण समझौते कराने मे सफल रही है। इस प्रकार समझौते द्वारा दोनो पक्षो को एक दूसरे के निकट लाकर समझौता करवाकर औद्योगिक विवाद को निपटा दिया जाता है।

श्री वी अग्निहोत्री के अनुसार, 'उन विवादो मे जहाँ औद्योगिक विवादों के निपटाने मे समझौता और मध्यस्थ असफल रहे है, पच फैसला (Arbitration) अगला वाँछनीय या उचित कदम है। पच फैसला दो या अधिक पक्षो के बीच एक निष्पक्ष सस्था के द्वारा दिए गए निर्णय से विवादो का निपटारा करता है, जो कि दोनो पक्षो पर लागू होता है।'[1] पचनिर्णय (Arbitration) के अन्तर्गत पचनिर्णयकर्त्ता (Arbitrator) दोनो पक्षो के दृष्टिकोण के अतिरिक्त अपना दृष्टिकोण भी लागू करता है। इसके अन्तर्गत न्याय प्रदान किया जाता है। यह एक न्यायिक (Judicial) कार्य है। पचनिर्णय के अन्तर्गत विवाद का अन्तिम रूप से निपटारा किया जाता है। पच फैसले के अन्तर्गत किसी तीसरे पक्ष द्वारा विवादग्रस्त विषय पर निर्णय या अवार्ड प्राप्त करना होता है। यह दोनो पक्षो के झगडे को निपटाने

1 *Agnihotri, V* : Industrial Relations in India, p 130

का एक निष्पक्ष तरीका है। इसमे निष्पक्ष पच द्वारा किया गया निर्णय दोनो पक्षो पर लागू किया जाता है। पच फैसला या पचनिर्णय (Arbitration) भी दो प्रकार का होता है—ऐच्छिक पच फैसला (Voluntary Arbitration) एव अनिवार्य पचफैसला (Compulsory Arbitration)।

ऐच्छिक पच फैसले के अन्तर्गत दोनो पक्ष ऐच्छिक रूप से विवाद को निपटाने हेतु एक निष्पक्ष पच के पास प्रस्तुत कर देते हैं। इसके अन्तर्गत दिए गए निर्णय को मानना ऐच्छिक भी है और अनिवार्य भी है। उदाहरणार्थ इगलैण्ड मे औद्योगिक न्यायालयो (Industrial Courts) द्वारा दिए गए निर्णय (Awards) सिफारिश मात्र हैं और उनको कानूनी रूप से लागू नही किया जा सकता है। जहाँ पर दोनो पक्ष पचफैसला करवाते हैं वहाँ निर्णय एक शक्ति का रूप बन जाता है। जिन देशो मे श्रमिको और मालिको पर जनता का अधिक प्रभाव नही है, उन देशो मे औद्योगिक शान्ति बनाए रखने तथा औद्योगिक विवादो के निपटाने हेतु ऐच्छिक पचनिर्णय के अन्तर्गत दिए गए अवार्ड को भी अनिवार्य रूप से लागू करना चाहिए।

औद्योगिक विवादो के निपटाने मे ऐच्छिक व्यवस्था—ऐच्छिक समझौता और पचनिर्णय—केवल विकसित देशो जैसे अमेरिका और इगलैण्ड मे ही सफल रही है क्योकि वहाँ दोनो पक्षो मे एकता एव विश्वास है तथा दोनो पक्षो के सगठन भी सुदृढ व सुसगठित हैं। लेकिन एक विकासशील देश (जैसे भारत) म इस प्रकार की व्यवस्था ने औद्योगिक शान्ति बनाए रखने मे महत्त्वपूर्ण योगदान नही दिया है।

4 अनिवार्य समझौता एव पच फैसला (Compulsory Conciliation and Arbitration)—*जब औद्योगिक विवादो को निपटाने मे ऐच्छिक समझौता एव* पचनिर्णय (Arbitration) असफल रहते है तो फिर अनिवार्य समझौता एव पच फैसले का सहारा लिया जाता है। औद्योगिक विवाद निपटाने की यह व्यवस्था उन देशो मे *अपनाई जाती है जहा सुदृढ एव सुसगठित श्रमसघो का अभाव है। श्रमिको की* सामूहिक सौदाकारी दुर्बल होती है। इसके परिणामस्वरूप आधुनिक कल्याणकारी सरकार द्वारा श्रमिको की कार्य एव आवास की दशाओ का कानून द्वारा नियमन *किया जाता है और विवादो के निपटारे के लिए अनिवार्य समझौता एव पचनिर्णय* की व्यवस्था की जाती है।

अनिवार्य समझौते (Compulsory Conciliation) के अन्तर्गत विवाद को अनिवार्य रूप से किसी समझौता अधिकारी अथवा बोर्ड (*Conciliation Officer* or Board) के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। जो भी निर्णय अनिवार्य समझौते के अन्तर्गत होता है वह अनिवार्य रूप से लागू किया जाता है। उदाहरणार्थ भारत मे जनोपयोगी सेवाओ (Public utility services) मे समझौता आदेशात्मक (Mandatory) होता है जिसे दोनो पक्षो द्वारा लागू करना आवश्यक है लेकिन अन्य मामलो मे यह ऐच्छिक है। समझौता अधिकारी अथवा समझौता मण्डल (Board of Conciliation) को जितने अधिक अधिकार प्राप्त होंगे उतने से समझौते प्रभावपूर्ण ढग से लागू किए जा सकेंगे। समझौता अधिकारी सरकारी अधिकारी होते हैं जिनको

विशेष मामलो मे समझौता कराने का अधिकार होता है । कई बार सरकार औद्योगिक विवादो को निपटाने के लिए समझौता मण्डल (Board of Conciliation) भी नियुक्त करती है । इस मण्डल म दोनो विवाद सम्बन्धी पक्षो के बराबर प्रतिनिधि होते हैं तथा एक स्वतन्त्र व्यक्ति इसका सभापति होता है । अत समझौते पद्धति की सफलता के लिए समझौता अधिकारी अथवा समझौता मण्डल सम्बन्धी व्यवस्था स्थायी बताई जाए और उसे अधिक महत्वपूर्ण अधिकार दिए जाएँ ।

अनिवार्य पचफैसला (Compulsory Arbitration) औद्योगिक विवाद निपटाने की वह पद्धति है जिसके अन्तर्गत दोनो पक्षो से सम्बन्धित झगडे को अनिवार्य रूप से एक बाहरी निष्पक्ष पच के निर्णय के आधार पर निपटाया जाता है । पच फैसला अनिवार्य रूप से लागू किया जाता है । जब सरकार किसी विवाद को अनिवार्य रूप से किसी पचनिर्णयकर्त्ता (Arbitrator) द्वारा निपटाने का कार्य करती है और उसके द्वारा दिए गए निर्णय अथवा अवार्ड लागू करती है तो उसे न्यायाधिकरण (Adjudication) कहते हैं । यह उस समय अपनाया जाता है जब ऐच्छिक तरीको द्वारा औद्योगिक विवादो को निपटाया नही जा सकता है । यह देश की सकटकालीन स्थिति मे तथा औद्योगिक सम्बन्धो द्वारा जनता के असन्तुष्ट होने पर अनिवार्य पचफैसला अपनाया जाता है । अनिवार्य पचफैसले के समय श्रमिको के हड़ताल करने के अधिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाता है । जब जनोपयोगी सेवाओ मे औद्योगिक विवाद उत्पन्न हो जाता है तो इस विवाद को पचनिर्णय के लिए दे दिया जाता है तथा हड़ताल व तालाबन्दी पर रोक लगा दी जाती है । इसके साथ ही श्रमिको के रोजगार की सुरक्षा मजदूरी और उचित कार्य की दशाओ आदि के विषय मे विशेष स्थान प्रदान किया जाता है । अनिवार्य पचनिर्णय के अन्तर्गत गवाहो की अनिवार्य उपस्थिति, अन्वेषण के अनिवार्य अधिकार, अवार्ड का अनिवार्य क्रियान्वयन तथा अवार्ड के उल्लघन पर दण्ड का प्रावधान आदि आते हैं । इस पद्धति के अन्तर्गत श्रमिक का भाग्य निर्णयकर्त्ता के हाथो मे होता है । प्रो आर. सी सक्सेना के अनुसार, "सामाजिक न्याय की सफलता पूर्ण रूप से अधिकारी की योग्यता, सद्भावना और दूरदर्शिता पर निर्भर करती है जो कि राज्य मे प्राप्त होती है ।"[1] अमेरिकी श्रम सगम (American Federation of Labour or A F L.) ने अमेरिकी अनिवार्य पच फैसला विधान के सदर्भ मे लिखा है कि, "अमेरिकी श्रमिको को कभी भी दास नही बनने दिया जाएगा । अनिवार्य पचनिर्णय से औद्योगिक विवाद प्रोत्साहित एव जारी रहेगे । यह स्वराज्य मे कमी करता है, यह श्रमिको और मालिको से उनकी समस्याओ के निवारण के उत्तरदायित्व को छीनता है, यह सामूहिक सौदाकारी को समाप्त करता है और इसके स्थान पर मुकदमावाजी को स्थान देता है ।" श्रम शाही आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour) ने भी अनिवार्य पचफैसले का विरोध किया है । अनिवार्य पचफैसले से औद्योगिक शान्ति बनाए रखने मे मदद नही मिलेगी । उद्योग से ही विवाद को निपटाने का

1 *Saxena, R. C* Labour Problems & Social Security, p 211

कार्य करना चाहिए। वाहरी व्यक्ति द्वारा विवाद पर पचनिर्णय प्राप्त करने से श्रमिको मे असन्तोष बढता है। अनिवार्य पचफैसले के अन्तर्गत बिना दोनो पक्षो की अनुमति के विवाद को निपटाने का प्रयास किया जाता है तथा सामूहिक सौदाकारी को कोई स्थान नही दिया जाता है। भारत जैसे विकासशील देश मे जहाँ औद्योगिक शान्ति बनाए रखने हेतु सामूहिक सौदाकारी को काम मे नही लाया जाता है क्योकि इस देश मे सामूहिक सौदाकारी की सफलता की पूर्व दशाएँ (Prerequisites of Collective Bargaining) विद्यमान नही है। अत अनिवार्य पचफैसले को काम मे लाया जाता है। पचनिर्णयकर्ता (Arbitrator) योग्य, निष्पक्ष एव दूरदर्शी होना चाहिए क्योकि दोनो पक्षो का भाग्य उसके हाथो मे होता है।

अत औद्योगिक शान्ति बनाए रखने तथा अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए यह आवश्यक है कि दोनो पक्षो द्वारा औद्योगिक विवादो का निपटारा सामूहिक सौदाकारी, पारस्परिक एकता एव सद्भावना के द्वारा किया जाना चाहिए। बिना सरकारी हस्तक्षेप के विवाद निपटाना सवश्रेष्ठ है। अनिवार्य व्यवस्था तभी लागू की जाए जब सभी अन्य तरीके असफल हो जाएँ। डॉ कुमार के अनुसार, 'पचनिर्णय को न्यूनतम करने की परिस्थितियो को तैयार करने के अतिरिक्त सबसे प्रमुख समस्या यह है कि दोनो पक्षो को यह पूर्ण विश्वास हो कि उन्हे निष्पक्ष व्यवस्था प्राप्त होगी और इसके अवार्ड को प्रभावपूर्ण ढग से क्रियान्वित किया जाएगा।'[1]

श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धों मे सरकार की भूमिका
(Role of Govt. in Union Management Relations)

प्रारम्भिक काल में श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो मे सरकार का महत्व बहुत कम था। सरकार का कार्य देश की बाह्य आक्रमणो से रक्षा करना तथा आन्तरिक कानूनी व्यवस्था बनाए रखना था। औद्योगीकरण के प्रारम्भ मे जो श्रम विधान थे वे मालिको के पक्ष मे थे। श्रमिक हड़ताल नही करते थे। उन पर कानूनी कार्यवाही द्वारा रोक लगाई हुई थी। इसके परिणामस्वरूप नियोजको द्वारा श्रमिको को नौकरी लगाने व हटाने का दृष्टिकोण (Hire & Fire Attitude Towards Labour) अपनाया जाता था। श्रमिको के कार्य के घण्टे अधिक कम मजदूरी तथा खराब कार्य की दशाएँ एव आवास व्यवस्था थी। श्रमिको का शोषण किया जाता था। लेकिन आधुनिक सरकार एक कल्याणकारी सरकार होने के कारण इसके अधिकारो एव उत्तरदायित्वो मे वृद्धि हो गई है। अब सरकार का कार्य न केवल बाह्य आक्रमणो से रक्षा करना तथा आन्तरिक कानून व्यवस्था ही बनाए रखना है, बल्कि श्रमिक वर्ग, समाज, उपभोक्ता तथा राष्ट्रीय हितो की रक्षा करना है। सरकार यह देखती है कि उपभोक्ताओ व समाज को उचित कीमतो पर वस्तुएँ तथा सेवाएँ सुलभ हो। श्रमिक वर्ग के हितो की रक्षा के लिए सरकार उसके कार्य के घण्टो, छुट्टियो, कार्य एव आवास की दशाएँ, शिक्षा, मनोरजन आदि सभी श्रम-

1 *Kumar C B* Development of Industrial Relations in India, p 75 76

कल्याणकारी कार्यों के लिए विधान बनाती है जिससे श्रमिकों के शोषण को समाप्त किया जावे। अब श्रमिको को अपने सगठन बनाने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है इससे पजीकृत श्रम सघ के अधिकारियो की दीवानी तथा फौजदारी मामलो से छूट मिल जाती है।

सरकार द्वारा न केवल श्रमिको एव मालिको के सम्बन्धो का नियमन करके उनके बीच मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करने हैं बल्कि उपभोक्ता, समाज तथा राष्ट्रीय हितो को भी पूरा करना होता है। उपभोक्ता और समाज सभी को सस्ती कीमत पर वस्तुएँ सुलभ हो जाती है। औद्योगीकरण के लिए औद्योगिक शान्ति होना आवश्यक है। औद्योगिक शान्ति स्थापित करने के लिए सरकार को श्रमिको और मालिको के बीच पारस्परिक एकता एव मधुर सम्बन्ध उत्पन्न करने पडते हैं। हडतालो तथा तालाबन्दी द्वारा उत्पन्न होने वाले हानिकारक तत्त्वो पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है। श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो मे सरकारी हस्तक्षेप आवश्यक है, लेकिन यह हस्तक्षेप की मात्रा विभिन्न बातो पर निर्भर करती है। इस विषय मे प्रो. भगोलीवाल ने लिखा है कि, "राज्य हस्तक्षेप की मात्रा आर्थिक विकास की अवस्था द्वारा निर्धारित होती है। अधिकारो की प्राप्ति हेतु कार्य को रोकने के दुष्परिणाम एक विकसित अर्थव्यवस्था मे इतने अधिक नही होते जितने कि एक विकासशील अर्थव्यवस्था मे।"[1]

हाल ही मे केन्द्रीय सरकार द्वारा बागान उद्योग मे श्रमिको की कार्यकुशलता, उत्पादकता तथा उद्योग की पूर्ण क्षमता का उपभोग करने हेतु एक द्विपक्षीय समिति की स्थापना गई की है जो कि श्रमिको एव प्रबन्धको के प्रतिनिधियो की बराबर बराबर सख्या से मिलकर बनेगी। राष्ट्रीय शीर्षस्थ सगठन (National Appex Body) ने भी मुख उद्योगो मे राष्ट्रीय स्तर पर औद्योगिक समितियो की स्थापना करने का निर्णय लिया है। ये समितियाँ सम्बन्धित उद्योग की विभिन्न समस्याओ जैसे—ले-ऑफ, छँटनी, धीमे कार्य करने, घेराव, हडताल आदि पर अपनी सिफारिशे देने के अतिरिक्त प्रबन्ध मे श्रमिको को भागीदारी देने की योजना को भी क्रियान्वित करेगी। इससे औद्योगिक सम्बन्धो मे सरकार की महत्त्वपूर्ण भूमिका की झलक देखने को मिलती है।[2] विकसित देशो मे जैसे अमेरिका और इगलैण्ड मे श्रमिको एव प्रबन्धको के सुदृढ सगठन हैं तथा सामूहिक सौदाकारी के द्वारा औद्योगिक विवादो को निपटा लिया जाता है। लेकिन विकासशील देशो मे श्रमिको व मालिको के श्रम सगठनो की शक्ति बराबर की नही है क्योकि श्रमिक सगठन कमजोर है तथा मालिको के सगठन सुदृढ है। इससे श्रमिकों का शोषण किया जाता है। इस शोषण से श्रमिकों को बचाने के लिए श्रम सम्बन्धो के नियमन की व्यवस्था कर रखी है। श्रम विधान के अन्तर्गत सरकार ने श्रम व मालिको के सम्बन्धो के नियमन का प्रावधान कर रखा है। जब भी दोनो मे विवाद उत्पन्न होता है, सरकार इस व्यवस्था के माध्यम से औद्योगिक सम्बन्धो मे हस्तक्षेप करती है। भारत जैसे विकासशील देश मे औद्योगिक

1 *Bhagoliwal, T N* Economics of Labour & Social Welfare, p 132
2 Hindustan Times, March 18, 1976

सम्बन्धो के नियमन मे राज्य ने एक महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। यहां सरकारी हस्तक्षेप प्रत्यक्ष है। प्रारम्भ मे हस्तक्षेप व्यावसायिक हितो की रक्षा के लिए किया जाता था। बाद मे समाज सुधारको तथा जनता के दबाव के परिणामस्वरूप श्रमिको की आर्थिक कठिनाइयो से रक्षा हेतु सरकारी हस्तक्षेप किया गया। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के तीव्र आर्थिक विकास हेतु आर्थिक नियोजन के मार्ग को चुना गया है और इसके लिए औद्योगिक शान्ति परमावश्यक है। इसलिए सरकार द्वारा श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो का नियमन बडे पैमाने पर किया जाता है। वर्तमान समय मे आपातस्थिति की घोषणा के पश्चात् सरकारी आर्थिक नीतियो को प्रभावपूर्ण ढग से लागू करने मे श्रम सघो तथा प्रबन्ध सगठनो द्वारा सरकार को सहयोग देने का निश्चय किया गया है।

आपातकालीन स्थिति की घोषणा तथा नवीन आर्थिक कार्यक्रम के क्रियान्वयन हेतु सरकार को देश के औद्योगिक सम्बन्धो मे सुधार के महत्त्वपूर्ण अवसर उपलब्ध कर दिए हैं। श्रमिको को शोषण से मुक्ति दिलाकर उनमे अपने कार्य के प्रति रुचि और जिम्मेदारी का प्राण फूंका जा रहा है। यही कारण है कि आपात स्थिति की घोषणा के पूर्व की तुलना मे अब श्रमिक काफी बदल गया है। वह एक अनुशासित, मेहनती एव उत्तरदायी वर्ग बन गया है। अब वह हमारे देश के तीव्र आर्थिक विकास मे क्रियाशील योगदान दे सकेगा।

4ли

8 इंग्लैण्ड और अमेरिका में औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था, उद्योग में संयुक्त परामर्श

(Machinery of Industrial Relations in the U K. and U S A ; Joint Consultation in Industry)

प्रो श्रीवास्तव के अनुसार, "श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध एक व्यापक कार्य है और इसके अन्तर्गत औद्योगिक सम्बन्ध और मानवीय सम्बन्धो की समस्या दोनो को शामिल किया जाता है ।"[1] औद्योगिक सम्बन्धो द्वारा श्रम सघो तथा मालिको द्वारा सामूहिक समझौतो अथवा कानून द्वारा नियमन का कार्य किया जाता है । अब हम इगलैण्ड तथा अमेरिका म औद्योगिक सम्बन्धो को नियमन करने की व्यवस्था का अध्ययन करेंगे ।

इंग्लैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्ध
(Industrial Relations in U. K.)

इगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्धो का ढाँचा ऐच्छिक आधार पर तैयार किया गया है तथा यह श्रमिको और मालिको के सगठनो पर पूर्ण रूप से आधारित है । वहाँ दोनो पक्षो के सगठन सुदृढ हैं । दोनो पक्षो के सगठन आपस मे मिलबैठकर विचार-विमर्श करके रोजगार तथा कार्य की दशाओ से सम्बन्धित विवादो का निपटारा कर लेते है । जिन व्यवसायो मे दोनो पक्षो के ऐच्छिक सगठनो का अभाव है वहाँ श्रमिको की कार्य की दशाओ तथा मजदूरी आदि का नियमन राज्य द्वारा निर्मित विधान के माध्यम से होता है ।

प्रो सक्सेना के अनुसार, "इगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्धो की महत्त्वपूर्ण विशेषता सामूहिक सौदाकारी का विकास है, जिसे कि उद्योग की आवश्यकताओ के लिए सबसे अच्छे तरीके के रूप मे ग्रहण किया गया है ।"[2] सन् 1851 तक इगलैण्ड मे सामूहिक सौदाकारी के क्षेत्र मे कोई प्रगति नही हुई क्योकि श्रम सघो का विकास नही हुआ था । लेकिन इसके पश्चात् श्रम सघो का गठन किया जाने लगा तथा इसके परिणामस्वरूप सामूहिक सौदाकारी को भी प्रोत्साहन दिया जाने लगा । आज स्थिति यह है कि इगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्धो को निर्धारित करने का महत्त्वपूर्ण साधन सामूहिक सौदाकारी हो गया है ।

1 *Shrivastava, G L* Collective Bargaining & Labour Management Relations in India, p 101
2 *Saxena, R C* Labour Problems & Social Welfare, p 218

इगलैण्ड मे सामूहिक सौदाकारी का अर्थ वह व्यवस्था है जिसके अन्तर्गत सौदाकारी द्वारा श्रमिक की मजदूरी और रोजगार की दशाओ का निपटारा किया जाता है। इस निपटारे को दोनो पक्षो के सगठनो द्वारा एक समझौते का रूप दिया जाता है।

इगलैण्ड मे औद्योगिक विवादो को रोकने और निपटाने के लिए तीन तरीको को काम मे लाया जाता है। इनमे समझौता (Conciliation), पचनिर्णय (Arbitration) और अन्वेषण (Investigation) हैं। इन तीनो को कानूनी तौर पर लागू करने के लिए समझौता अधिनियम, 1896 (Conciliation Act of 1896) और औद्योगिक न्यायालय अधिनियम, 1919 (Industrial Courts Act of 1919) के अन्तर्गत विभिन्न अधिकार दिए गए हैं। समझौता अधिनियम के अन्तर्गत ऐच्छिक समझौता द्वारा समझौता करवाया जाता है और इसके लिए व्यापार मण्डल (Board of Trade) बनाया गया है जिसे विवादो के निपटारे हेतु अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये सभी अधिकार अब श्रम मत्रालय के अधीन कर दिए गए हैं। समझौते का उद्देश्य औद्योगिक विवादो के निपटारे मे सहायता करना है। चाहे इससे कार्य रुक जाए। इसके साथ ही औद्योगिक सम्बन्ध अधिकारी (Industrial Relations Officer) की भी नियुक्ति की जाती है। यह अधिकारी भी श्रमिको और मालिको के बीच समझौता कराने हेतु अपनी सेवाएँ प्रदान करता है।

इन दोनो अधिनियमो के अन्तर्गत किसी भी औद्योगिक विवाद को निपटाने हेतु ऐच्छिक पचनिर्णय (Voluntary Arbitration) का भी प्रावधान रखा गया है। किसी भी पक्ष द्वारा असहमत होने पर पचनिर्णय करवाने का इनके अन्तर्गत कोई प्रावधान नही है। यदि समझौता तथा पचनिर्णय द्वारा औद्योगिक विवाद नहीं निपटाया जाता है। तो विवाद को किसी न्यायालय को सुपुर्द किया जा सकता है। यद्यपि इस प्रकार का अवार्ड के पीछे कानूनी बधन नही है। जब अवार्ड स्वीकार कर लिया जाता है तो यह रोजगार की एक आवश्यक शर्त बन जाता है। इस अधिनियम (औद्योगिक न्यायालय अधिनियम, 1919) के अन्तर्गत सरकार विवादो के पचनिर्णय हेतु औद्योगिक न्यायालयो, एक या अधिक व्यक्तियो को सरकार द्वारा नियुक्ति अथवा पचनिर्णय मण्डल को सौंप सकती है।

इगलैण्ड मे पचनिर्णय दोनो पक्षो की सहमति पर निर्भर करता है। एक भी पक्ष की सहमति न होने पर पचनिर्णय नही हो सकता। फिर भी युद्धकालीन परिस्थितियो मे सरकार द्वारा इस प्रकार के पचनिर्णय को अनिवार्य कर दिया जाता है। औद्योगिक न्यायालय अधिनियम 1919 के अन्तर्गत एक स्थायी औद्योगिक न्यायालय (Standing Industrial Court) की स्थापना की गई है। इसमे श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधियो तथा स्वतन्त्र व्यक्तियो को श्रम मत्रालय द्वारा नामजद किया जाता है। दोनों पक्षो की सहमति पर ही विवाद को न्यायालय को सौंपा जाता है।

इंगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्धो की मुख्य विशेषताए
(Main Characteristics of Industrial Relations in U. K.)

इगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्ध ऐच्छिक आधार पर आधारित हैं। हाल ही के वर्षों मे इगलैण्ड से हडतालें तथा तालाबन्दी कम हुई हैं। अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने के उद्देश्य से इगलैण्ड मे निम्न व्यवस्था की गई है—

1 सयुक्त ऐच्छिक समझौते (Joint Voluntary Agreements)—सभी उद्योगो मे रोजगार की शर्तों को श्रमिक एव प्रबन्धको के सगठनो द्वारा पारस्परिक बातचीत से निश्चय किया जाता है और सयुक्त समझौता कर लिया जाता है। यह दोनो पक्षो की सामूहिक सौदाकारी शक्ति के माध्यम से तय किया जाता है। इससे सामूहिक समझौतो को प्रोत्साहन मिलता है। इन सामूहिक समझौतो मे मजदूरी, छुट्टियाँ, कार्य करने एव रोजगार की दशाएँ आदि सम्मिलित की जाती है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत दोनो पक्ष औद्योगिक शान्ति बनाए रखने का प्रयास करते हैं। इगलैण्ड मे श्रम सघ एव मालिको के सगठन सुदृढ हैं। इसलिए सामूहिक समझौते के माध्यम से सयुक्त ऐच्छिक समझौते सम्पन्न हो जाते हैं।

2 सयुक्त औद्योगिक परिषदें (Joint Industrial Councils)—इगलैण्ड के कई उद्योगो मे सयुक्त औद्योगिक परिषदें बनाई गई हैं। इनके द्वारा रोजगार की दशाएँ एव शर्तों का निर्धारण सयुक्त विचार-विमर्श से होता है। इन परिषदो द्वारा यह कार्य राष्ट्रीय स्तर पर किया जाता है। इन परिषदो के कार्यों मे विभिन्नता पायी जाती है। कुछ परिषदें मजदूरी नियमन सम्बन्धी कार्य करती हैं तथा अन्य परिषदें उद्योग से सम्बन्धित अन्य हितो के सम्बन्ध मे कार्य करती हैं। इसी प्रकार की व्यवस्था जिला तथा कारखाना स्तरो पर भी की गई है। जिला स्तर पर जिला सयुक्त औद्योगिक परिषदो (District Joint Industrial Councils) की स्थापना की गई है। यदि कारखाना व जिला स्तरीय सस्थाएँ इन समस्याओ को हल करने मे असफल होती है तो राष्ट्रीय स्तर की व्यवस्था द्वारा इनको हल किया जाता है।

3 कार्य समितियां (Works Committees)—इस प्रकार की समितियो की स्थापना श्रमिको एव मालिको मे एकता एव पारस्परिक मामलो को निपटाने हेतु की जाती है। इनमे श्रमिको और मालिको के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होते हैं। इगलैण्ड म औद्योगिक सम्बन्धो मे इस प्रकार की समितियाँ महत्त्वपूर्ण कार्य करती हैं। इन समितियो द्वारा श्रमिको के कल्याण कार्य तथा सुरक्षा आदि की व्यवस्था भी की जाती हैं।

4. मजदूरी परिषद् और मजदूरी मण्डल (Wage Councils and Wage Boards)—इगलैण्ड के कुछ उद्योगो मे मजदूरी परिषदें तथा वेतन मण्डलो की स्थापना की गई है। इनमे श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधि तथा कुछ स्वतन्त्र व्यक्तियो को शामिल किया जाता है। यह व्यवस्था उन उद्योगो मे की गई है जहाँ पर श्रम-सगठन दुर्बल हैं। इन परिषदो और मण्डलो को यह अधिकार है कि सम्बन्धित उद्योग के श्रमिको हेतु न्यूनतम शर्तों सम्बन्धी प्रस्ताव श्रम मन्त्रालय को

भेजे जा सकते हैं। सम्बन्धित मन्त्री को यह अधिकार है कि वह कानून द्वारा इन न्यूनतम दशाओं तथा शर्तों को उद्योग मे लागू कर दे। श्रमिकों को शोषण से बचाने के लिए इस प्रकार की व्यवस्था की गई है तथा इसके लिए समय-समय पर विभिन्न अधिनियम बनाए गए हैं जैसे सन् 1909 का व्यापार मण्डल अधिनियम (Trade Board Act of 1909), सन् 1918 का व्यापार मण्डल अधिनियम, सन् 1938 का मजदूरी अधिनियम, सन् 1945 का मजदूरी परिषद् अधिनियम (Wage Councils Act of 1945), कृषि मजदूरी अधिनियम, 1948 (Agricultural Wages Act of 1948) आदि। इनके द्वारा न्यूनतम मजदूरी तथा कार्य की दशाओं को कानूनी रूप दिया जाता है तथा उनका क्रियान्वयन किया जाता है।

5. समझौता, पचनिर्णय एवं जांच व्यवस्था (Conciliation, Arbitration & Investigation)—उद्योगो मे समझौते हेतु निजी व्यवस्था भी की गई है तथा समझौता अधिनियम, 1896 (Conciliation Act of 1896) और औद्योगिक न्यायालय अधिनियम, 1919 (Industrial Court Act of 1919) के अन्तर्गत समझौते तथा पचनिर्णय की व्यवस्था की गई है।

कुछ उद्योगो मे विवादो को निपटाने हेतु ऐच्छिक समझौता व्यवस्था की गई है। सघर्ष से सम्बन्धित पक्ष अपने झगडे को औद्योगिक न्यायालय (Industrial Court) द्वारा निपटारा कर सकते है। पचनिर्णय मण्डल (Board of Arbitration) की व्यवस्था की गई है। इसमे सम्बन्धित उद्योग के श्रमिको व मालिको के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होते हैं और एक स्वतन्त्र व्यक्ति को श्रममन्त्री द्वारा नामजद किया जाता है। पचनिर्णय के निर्णय (Award) को कानूनी रूप से लागू नहीं किया जा सकता है फिर भी जिन अवार्डों मे दोनो पक्ष सहमत होते है वे अनिवार्य रूप से उन पर लागू किए जाते हैं। जिस विवाद का अवार्ड मण्डल द्वारा दे दिया जाता है वह मण्डल स्वत ही कार्य करना बन्द कर देता है।

6. उद्योग और सरकार के बीच सम्पर्क (Relations between Industry and the Govt.)—इगलैण्ड के औद्योगिक सम्बन्धो की यह विशेषता है कि सरकार दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो से उनके हितो को प्रभावित करने वाले मामलो पर निरन्तर सम्पर्क रखती है। राष्ट्रीय सयुक्त सलाहकार परिषद् (National Joint Advisory Council) के माध्यम से सरकार और दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो द्वारा श्रम मामलो पर विचार करने की व्यवस्था है। इसमे सरकार को दोनो पक्षो के हितो पर सलाह दी जा सकती है।

7. उद्योग मे कारखाना स्तर पर संयुक्त विचार-विमर्श (Joint Consultation in Industry at Factory Level)—इगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्धो को मधुर बनाने हेतु प्रत्येक कारखाने मे सयुक्त विचार-विमर्श करने के लिए समितियाँ बनाई गई है। उत्पादन समितियाँ (Production Committees) बनाई गई हैं जिनमे दोनो पक्षो द्वारा उत्पादन सम्बन्धी मामलो पर विचार-विमर्श होता है जिससे कि उत्पादन सम्बन्धी लक्ष्यो को प्राप्त किया जा सके।

इस प्रकार इगलैण्ड मे औद्योगिक सम्बन्धो की सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ऐच्छिक है। इस देश मे दोनो पक्षो के सगठन सुदृढ है तथा वे एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करते है और आपसी हितो को भी जानते है। अत औद्योगिक सम्बन्धो मे राज्य का हस्तक्षेप यथा सम्भव न्यूनतम है और विवादो को प्रारम्भ मे ही निपटा दिया जाता है।

अमेरिका मे औद्योगिक सम्बन्ध
(Industrial Relations in U.S.A.)

अमेरिका मे हडतालो की सख्या, मानव दिनो की हानि, हडतालो मे सम्मिलित श्रमिको की सख्या आदि से औद्योगिक सम्बन्धो के बारे मे समय समय पर विभिन्न अध्ययन किए गए है। अमेरिका मे हडतालें पुरानी यूनियनो की तुलना म नई यूनियनें अधिक करती हैं। इससे श्रम सघ मान्यता प्राप्त करते है। मान्यता प्राप्त होने पर पारस्परिक उत्तरदायित्वो तथा अधिकारो का एक दूसरे पक्ष द्वारा आदर किया जाता है। इसी प्रकार इस पारस्परिक एकता के माध्यम से शान्तिपूर्ण ढग से झगडो का निपटारा किया जाता है।

सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining)—अमेरिका मे सामूहिक सौदाकारी श्रम सघो का एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके अन्तर्गत दोनो पक्षो के सगठन एक मेज पर बैठकर-सम्बन्धित विवाद पर विचार विमर्श करके उसे एक लिखित करार या समझौते का स्वरूप दे देते है। अमेरिका के श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता रही है जिसमे सयुक्त सहभागिता से मजदूरी और कार्य की दशाओ को निर्धारित किया जाता है। अमेरिका मे सघीय श्रम नीति का एक महत्त्वपूर्ण भाग सामूहिक सौदाकारी का प्रोत्साहन देना है। अमेरिका मे सामूहिक सौदाकारी का इतना महत्त्व है कि इसके अन्तर्गत सैकडो हजारो सस्थान तथा लाखो श्रमिको को शामिल किया गया है। यहाँ तक कि देश के आधारभूत उद्योगो जैसे—कोयला, स्पात, निर्माण, जनोपयोगी सेवाएँ, रेल्वे, सडक आदि सामूहिक सौदाकारी समझौतो के अन्तर्गत आते हैं। सामूहिक सौदाकारी के प्रभावपूर्ण होने के कारण कुल कार्य दिवसो की सख्या तथा हडतालो की अवधि कम हो गई है।

मध्यस्थता एव समझौता (Mediation & Conciliation)—मध्यस्थ बाहरी व्यक्ति होता है जो दोनो पक्षो श्रमिको और प्रबन्धको को किसी विवाद को निपटाने हेतु उनकी मध्यस्थता करता है। वह एक तरह से उन दोनो पक्षो का दूत होता है। वह उनको सुझाव दे सकता है, लेकिन अपना निर्णय नहीं थोप सकता। निर्णय दोनो पक्ष ही मिलकर लेते है और फिर उसे समझौता का रूप देकर क्रियान्वित कर दिया जाता है।

दूसरी ओर समझौते के अन्तर्गत भी बाहरी व्यक्ति ही होता है लेकिन वह अपने विचारो से दोनो पक्षो को प्रभावित करके समझौता करा सकता है। समझौता अधिकारी बाहरी व्यक्ति, अर्द्ध सरकारी या सरकारी व्यक्ति हो सकता है। समझौता ऐच्छिक भी होता है तथा अनिवार्य भी। ऐच्छिक समझौते के अन्तर्गत दिया गया

निर्णय दोनो पक्षो द्वारा मानना आवश्यक नही है। लेकिन अनिवार्य समझौते के अन्तर्गत दिया गया निर्णय अनिवार्य रूप से लागू किया जाता है। समझौता की सफलता समझौता अधिकारी के व्यक्तित्व तथा उसको दिए गए अधिकारो पर निर्भर करती है।

अमेरिका मे विवादो के निपटाने हेतु मध्यस्थता तथा समझौता सम्बन्धी व्यवस्था सरकार द्वारा की जाती है। लेकिन निजी सस्थाओ द्वारा भी यह कार्य किया जा सकता है। अधिकांश औद्योगिक शहरो एव राज्यो मे इस प्रकार की व्यवस्था सघीय मध्यस्थता एव समझौता सेवा (Federal Mediation & Conciliation Service) द्वारा प्रदान की जाती है यह सेवा दोनो पक्षो से निरन्तर सम्पर्क बनाए रखती है तथा किसी भी विवाद मे हस्तक्षेप किया भी जा सकता है और नही भी।

- सघीय मध्यस्थता एव समझौता सेवा ने प्रतिबन्ध मध्यस्थता का कार्यक्रम (Programme of Preventive Mediation) भी अपनाया है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य श्रमिको और प्रबन्धको के बीच पारस्परिक एकता एव विश्वास उत्पन्न करके अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित करने मे महत्त्वपूर्ण योगदान देना है। इसी प्रकार प्रतिबन्ध समझौता (Preventive Conciliation) की व्यवस्था भी है।

अमेरिका मे रेल्वे श्रम अधिनियम, 1926 (Railway Labour Act, 1926) के अन्तर्गत राष्ट्रीय मध्यस्थता मण्डल (National Mediation Board) की स्थापना की गयी है। इस मण्डल मे दो दर्जन मध्यस्थ तथा 3 सदस्य सीनेट की अनुमति से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं।

राष्ट्रीय सकटकालीन विवादो मे टेफ्ट-हार्टले अधिनियम 1947 (Taft-Hartley Act of 1947) के अन्तर्गत यदि राष्ट्रपति को यह मालूम हो जाता है कि देश की सुरक्षा के लिए विवाद खतरनाक है तो उसके लिए जाँच मण्डल नियुक्त किया जाता है।

पचनिर्णय (Arbitration)—जब समझौते तथा मध्यस्थता द्वारा औद्योगिक विवाद का निपटारा नही हो पाता है तो दोनो पक्षो की सहमति से इस विवाद को किसी निष्पक्ष पचनिर्णायक (Arbitrator) को निर्णय हेतु दे दिया जाता है। पचनिर्णय दो प्रकार का होता है—एक ऐच्छिक तथा दूसरा अनिवार्य पचनिर्णय। ऐच्छिक पचनिर्णय के अन्तर्गत दोनो पक्ष स्वेच्छा से किसी विवाद पर पचफैसला प्राप्त करते हैं तथा इसके निर्णय को लागू करना ऐच्छिक होता है। यदि दोनो पक्ष इसमे सहमत हो जाते हैं तो इस निर्णय को अनिवार्य रूप से लागू कर दिया जाता है। अनिवार्य पचनिर्णय के अन्तर्गत दोनो पक्षो द्वारा किसी विवाद का निपटारा अनिवार्य रूप से पचनिर्णय द्वारा करवाना पडता है। इसमे दोनो पक्षो की अनिवार्य गवाही, अनिवार्य उपस्थिति तथा अनिवार्य क्रियान्वयन आदि को सम्मिलित किया जाता है। अमेरिका मे पचनिर्णय सामूहिक सौदाकारी का एक महत्त्वपूर्ण अग बन गया है। किसी भी विवाद या शिकायत का निपटारा ऐच्छिक रूप से पचनिर्णय के अन्तर्गत किया जाता है।

पचनिर्णय की व्यवस्था से विवाद के निपटारे मे काफी देरी तथा लागत लगती है। इसका व्यय दोनो पक्षो द्वारा वहन किया जाता है। फिर भी इससे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धो को सुधारने मे मदद मिलती है। जहाँ तक योग्य एव निष्पक्ष पचनिर्णायक (Arbitrator) का प्रश्न है, इसकी आवश्यकता पडने पर तथा श्रमिको व प्रबन्धको के निवेदन पर पचनिर्णायको की सूची सघीय मध्यस्थ एव समझौता सेवा और राज्य सस्थाओ द्वारा प्रदान की जाती है। इस प्रकार की सूची अमेरिकी पचनिर्णय सघ (American Arbitration Association) द्वारा भी प्राप्त की जा सकती है। अधिकाँश पचनिर्णय सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत किए गए समझौते की शिकायतो के विषय मे किए जाते हैं। मजदूरी सम्बन्धी विषयो पर पचनिर्णय नही किया जाता है क्योकि इसमे समय और व्यय लगता है। मजदूरी के सम्बन्ध मे पचनिर्णय हेतु कोई स्पष्ट सिद्धान्त नही दिए हुए हैं जबकि शिकायतो के सम्बन्ध मे शिकायत निवारण पद्धति के स्पष्ट सिद्धान्त दिए हुए हैं। इस प्रकार अमेरिका मे पचनिर्णय सामूहिक सौदाकारी समझौतो सम्बन्धी शिकायतो के निवारणार्थ बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

सरकार एव श्रम-प्रबन्ध सम्बन्ध (Govt & Labour-Management Relations)—कई कानूनो, न्यायिक निर्णयो और प्रशासनात्मक सस्थाओ द्वारा दिए गए निर्णयो आदि की विद्यमानता के बावजूद भी सघीय एव राज्य सरकारो का श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धो मे महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। सरकार का हस्तक्षेप श्रम मामलो मे न्यूनतम रहा है। श्रम-प्रबन्ध मामलो मे सरकारी सहभागिता के सम्बन्ध मे देश के सविधान मे विवरण दिया गया है। हाल ही के वर्षों मे इस क्षेत्र मे कई परिवर्तन हुए हैं। इस सम्बन्ध मे सरकारी नीति के मुख्य तत्त्व निम्नलिखित हैं[1]—

(1) सगठन की स्वतन्त्रता (Freedom of Association)
(2) सामूहिक रूप से सौदा करने का अधिकार (Right to Collective Bargaining)
(3) स्वतन्त्र सामूहिक सौदाकारी (Free Collective Bargaining)
(4) हडताल का अधिकार (Right to Strike)
(5) सामूहिक सौदाकारी व्यवहारो और पद्धतियो का विकास करना।

इन सभी तत्त्वो के अन्तर्गत अमेरिका मे स्वतन्त्र एव प्रजातन्त्र समाज की व्यवस्था अनुकूल है।

न्यूनतम मजदूरी कानूनो को छोडकर अमेरिकी सरकार का अन्य मजदूरी दरो पर कोई नियन्त्रण नही है। कुछ अपवादो को छोडकर पचनिर्णय अनिवार्य रूप से नहीं पाया जाता है। पचनिर्णायको का चयन दोनो पक्षो द्वारा किया जाता है। मध्यस्थता तथा समझौता की प्रक्रिया भी ऐच्छिक है। अमेरिका मे श्रम-प्रबन्ध सम्बन्धो के समझौतो के अन्तर्गत एक इकाई या बहुत-सी इकाइयाँ अथवा सम्पूर्ण उद्योग भी आ सकता है। सामूहिक सौदाकारी समझौते के अन्तर्गत वे सभी प्रतिनिधि

1 *Bhagoliwal, T N* Economics of Labour & Social Welfare, p 185

जो इसम भाग लेते हैं तथा हस्ताक्षर करते हैं, ग्रात हैं और उन्ही पर यह समझौता लागू किया जाता है। इस प्रकार के समझौतो का पजीयन सरकार द्वारा नही किया जाता है और न ही श्रम तथा नियोजक सरकारी एजेन्सियो के समक्ष कानूनी रूप से बाध्य ही है। श्रम सघ श्रमिको के ऐच्छिक सगठन हैं जिन्हे कार्य करने हेतु किसी प्रकार का लाइसेंस नही लेना पडता है।

श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध टैफ्ट-हार्टले अधिनियम, 1947 (The Labour Management Relations Taft Hartley Act of 1947)—इस अधिनियम का उद्देश्य श्रमिको और मालिको के सम्बन्धो का निर्धारण इन अधिकारो मे किए जाने वाले हस्तक्षेपो पर प्रतिबन्ध श्रमिको के श्रम सघो के प्रति अधिकारो की रक्षा करना और श्रम विवादो से सम्बन्धी जनता के अधिकारो की रक्षा करना आदि हैं। यह अधिनियम उन सस्थानो के कर्मचारियो पर लागू नही होता है जहाँ श्रम विवाद अन्तर राज्य व्यापार को प्रभावित नही करता है तथा वे श्रमिक जो रेल्वे श्रम अधिनियम 1926 के अन्तर्गत आते हैं तथा सरकारी कर्मचारी और कृषि श्रमिको पर भी यह अधिनियम लागू नही होता है। इस अधिनियम का प्रशासन राष्ट्रीय श्रम सम्बन्ध मण्डल (National Labour Relations Board) द्वारा किया जाता है। इसम 5 सदस्य होते हैं जो कि सीनेट की सहमति से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। इस अधिनियम के अन्तगत अनुचित श्रम व्यवहारो (Unfair Labour Practices) पर नियन्त्रण लगाया जाता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिको के सगठन और सामूहिक रूप से सौदा करने के अधिकारो की नियोजक के साथ गारन्टी की जाती है। किसी भी समझौते को रद्द करने अथवा परिवर्तन करने हेतु 60 दिन का नोटिस देना आवश्यश है। राष्टीय श्रम सम्बन्ध मण्डल द्वारा ही सामूहिक समझौतो मे भाग लेने वाले प्रतिनिधियो सामूहिक सौदाकारी के अधिकारो आदि का निर्धारण किया जाता है। श्रम प्रबन्ध रिपोर्टिंग एवं प्रकट करना अधिनियम 1959 (Labour Management Reporting and Disclosure Act of 1959) के अन्तगत राष्ट्रीय सुरक्षा को प्रभावित करने वाले विवादो की स्थिति मे राष्ट्रपति को 80 दिन तक हडताल पर रोक लगाने का अधिकार है।

रेल्वे श्रम अधिनियम 1926 (Railway Labour Act of 1926) के अन्तर्गत रेल, सडक और वायुयान उद्योगो मे औद्योगिक सम्बन्धो के बारे मे सामूहिक समझौने किए जाते हैं। इस अधिनियम का प्रशासन राष्ट्रीय पंचनिर्णय मण्डल (*National Mediation Board*) तथा राष्ट्रीय रेल सडक समायोजन मण्डल (National Rail Road Adjustment Board) द्वारा किया जाता है। प्रथम मण्डल मे 3 सदस्य सीनेट की सहमति से राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाते हैं तथा दूसरे मण्डल मे 36 सदस्य होते हैं जिनमे आधे सदस्य अन्यवाहनो द्वारा तथा शेष आधे सदस्य राष्ट्रीय रेल श्रम सगठनो द्वारा चुने जाते हैं। इसका कार्य शिकायत सम्बन्धी विवादो पर अन्तिम और बन्धनपूर्ण निर्णय किए जाते हैं।

उद्योग में संयुक्त परामर्श
(Joint Consultation in Industry)

इगलैण्ड मे श्रम सहभागिता सयुक्त परामर्श समितियो (Joint Consultation Committees) के माध्यम से अपनाया गया । ह्विटले समिति (Whitley Committee, 1917) तथा द्वितीय महायुद्ध की आवश्यकताओ के आधार पर सयुक्त उत्पादन समितियो (Joint Production Committees) की स्थापना की गई । राष्ट्रीय सयुक्त सलाहकार परिषद् (National Joint Advisory Council) ने प्रत्येक उद्योग मे सयुक्त परामर्श समिति की स्थापना करने की सिफारिश की है । इन समितियो का निर्माण प्रबन्धको और श्रम सघो के समझौते के परिणामस्वरूप किया गया । बडे उद्योगों मे राष्ट्रीय, जिला तथा स्थानीय स्तरो पर सयुक्त परामर्श निकायो की स्थापना की गई है ।

इस प्रकार की सयुक्त परामर्श समितियो मे श्रमिको और प्रबन्धको के प्रतिनिधि शामिल किए जाते हैं । श्रमिको के प्रतिनिधियो का चुनाव गुप्त मतदानो से होता है तथा प्रबन्धको के प्रतिनिधि मुख्य कार्यकारी (Chief Executive) द्वारा नियुक्त किए जाते हैं । इनमे श्रम सघो तथा प्रबन्ध सघो के सदस्य ही इन समितियो के सदस्य बन सकते हैं । इन समितियो का कार्य सामान्य हितो, कल्याण एव स्वास्थ्य सेवाएँ, कार्मिक प्रशिक्षण आदि हैं । सामूहिक सौदाकारी से सम्बन्धी मामलो को इन समितियो के अन्तर्गत नही रखा जाता है । इन समितियो के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन तथा लोकप्रियता प्राप्त कराने हेतु भाषणो, सम्मेलनो आदि का आयोजन किया जाता है । इन समितियो के प्रतिनिधि औद्योगिक सम्बन्धो को समझने तथा श्रम समस्याओ को निम्न स्तर पर हल करने का प्रयास करते हैं । इससे दोनो पक्षो मे पारस्परिक एकता और विश्वास उत्पन्न करके श्रम सम्बन्धो को मधुर बनाते है ।

लेकिन सयुक्त परामर्श समितियो को पूर्ण रूप से सफलता नही मिल पायी है क्योंकि प्रबन्धक इन्हें अपने अधिकारो का हनन समझते हैं तथा श्रमिको के प्रतिनिधियो ने इसे अपनी शक्ति प्रदर्शन का साधन माना है । इन समितियो को क्रियान्वयन के अधिकार नही दिए गए है जिसके परिणामस्वरूप श्रमिको मे असन्तोष व्याप्त है । सार्वजनिक क्षेत्र मे इन समितियो का गठन दायित्वपूर्ण है जबकि निजी क्षेत्र मे भी इनकी प्रगति राष्ट्रीयकृत उद्योगो के समान ही है ।

---

9 भारत में 1956 से औद्योगिक विवाद, भारत में औद्योगिक सम्बन्धों की विद्यमान व्यवस्था का मूल्यांकन, भारत में समझौता और पंचनिर्णय कार्यप्रणाली का एक आलोचनात्मक अध्ययन

(Industrial Disputes in India since 1956, Evaluation of existing machinery of industrial relations in India, A critical study of the working of conciliation and arbitration in India)

प्रारम्भिक अवस्था मे भारतीय श्रमिको की आर्थिक स्थिति कमजोर थी। श्रमिक सगठनो के अभाव मे मालिको द्वारा उनका शोषण किया जाता था। जो भी श्रम कानून थे वे पूँजीपतियो के पक्ष मे थे। अत श्रमिक सगठित नही होने से उनकी सौदाकारी शक्ति दुर्बल थी। वे अपनी माँगो को हडताल रूपी शस्त्र से पूरी करवाने मे असमर्थ थे क्योकि श्रम सगठनो पर प्रतिबन्ध थे। परन्तु कुछ समय पश्चात् परिस्थितियो मे परिवर्तन हुआ और इनके परिणामस्वरूप श्रमिको द्वारा हडतालें की जाने लगी और औद्योगिक विवाद उत्पन्न होने लगे।

भारत मे औद्योगिक विवादो का इतिहास प्रथम महायुद्ध (1914-18) से आरम्भ होता है। कीमतो मे निरन्तर वृद्धि तथा मालिकों को बडी मात्रा मे लाभ प्राप्त हो रहा था, लेकिन श्रमिको की मजदूरी कम होने से उन्हे आर्थिक कठिनाइयो का सामना करना पड रहा था। सन् 1917 की रूसी क्रान्ति तथा सन् 1919 मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) की स्थापना एव श्रमिको मे अपने अधिकारो के प्रति जागृति उत्पन्न होने के कारण कई उद्योगो मे कार्य की दशाओ मे सुधार, महँगाइ भत्तो मे वृद्धि आदि अपनी हितवर्द्धक बातो को लेकर श्रमिको ने सन् 1919मे कई स्थानो पर हडतालें की। अनुमान है कि इसी वर्ष मे कुल मिलाकर 16 हडतालें हुई। सन् 1918-19 व 1920 मे बम्बई मे दो सामान्य हडतालें हुई जिनमे 16000 श्रमिको ने भाग लिया और ये क्रमश 6 सप्ताह तथा एक महीने तक चली। राजनीतिक आन्दोलन के साथ-साथ भी कई उद्योगो मे हडतालें हुई। सन् 1921 से

सन् 1928 की अवधि मे हुई हडतालो से होने वाली हानि को निम्न सारणी से देखा जा सकता है[2]—

सन् 1921-28 मे भारत मे श्रम अशान्ति

वर्ष	काय रोक की सख्या	भाग लेने वाले श्रमिकों की सख्या	काय दिवसो की हानि की सख्या (लाखो मे)
1921	396	600	7 0
1922	278	435	4 0
1923	213	301	5 1
1924	133	312	8 1
1925	134	270	12 6
1926	128	187	1 1
1927	129	131	2 0
1928	203	507	31 6

सन् 1929–39 मे औद्योगिक विवाद (Industrial Disputes During 1929-39)—सन् 1929 मे बम्बई की सूती मिलो मे एक हडताल छ माह तक चली । इस हडताल का महत्त्व दो कारणो से था । एक ओर भारतीय श्रम सघो पर साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव पडा तथा दूसरी ओर इसके परिणामस्वरूप औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1929 (Trade Disputes Act of 1929) पास किया गया । सन 1929 के बाद के वर्षों मे हडतालो की सख्या मे गिरावट आई । इसका कारण सन 1929 का अधिनियम तथा शाही श्रम आयोग, 1929 की नियुक्ति करना था । सन् 1937-39 मे भी काफी हडतालें हुई ।

सन् 1940-45 मे औद्योगिक विवाद—दूसरे महायुद्ध मे मुद्रास्फीति के कारण श्रमिको की मजदूरी तथा महँगाई मे कम वृद्धि हुई तथा पूँजीपतियो ने काफी लाभ कमाया । इसके परिणामस्वरूप श्रमिको ने अपनी आर्थिक कठिनाइयो से परेशान होकर कई उद्योगो मे हडतालें की । सन् 1940 मे बम्बई की सूती वस्त्र मिलो मे हडताल हुई । फिर भी युद्धकालीन विवादो की सख्या कम होने के कारण औद्योगिक विवादो को भारतीय रक्षा नियम के अन्तर्गत निपटाया गया ।

भारत मे औद्योगिक विवाद, 1929-1945[2]—इस अवधि मे औद्योगिक विवादो से सम्बन्धी अग्रांकित आँकडे थे—

1 *Bhagoliwal T N* Economics of Labour and Social Welfare, p 125
2 Ibid, p 126

वर्ष	कार्य रुकावटो की सख्या	शामिल श्रमिको की सख्या (हजारो मे)	कार्य दिवसो की हानि सख्या (लाखों मे)
1929	141	531	12·2
1930	148	196	2 3
1931	166	203	2 4
1932	118	128	1·9
1933	146	165	2 2
1934	159	221	4 8
1935	145	114	1 0
1936	157	169	2 4
1937	379	648	9 0
1938	399	401	9·2
1939	406	409	5 0
1940	322	453	7 6
1941	359	291	3 3
1942	694	773	5 7
1943	716	525	2 3
1944	658	550	3 4
1945	820	741	3 3

सन् 1946-50 मे औद्योगिक विवाद—सन् 1945 मे दूसरा महायुद्ध समाप्त हो गया। सन् 1946 एव 1947 मे डाक एव तार विभागो तथा स्वतन्त्रता प्राप्ति के परिणामस्वरूप हडतालो की सख्या मे वृद्धि हुई। सन् 1950 मे सूती वस्त्र उद्योग मे एक बडी हडताल हुई। इसमे 2 लाख श्रमिको ने भाग लिया तथा 94 लाख मानव दिनो की हानि उठानी पडी।

सन् 1951 के उपरान्त औद्योगिक विवाद[1]—सन् 1951 मे भारतीय सरकार द्वारा आर्थिक नियोजन का मार्ग चुना और औद्योगिक विवाद, 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के परिणामस्वरूप हडतालो की सख्या मे कमी आई। सन् 1952 मे सबसे महत्त्वपूर्ण हडताल चीनी उद्योग मे लगे श्रमिको द्वारा न्यूनतम मजदूरी बढवाने के लिए हुई। फिर सन् 1955 मे कानपुर के वस्त्र उद्योग के श्रमिको ने आधुनिकीकरण (Modernisation) के विरोध मे हडताल की। यह हडताल 80 दिन चली और इसमे लगभग 45 हजार श्रमिको ने भाग लिया। सन् 1956 मे बम्बई अहमदाबाद तथा कलकत्ता राज्यो का पुनर्गठन होने के परिणामस्वरूप हडतालें हुई। सन् 1957 मे प बगाल और बिहार की खानो मे श्रमिको ने हडतालें की। सन् 1958 मे मैसूर की कपिला सूती वस्त्र मिल, पोतो मे गोदी कर्मचारियो, जमशेदपुर

1. *Bhagoliwal, T N* : Economics of Labour and Social Welfare, p 128.

के स्थान के कारखाने, बोकारो स्थान कारखाने एवं केरल के बागानों में श्रमिकों द्वारा हड़तालें की गई। हिन्दुस्तान वायुयान उद्योग, बंगलोर में हड़ताल और तालाबंदी हुई। सन् 1959 में कोलार की स्वर्ण खानों में हड़ताल व तालाबन्दी, सन् 1960 में कलकत्ते की साइन्टिफिक इण्डिया ग्लास, कलकत्ते की कोहिनूर रबड़ वर्क्स, बम्बई की हिन्द साइकिल्स आदि में हड़तालें हुई। सन् 1961 में ब्रिटानिया इन्जीनियरिंग क लि टीटागढ़, अशोक निर्माण प्राइवेट लि पूना, सहारनपुर की सूती वस्त्र मिल, विमको (WIMCO) मद्रास में हड़तालें हुई। सन् 1962 1963 एवं 1964 में क्रमश हड़तालों की संख्या 1491, 1471 व 2151 थी। सन् 1966-67 में हड़तालों की संख्या बढ़कर लगभग 2500 तक पहुँच गई। सन् 1966 का वर्ष भयंकर हड़तालों व तालाबन्दियों का वर्ष रहा। सन् 1967 में सामान्य चुनाव में राजनीतिक हितों की पूर्ति हेतु हड़तालें हुई। सन् 1969 में स्टेट बैंक के प्रबन्ध कर्मचारियों द्वारा 11 दिन की हड़ताल हुई। सन् 1972 में हड़ताल और तालाबन्दियों के कारण 179 2 लाख श्रम दिनों की हानि हुई। सन् 1972 म हवाई यातायात, रक्षा उत्पादन और बीमा उद्योग म कोई बड़ी हड़ताल नहीं हुई। सन् 1969 और 1970 को छोड़कर 1967-72 की अवधि में सबसे अधिक श्रम दिनों की हानि सन् 1972 में हुई। सन् 1973 में 2924 औद्योगिक विवाद थे जिनमें 21,02,268 श्रमिकों ने भाग लिया था और 1,77,92,231 मानव दिनों की हानि हुई थी।[1]

मई 1974 म रेल्वे की 20 दिन की लम्बी हड़ताल चली जिसके परिणामस्वरूप समस्त देश की अर्थव्यवस्था पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसी प्रकार जनवरी-फरवरी 1975 में कलकत्ता के भारतीय खाद्य निगम (FCI) के कर्मचारियों जिनकी संख्या 6000 थी ने हड़ताल की। इसी वर्ष जूट उद्योग में भी हड़तालें हुई।[2]

मई सन् 1974 की रेल्वे हड़ताल से न केवल रेल्वे उद्योग को ही हानि उठानी पड़ी, बल्कि अन्य उद्योगों तथा अर्थव्यवस्था के विभिन्न अंगों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसका विवरण निम्न प्रकार से दिया जा सकता है[3]—

1 निर्माणकारी वस्तुओं जैसे स्पात उत्पादन तथा चीनी का स्टॉक इकट्ठा हो गया। इसके परिणामस्वरूप इनकी कीमतें कम पूर्ति वाले स्थानों मे बढ़ गई।

2 निर्माण उद्योग (Construction Industry) पर विपरीत प्रभाव पड़ा। राजस्थान तथा गुजरात से सीमेन्ट की पूर्ति इस हड़ताल के कारण से नहीं हुई। इसके परिणामस्वरूप सीमेंट के एक थैले के नियन्त्रित मूल्य 13 रु की तुलना में यह बम्बई और मद्रास मे क्रमश 50 व 36 रु प्रति थैला हो गई।

3. यातायात व्यय म भी वृद्धि हुई और इसके परिणामस्वरूप ट्रक यातायात में 40% की वृद्धि हो गई। बम्बई की बैस्ट (BEST) कम्पनी को लम्बे यातायात

1 India—A Reference Annual, 1975, p 294
2-3 *B R. Patil* , An article on 'Economics of Strikes and Lockouts-Collective Bargaining.' Economic Times, July 2-3, 1975

की सुविधाएं प्रदान करने के कारण प्रतिदिन 40 हजार रुपये की हानि उठानी पड़ी। इसके साथ ही श्रमिको को हडताल पर न जाने हेतु बोनस दिया जाता था।

4. बन्दरगाहो तथा रेल्वे स्टेशनो पर माल जमा हो गया। जनवरी फरवरी 1975 मे कलकत्ता के भारतीय खाद्य निगम मे 6000 हजार कर्मचारियो की हडताल के कारण 21 फरवरी, 1975 को 573 डिब्बे भरे हुए ही खडे रहे।

5 व्यापार, वाणिज्य एव बैंकिंग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा। 60 से 70 हजार सूती वस्त्र की गाँठें इकट्ठी हो गई। बैंकिंग के कार्य के घण्टे कम हो गए क्योकि कर्मचारियो को कार्य कम मिला। रिजर्व बैंक के चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियो द्वारा भी हडताल की जाने से बैंकिंग कार्य मे बाधा उपस्थित हुई। बम्बई मे 400 करोड रुपये के चैक बिना विनिमय के ही पडे रहे।

6 सूती वस्त्र उद्योग पर भी प्रतिकूल प्रभाव पडा। बम्बई मे अतिरिक्त स्टॉक म वृद्धि हो गई। अहमदाबाद की सूती मिलो का उत्पादन क्षमता कम करने के कारण 4 करोड रुपये की हानि हुई।

7 स्पात उद्योग मे भी गर्म धातु का बनाना बन्द कर दिया गया क्योकि यातायात की असुविधा उत्पन्न हो गई थी।

8 कोयला खान उद्योग के अन्तर्गत रानीगज की खानो मे 3 5 मिलियन टन कोयला बेकार ही पडा रहा।

9 इस हडताल के कारण कोयले की पूर्ति कई कारखानो को बन्द हो गई। इससे गुजरात, हरियाणा, कर्नाटक की सीमेण्ट फैक्ट्रीज बन्द हो गई और सैकडो श्रमिको को ले ऑफ कर दिया गया।

हडतालो तथा तालाबदियो के परिणामस्वरूप दूसरे उद्योगो को लाभ हो सकता है यदि वे प्रतिस्पर्द्धी उद्योग है तथा जनता द्वारा उनका उपयोग किया जाता है। भारतीय वायु यातायात की हडताल से रेल को लाभ हुआ तथा रेल्वे हडताल से भारतीय वायु यातायात तथा सडक यातायात को लाभ हुआ। ट्रक तथा टैक्सी के मालिको को काफी लाभ हुआ।

हडताल व तालाबन्दी से सम्पूर्ण अर्थव्यवस्था को हानि भी होती है और जनता को असुविधाओ का सामना करना पडता है। यदि हडतालें बार बार तथा लम्बी चलती हैं और इससे कई उद्योगो पर प्रभाव पडता हैं एव कोई निपटारा नही किया जाता है, तो काफी हानि उठानी होती है।

20 दिन की रेल की हडताल के परिणामस्वरूप लगभग 500 करोड रुपयो की विभिन्न रूपो मे हानि हुई। इससे उत्पादन, यातायात व्यय, निर्यात मे कमी, हडताल विरोधी कार्यो पर व्यय आदि रूपो मे हानि हुई।

सन् 1974 के वर्ष मे 31 मिलियन मानव दिनो की हानि हुई। सबसे अधिक हानि सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो (रेल्वे) से हुई। इसी अवधि मे निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्रो मे मजदूरी, भत्ते एव बोनस सम्बन्धी विवादो के कारण 12 मिलियन से भी अधिक मानव दिनो की हानि हुई।[1]

1 *B R Patil* Economics of Strikes & Lockouts', EconomicTimes, July 2-3, 1975

रेल्वे हडताल से मजदूरी की हानि 25 करोड रुपये के बराबर हुई। वायु यातायात के कर्मचारियो को तालाबन्दी के परिणामस्वरूप 5 से 10 लाख रुपयो की प्रतिदिन मजदूरी के रूप मे हानि हुई। इसी प्रकार जूट उद्योग की हडताल (जनवरी-फरवरी, 1975) के कारण 53 लाख रुपये मजदूरी की हानि हुई। इस प्रकार श्रमिको, मालिको, जनता एव राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को हडतालो तथा तालाबन्दियो से विभिन्न रूपो मे असुविधाएँ तथा हानि उठानी पडती है।

सन् 1947 से सन् 1971 तक हुए विभिन्न औद्योगिक विवादो के सम्बन्धित आँकडे निम्न प्रकार से है—

वर्ष	सघर्षों की सख्या	भाग लेने वाले श्रमिको की सख्या (हजार मे)	मानव दिनो की हानि (लाख मे)
1946	1629	1961	12·7
1947	1811	1840	15·6
1948	1259	1059	7·8
1949	920	685	6·6
1950	814	719	12·8
1951	1071	691	3·8
1952	963	809	3·3
1953	772	467	3·4
1954	840	477	3·3
1955	1166	528	5·6
1956	1203	715	6·9
1957	1630	889	6·4
1958	1524	929	7·7
1959	1531	694	5·6
1960	1583	986	6·5
1961	1357	512	4·9
1962	1491	705	6·1
1963	1471	563	3·2
1964	2151	1002	7·7
1965	1835	991	6·4
1966	2556	1410	13·8
1967	21815	1490	17·1
1968	2477	1252	13·8
1970	2889	1827	20·5
1971	2137	1226	16·5
1974	—	—	31·0
26 जून, 1975 के बाद	Nil	Nil	Nil

Source—(1) *Saxena R C* Labour Problems & Social Security, pp 502-505
(2) *B R Patil* An article on 'Economics of Strikes and Lockout' Economic Times, July 2-3, 1975

सन् 1968 मे विभिन्न प्रान्तो जैसे आन्ध्र प्रदेश, बिहार केरल, मध्य प्रदेश, मैसूर (कर्नाटक), उडीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और प बगाल मे घेराव हुए। इन घेरावो के परिणामस्वरूप श्रम दिनो की हानि हुई। इस वर्ष कुल घेराव 56, सम्मिलित श्रमिको की सख्या 8847, मानव दिनो की हानि 8967, और इससे उत्पादन की हानि 13 10,600 रु के बराबर थी।[1] इन औद्योगिक विवादो के उत्पन्न होने के कई कारण हैं।

श्री अग्निहोत्री के अनुसार औद्योगिक विवाद रोजगार की दशाओ अथवा इन दशाओ पर समझौता करने, निर्धारण करने, परिवर्तन करने आदि मामलो पर पाए जाने वाले मतभेदो के कारण उत्पन्न होते हैं। औद्योगिक विवादो के अन्य कारण कीमतो के पीछे मजदूर रहने अथवा श्रमिको की आवास एव कार्य की अच्छी दशाओ की इच्छा और नियोजको द्वारा इन मांगो की पूर्ति न करने के कारण है जिससे श्रमिक धीरे कार्य करते हैं अथवा हडताल कर देते है।[2] सन् 1947 के पश्चात् मजदूरी से सम्बन्धित मांगो से उत्पन्न झगडो के प्रतिशत मे कमी आई। इसका प्रमुख कारण औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के अन्तर्गत स्थापित औद्योगिक प्राधिकरणो (Industrial Tribunals) द्वारा मजदूरी दोहराना था। सन् 1956 मे अधिक विवादो का कारण छँटनी थी। इसके पश्चात् छँटनी का प्रतिशत घटकर सन् 1967 मे 23 6 हो गया। विभिन्न कारणो से उत्पन्न विवादो के प्रतिशत सन् 1958–68 के बीच निम्न प्रकार रहे[3]—

औद्योगिक विवादो के कारण (प्रतिशत मे)

वर्ष	काम रोको की सख्या	सम्मिलित श्रमिक (लाखो मे)	मजदूरी	बोनस	कार्मिक व छँटनी	छुट्टियाँ व घट	अन्य
1958	1524	9 28	30 5	11 5	33 0	3 2	21 8
1959	1531	6 93	27 1	10 3	29 1	3 7	29 8
1960	1583	9 86	37 1	10 5	24 7	2 4	25 3
1961	1357	5 11	30 4	6 9	29 3	3 0	30 4
1962	1491	7 05	30 2	12 3	25 2	0 7	31 6
1963	1471	5 63	27 8	10 0	25 9	4 6	31 7
1964	2151	10 02	34 9	7 9	27 4	2 0	27 8
1965	1835	9 91	33 5	9 9	27 3	2 5	26 8
1966	2556	14 10	35 8	13 2	25 3	2 4	23 3
1967	2815	14 90	39 9	10 9	23 6	1 0	24 6
1968	2776	16 69	38 4	9 4	19 3	1 9	22 1

1 *Agnihotri, V* Industrial Relations in India p 167
2 Ibid, p 157
3 Ibid, p 164

औद्योगिक विवादो का कारणो के आधार पर प्रतिशत निम्न प्रकार है[1]—

कारण	*1961*	*1966*	*1970*	*1971*	*1972*
मजदूरी और भत्ते	30 4	35 8	37 1	34 3	31 8
बोनस	6 9	13 2	10 6	14 1	8 4
सेवीवर्गीय व छँटनी	29 3	25 3	15 6	23 0	24 2
अवकाश एव कार्य के घण्टे	3 0	2 4	2 1	1 4	1 4
अनुशासनहीनता	—	—	3 8	3 6	5 1
अन्य	*30 4*	*23 3*	*20 8*	*23 6*	*29 1*
योग	100 0	100 0	100 0	100 0	100 0
कुल विवादो की सख्या	1357	2556	2752	3243	2924

उपरोक्त तालिका से निम्न निष्कर्ष निकलते हैं—

(1) औद्योगिक विवादो का प्रमुख कारण मजदूरी और भत्ते हैं। इसके पश्चात् कर्मचारियो की छँटनी आदि के कारण भी विवाद उत्पन्न हो जाते हैं।

(2) अवकाश एव कार्य के घण्टे के कारण उत्पन्न विवादो के प्रतिशत मे कमी आई है क्योकि काय मे घण्टे एव अवकाश सम्बन्धी प्रावधानो का कठोरता से नियमन किया जाने लगा है।

(3) कुल विवादो की सख्या 1961 से 1971 तक बढी है और 1972 मे यह कम हुई है और अब तो आपातकालीन स्थिति की घोषणा का अनुकूल प्रभाव पडने से सख्या शून्य हो गई है।

भारत मे औद्योगिक विवादो के उत्पन्न होने के दो प्रमुख कारण हैं—

(i) **आर्थिक कारण (Economic Causes)**—इनका सम्बन्ध श्रमिकों की आर्थिक स्थिति से है। इसके अन्तर्गत मजदूरी, बोनस का भुगतान महँगाई भत्ता, कार्य एव रोजगार की दशाएँ कार्य के घण्टे *जॉबर एव सुपरवाइजरो का दुर्व्यवहार,* गलत ढग से नौकरी से निकालना, छुट्टियाँ एव अवकाश (वेतन सहित) अवार्ड के लागू करने मे देरी आदि कारण आते हैं। इन कारणो से श्रमिक हडताल करते हैं। इन्हे आन्तरिक कारण कहते हैं।

(ii) **गैर-आर्थिक कारण (Non-Economic Causes)**—इनका सम्बन्ध उद्योग से न होकर अन्य कारणो से होता है, जैसे राजनीतिक उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु की गई हडताल। स्वतन्त्रता के पूर्व कई हडताले स्वाधीनता आन्दोलन के सहयोग देने के लिए भी की गई।

1 Pocket Book of Labour Statistics 1974 p 62

सन् 1961 से औद्योगिक विवादो की सख्या, श्रमिको की सख्या तथा मानव दिनो की हानि को निम्न सारणी से देखा जा सकता है[1]—

	1961	1966	1971	1972	1973
विवादो की सख्या	1357	2556	2752	3243	2924
श्रमिको की सख्या (000)	512	1410	1615	1737	2102
मानव दिनो की हानि (000)	4919	13846	16545	20544	17972

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि तृतीय पचवर्षीय योजना काल (1961-66) मे विवादो की सख्या मे लगभग दुगुनी वृद्धि हुई। श्रमिको की सख्या मे $2\frac{1}{2}$ गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई है तथा मानव दिनो की क्षति भी इतनी ही हुई है। इसके प्रमुख कारण सूखा, पाकिस्तान व चीन से लडाई, कीमतो मे निरन्तर वृद्धि आदि रहे हैं। तीसरी योजना के पश्चात् भी यह वृद्धि का क्रम जारी रहा। लेकिन 1973 मे विवादो की सख्या, श्रमिको की सख्या एव मानव दिनो की हानि मे गिरावट आई है क्योकि अच्छा मानसून तथा सरकार द्वारा आवश्यकताओ के मूल्यो पर नियन्त्रण आदि कारण रहे हैं। 26 जून, 1975 के पश्चात् इस दिशा मे और अच्छी सफलता मिली है। मुद्रा स्फीति विश्व व्यापी प्रवृत्ति होने के बावजूद भी सरकार द्वारा इस पर पूर्ण नियन्त्रण हुआ है तथा आवश्यक वस्तुओ के भाव निरन्तर गिर रहे हैं जिससे सामान्य नागरिक को राहत मिली है। इस असाधारण सफलता को भारत के इतिहास मे स्वर्ण अक्षरो से लिखा जाएगा।

क्षेत्रो के अनुसार विवाद (Disputes by Sectors)—सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र के उद्योगो मे सन् 1961 से 1972 तक उत्पन्न विवादो की सख्या, श्रमिको की सख्या और श्रम दिनो की हानि निम्न प्रकार रही है[2]—

	1961	1966	1970	1971	1972
(अ) सार्वजनिक क्षेत्र					
विवादो की सख्या	—	345	446	385	538
श्रमिको की सख्या (000)	—	240	439	364	416
मानव दिनो की हानि (000)	212	1277	2062	2253	3346
(ब) निजी क्षेत्र					
विवादो की सख्या	—	2211	2443	2367	2705
श्रमिको की सख्या (000)	—	1170	1389	1252	1321
मानव दिनो की हानि (000)	4707	12569	18501	14292	17198

उपरोक्त तालिका से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

1 दोनो ही क्षेत्रो मे औद्योगिक विवादो, श्रमिको की सख्या एव मानव दिनो की हानि मे सन् 1961 से सन् 1970 की अवधि मे उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है। सन् 1971 मे इनमे कमी आई है और फिर सन् 1972 मे वृद्धि हुई है।

1. Pocket Book of Labour Statistics 1974, p 62
2 Ibid, p. 70

2 सार्वजनिक क्षेत्र की तुलना मे निजी क्षेत्र मे औद्योगिक विवादो की सख्या मे सन् 1966 मे 6 गुनी से भी अधिक वृद्धि हुई है लेकिन सन् 1972 मे यह घटकर 5 गुनी से अधिक ही रह गई है। सार्वजनिक क्षेत्र मे सन् 1961 से सन् 1972 की अवधि मे मानव दिनो की हानि मे 16 गुनी वृद्धि हुई है जबकि निजी क्षेत्र मे यह वृद्धि लगभग 4 गुनी ही है। सार्वजनिक क्षेत्र मे श्रमिको की सख्या $1\frac{1}{2}$ से अधिक बढी है जबकि निजी क्षेत्र मे $1\frac{1}{2}$ गुनी ही बढी है।

भारत मे समझौता एवं पचफैसला या पचनिर्णय
(Conciliation & Arbitration in India)

सन् 1929 मे व्यापार विवाद अधिनियम (Trade Disputes Act of 1929) प्रथम बार बनाया गया। इसके पूर्व औद्योगिक विवादो के निपटाने की कोई व्यवस्था नही थी। यह अधिनियम ब्रिटिश औद्योगिक न्यायालय अधिनियम, 1919 (Industrial Courts Act of 1919) तथा ब्रिटिश व्यापार विवाद एव श्रम सघ अधिनियम 1927 (Trade Disputes & Trade Unions Act of 1927) पर आधारित है। इस अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक विवादो को निपटाने के लिए सरकारो द्वारा समझौता मण्डल (Board of Conciliation) तथा जाँच न्यायालय (Court of Enquiry) की स्थापना का प्रावधान है। इसके अन्तर्गत जाँच एव निर्णय की ऐच्छिक व्यवस्था की गई थी।

शाही श्रम आयोग, 1931 की सिफारिश के आधार पर व्यापार विवाद अधिनियम 1929 का सन् 1932 मे सशोधन किया गया। सशोधन के अनुसार समझौता एव जाँच अधिकारी द्वारा गोपनीयता सम्बन्धी सूचना देने पर दण्डनीय नही माना जाएगा।

सन् 1934 मे शाही श्रम आयोग की सिफारिशो को ध्यान मे रखते हुए राज्य सरकारो को हड़तालो को गैर कानूनी घोषित करने सम्बन्धी अधिकार दिए गए और इसके लिए एक बिल पेश किया गया। सन 1938 मे इस बिल को भारतीय व्यापार विवाद अधिनियम (Trade Disputes Act) मे बदल दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐच्छिक समझौते की व्यवस्था की गई। लेकिन अनिवार्य समझौते (Compulsory Conciliation) की कोई व्यवस्था नही की गई। बाद मे भारत रक्षा नियम के अन्तर्गत समझौता मण्डल अथवा जाँच न्यायालय द्वारा विवाद निपटाने की व्यवस्था की गई। सभी जनोपयोगी सेवाओ मे अनिवार्य समझौता कराने तथा समझौता एव पचनिर्णय के समय हडतालो तथा तालाबन्दी को अवैधानिक घोषित करने के अधिकार भी नए अधिनियम मे शामिल करने पर विचार किया गया।

इसके पश्चात् पहले के सभी अधिनियमो को ध्यान मे रखते हुए एक व्यापक अधिनियम जिसे औद्योगिक विवाद अधिनियम (Industrial Disputes Act of 1947) कहते है, सन् 1947 मे पास किया गया।

औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947
(Industrial Disputes Act of 1947)

औद्योगिक विवादो को हल करने तथा मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की स्थापना

करने हेतु मार्च सन् 1947 मे केन्द्रीय सरकार ने यह अधिनियम पास किया। इस अधिनियम मे निम्न प्रावधान रखे गए हैं—

1. श्रम मालिक समितियाँ (Works Committees)—इस अधिनियम के अन्तर्गत सम्बन्धित सरकारो द्वारा प्रत्येक सस्थान या उद्योग जिसमे 100 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, इस प्रकार की समितियाँ बनाना अनिवार्य है। इन समितियो का उद्देश्य उद्योगो मे सयुक्त परामर्श (Joint Consultation) द्वारा श्रमिको एव मालिको के बीच एकता एव अच्छे सम्बन्धो की स्थापना करता है।

2. समझौता एव न्यायाधिकरण व्यवस्था (Conciliation & Adjudication Machinery)—(a) समझौता एवं जाँच न्यायालय (Conciliation & Courts of Enquiry)—इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी विवाद को निपटाने हेतु समझौता अधिकारी की व्यवस्था है तथा विवाद की जाँच करने हेतु जाँच न्यायालय की व्यवस्था की जाती है। जनोपयोगी सेवाओ (Public Utility Services) मे विवाद होने पर सरकार को अनिवार्य रूप से समझौते हेतु प्रस्तुत करना पडता है। इनके अतिरिक्त विवादो पर सरकार स्वय निर्णय कर सकती है। समझौते के अन्तर्गत विवाद पर समझौता होने पर यह अनिवार्य रूप से दोनो पक्षो पर 6 माह तक के लिए लागू कर दिया जाता है। किसी प्रकार का समझौता न होने पर समझौता अधिकारी विवाद से सम्बन्धित असफल प्रतिवेदन (Failure Report) अधिनियम की धारा 12 (4) के अन्तर्गत सरकार को भेज देता है। इस प्रकार विवाद निपटाने हेतु समय निर्धारित कर दिया है। यह समय 14 दिन समझौता अधिकारी हेतु तथा समझौता मण्डल (Board of Conciliation) हेतु 2 माह रखे गए हैं। इस प्रकार के विवाद पर भेजी गई असफलता प्रतिवेदन पर सरकार उचित समझती है तो विवाद को न्यायाधिकरण (Adjudication) हेतु दे सकती है। न्यायाधिकरण मे इस विवाद को न देने पर दोनो पक्षो को इसके कारणो सहित सूचित कर दिया जाता है। यदि दोनो पक्ष अथवा एक पक्ष सरकार को सम्बन्धित विवाद को न्यायाधिकरण हेतु निवेदन करती है और यदि सरकार सन्तुष्ट है तो इस विवाद को न्यायाधिकरण हेतु दे सकती है। यदि किसी सस्थान मे विवाद नही है, लेकिन इसका प्रभाव दूसरे पर पड सकता है और सरकार यह उचित समझती है तो इस विवाद को न्यायाधिकरण हेतु प्रस्तुत कर सकती है।

(b) न्यायाधिकरण (Adjudication)—औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 मे सन् 1956 मे सशोधन करके एक त्रिपक्षीय व्यवस्था की गई। इसके अन्तर्गत विवादो के न्यायाधिकरण हेतु श्रम न्यायालय, औद्योगिक प्राधिकरण (Industrial Tribunal) और राष्ट्रीय प्राधिकरण (National Tribunal) की व्यवस्था की गई है। ये तीनो ही अर्द्ध-न्यायिक निकाएँ (Semi-Judicial Bodies) हैं। सन् 1956 के सशोधन द्वारा अपीलीय प्राधिकरण पद्धति (Appellate Tribunal System) के अन्तर्गत पचनिर्णय सम्बन्धी व्यवस्था को समाप्त कर दिया गया है।

(A) श्रम न्यायालय के अन्तर्गत जिन मामलो पर निर्णय दिया जाता है उनमे नियोजको द्वारा पारित स्थायी आदेशो की वैधानिकता, कर्मचारियो को नौकरी से निकालने, हडताल या तालाबन्दी की वैधानिकता आदि मुख्य हैं। औद्योगिक विवाद अधिनियम की दूसरी अनुसूची के अन्तर्गत इन सभी मामलो को रखा गया है। (B) औद्योगिक प्राधिकरण (Industrial Tribunal) द्वारा मजदूरी कार्य के घण्टे, बोनस, विवेकीकरण (Rationalisation), छँटनी और सस्थानो को बन्द करना आदि मामलो पर निर्णय दिया जाता है। इन मामलो को अधिनियम की तीसरी अनुसूची के तहत रखा गया है। केन्द्रीय सरकार श्रम न्यायालय (Labour Court) और औद्योगिक प्राधिकरण के कार्य क्षेत्रो की सूची मे और विषय जोडकर बढा सकती है। राष्ट्रीय प्राधिकरण (National Tribunal) की स्थापना केवल केन्द्रीय सरकार द्वारा ही की जा सकती है। ऐसा विवाद जिसके कारण बहुत से अन्तर्राज्यीय उद्योग भी प्रभावित होते है, के निपटारे हेतु इसकी स्थापना की जाती है।

श्रम न्यायालय, औद्योगिक एव राष्ट्रीय प्राधिकरणो द्वारा दिए गए निर्णयो (Awards) की अवधि प्रथम बार एक साल के लिए होती है। सम्बन्धित सरकार इसकी उचितता को ध्यान मे रखते हुए इसकी अवधि को एक साल के लिए और बढा सकती है। फिर भी इस प्रकार के निर्णय की अवधि 3 वर्ष से अधिक नही हो सकती। इस प्रकार के अवार्डस अवधि समाप्ति के बाद भी चालू रह सकते है, बशर्ते कि किसी पक्ष द्वारा इसकी समाप्ति हेतु 2 महीने का नोटिस नही दिया गया हो। पचनिर्णय अवार्ड (Arbitration Award) सहित सभी अवार्ड इनके प्रकाशन की तिथि से 30 दिन पश्चात् लागू हो जाते हैं। राष्ट्रीय प्राधिकरण के अवार्ड के क्रियान्वयन की अवधि मे केन्द्रीय सरकार द्वारा परिवर्तन किया जा सकता है। सरकार को अवार्ड को रद्द करने अथवा सशोधन करने का भी अधिकार प्राप्त है। लेकिन यह कार्यवाही अवार्ड के प्रकाशन से 90 दिन के अन्दर अन्दर करनी पडती है। ऐसा न करने पर अवार्ड 30 दिन के पश्चात् ही लागू समझा जाता है।

(c) पचनिर्णय (Arbitration)—औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 के सन् 1956 के सशोधन द्वारा धारा 10(A) के अन्तर्गत किसी भी विवाद को श्रम न्यायालय, औद्योगिक एव राष्ट्रीय प्राधिकरणों के न्यायाधिकरण प्राप्त करने के पूर्व दोनो पक्ष लिखित मे समझौते द्वारा ऐच्छिक पचनिर्णय (Voluntary Arbitration) हेतु प्रस्तुत कर सकती हैं। इस प्रकार के समझौते की एक प्रति सम्बन्धित सरकार और समझौता अधिकारी को प्रषित की जाती है।

यदि कोई भी नियोजक श्रमिक के सम्बन्ध मे कार्यवाही करना चाहता है तथा इससे सम्बन्धी विवाद निर्णय हेतु पडा है तो वह स्थायी आदेशो के तहत उचित कार्यवाही कर सकता है। यदि श्रमिक को नौकरी से निकालना है तो नियोजक श्रमिक को एक महीने की मजदूरी देकर निकाल सकता है तथा इस कार्यवाही हेतु उसे सम्बन्धित व्यवस्था से अनुमति लेना आवश्यक है।

इस सशोधित अधिनियम के अन्तर्गत कोई भी नियोजक किसी भी श्रमिक

की नौकरी की सेवाओ मे तब तक परिवर्तन नही कर सकता जब तक कि 21 दिन का नोटिस नही देता है।

किसी भी प्रकार के समझौते तथा अवार्ड की अनुपालना न करने पर सरकार दोषी को 6 माह की सजा अथवा आर्थिक दण्ड अथवा दोनो कर सकती है। विवाद से सम्बन्धित पक्ष को न्यायालय दण्डित व्यक्ति से प्राप्त राशि मे से मुआवजा देने का आदेश भी दे सकती है। अवैधानिक हडतालो और तालाबन्दी, गोपनीय सूचनाओ को प्रकट कर देना आदि के लिए भी दण्डित किया जा सकता है।

3 हडताल एव तालाबन्दी (Strikes and Lockouts)—किसी औद्योगिक विवाद के बोर्ड या ट्रिब्यूनल के समक्ष होने के पश्चात् सरकार हडतालो तथा तालाबन्दी पर रोक लगा सकती है। कुछ दशाओ मे हडताल तथा तालाबन्दी जनोपयोगी सेवाओ मे अवैधानिक मानी जाती है यदि—(i) उचित नोटिस न देने पर, (ii) समझौता अधिकारी के पास चल रहे विवाद तथा इस पर निर्णय होने के 7 दिन पश्चात् तक किसी भी प्रकार की हडताल व तालाबन्दी करना, (iii) सभी प्रकार की हडतालें व तालाबन्दियाँ अवैधानिक होगी यदि ट्रिब्यूनल के समक्ष विवाद पडा है तथा इस प्रकार की कार्यवाही के 2 माह बाद तक, (iv) किसी समझौते तथा अवार्ड के क्रियान्वयन के समय।

अवैधानिक हडताल व तालाबन्दी को किसी प्रकार की वित्तीय सहायता देना भी गैर-कानूनी है। यदि हडताल तथा तालाबन्दी उचित समय पूर्व नोटिस देकर की जाती है तथा इससे सम्बन्धित विवाद समझौता अधिकारी या मण्डल श्रम न्यायालय तथा प्राधिकरणो के समक्ष प्रस्तुत नही किया गया है तथा न ही किसी प्रकार का अवार्ड लागू कर रखा है।

4 ले ऑफ और छँटनी मुआवजा (Lay-off and Retrenchment Compensation)—सन् 1956 के सशोधन के द्वारा श्रमिको के ले ऑफ तथा छँटनी पर नियोजको द्वारा क्षतिपूर्ति देना आवश्यक है। किसी भी कारखाने, खान अथवा बागानो मे जहां प्रतिदिन श्रमिको की औसत सख्या 50 या इससे अधिक है तथा कार्य रुक-रुक कर अथवा मौसमी प्रकृति का नही है, तो श्रमिको को जिन्होंने एक वर्ष मे 240 दिन कार्य कर लिया है, तो ले ऑफ मुआवजा दिया जाएगा। बदली अथवा आकस्मिक श्रमिको को इस प्रकार का मुआवजा नही दिया जाता है। इस प्रकार का मुआवजा वर्ष मे 45 दिन के लिए मजदूरी तथा महँगाई का आधा दिया जाता है।

इस प्रकार का ले ऑफ मुआवजा निम्न दशाओ मे नही दिया जाएगा—

(i) यदि श्रमिक वैकल्पिक रोजगार स्वीकार करने से इन्कार कर देता है।

(ii) यदि वह प्रतिदिन निश्चित समय मे तथा निश्चित अवधि तक अपने को उपस्थित नही करता है।

(iii) हडताल अथवा धीरे कार्य करने की प्रवृत्ति के कारण ले ऑफ होने पर।

इसी प्रकार ले-ऑफ वाले श्रमिको को छँटनी मुआवजा (Retrenchment Compensation) भी देने का नियोजको का दायित्व है। किसी भी श्रमिक की जो कि एक साल से नौकरी मे है, बिना एक महीने के नोटिस अथवा एक माह की मजदूरी के बराबर मुआवजा दिए बिना छँटनी नही की जा सकती है। इसके साथ ही प्रतिवर्ष की नौकरी के लिए 15 दिन की मजदूरी के बराबर भुगतान करना पड़ता है। यदि इस प्रकार की कार्यवाही निश्चित लिखित तिथि के अनुसार की जाती है तो मुआवजा देने की आवश्यकता है। यदि श्रमिको को किसी व्यवसाय या सस्थान के बन्द करने अथवा एक नियोजक से दूसरे नियोजक को स्वामित्व स्थानान्तरित किए जाने पर नौकरी से हटा दिया जाता है तो इस स्थिति मे मुआवजा न देना उचित है। निर्माण कार्यो वाले उद्योगो मे कार्य समाप्त होने पर छँटनी हेतु मुआवजा नही देना पड़ता है।

गिरि का दृष्टिकोण एवं औद्योगिक सम्बन्ध (Giri's Approach and Industrial Relations)—श्री वी वी गिरि के औद्योगिक सम्बन्धो के विषय मे विचार हमे उनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'भारतीय उद्योग मे श्रम समस्याएँ' (Labour Problems in Indian Industry) मे मिलते हैं। श्री गिरि ने श्रम विवादो को निपटाने हेतु ऐच्छिक समझौता तथा पचनिर्णय के माध्यम से ही सामूहिक सौदाकारी एव पारस्परिक निपटारे पर जोर दिया है। औद्योगिक विवादो को निपटाने मे अनिवार्य न्यायाधिकरण (Compulsory Adjudication) का अन्तिम अस्त्र के रूप मे उपयोग किया जाना चाहिए। जब विवादो के निपटाने के समस्त ऐच्छिक साधन असफल हो जाएँ तब अनिवार्य न्यायाधिकरण का उपयोग किया जाना चाहिए। विवादो को निपटाने हेतु ऐच्छिक समझौता तथा पचनिर्णय का उपयोग किया जाना चाहिए। इससे दोनो पक्षो को एक दूसरे के निकट आने का अवसर मिलता है। इससे सामूहिक सौदाकारी तथा पारस्परिक विचार-विमर्श से एक दूसरे पक्ष मे विश्वास और सद्भावना उत्पन्न होती है तथा इसके परिणामस्वरूप अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो की स्थापना की जा सकती है। न्यायाधिकरण से दोनो पक्षो मे एक दूसरे के विरोध करने की भावना जाग्रत होती है। सामूहिक सौदाकारी को दबा दिया जाता है तथा एक सुदृढ श्रम सघ की स्थापना मे बाधक है। अधिक कानून की उपयोगिता आपसी सद्भावना एव विश्वास उत्पन्न करने मे बाधक रही है। प्रारम्भ मे सामूहिक सौदाकारी द्वारा औद्योगिक विवादो की सख्या अधिक पायी जाती है, लेकिन एक अवस्था के पश्चात् विवादो मे कमी हो जाती है। न्यायाधिकरण का प्रयोग तभी किया जाए जब देश मे कीमतें बढ़ रही हो, उत्पादन मे कमी हो, हड़तालें तथा तालाबन्दी अधिक हो रही हो। श्री गिरि का कथन है, कि अधिक महत्त्व औद्योगिक विवादो को निपटाने मे सामूहिक सौदाकारी को दिया जाना चाहिए। न्यायाधिकरण के स्थान पर सामूहिक सौदाकारी को स्थान दिया जाना चाहिए। लेकिन यह परिवर्तन धीरे-धीरे होना चाहिए क्योंकि सभी सामूहिक सौदाकारी की आवश्यक दशाएँ हमारे देश मे पूर्ण रूप से विकसित नही हुई हैं।

सामूहिक सौदाकारी के लिए हमें भारतीय श्रम संघ अधिनियम, 1926 (Indian Trade Unions Act of 1926) में सशोधन करके श्रम संघो को अनिवार्य मान्यता (Compulsory Recognition) देनी होगी। श्रम सम्बन्धो के नियमन में राज्य नियमन के साथ-साथ सामूहिक सौदाकारी को भी प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

अनिवार्य न्यायाधिकरण (Compulsory Adjudication) को समाप्त करने के लिए दोनो पक्षो को औद्योगिक विवाद निपटाने हेतु आन्तरिक व्यवस्था करनी होगी। इसके लिए श्रम संघो को मान्यता देनी होगी। औद्योगिक विवादो के निपटारे हेतु दोनो पक्षो द्वारा संयुक्त व्यवस्था समझौता मण्डल (Conciliation Board) की स्थापना करके करनी होगी। ऐच्छिक समझौता व्यवस्था के असफल होने पर दोनो पक्षो को ऐच्छिक पंचनिर्णय (Voluntary Arbitration) के माध्यम से विवाद निपटाने चाहिएँ। सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत किसी भी विवाद का निपटारा 'देना एवं लेना सिद्धान्त' (Principle of Give and Take) पर आधारित होना चाहिए। लेकिन हमे आने वाले कुछ वर्षों तक उद्योगो में होने वाले विवादो के लिए राज्य के हस्तक्षेप एवं न्यायाधिकरण पर निर्भर करना पड़ेगा। यदि दोनो ही पक्षो को समृद्धि एवं सम्पन्नता प्राप्त करनी है तो अपने मतभेदो को आपसी सहयोग से समाप्त करना होगा। देश मे औद्योगिक शान्ति की स्थापना मे श्रमिको का सहयोग एवं उनकी उद्योग मे भागीदारी तथा श्रमिको की शिक्षा आदि का महत्त्वपूर्ण योगदान हो सकता है। हमारा देश एक विकासशील देश है तथा इसके द्रुत गति से आर्थिक विकास हेतु औद्योगिक शान्ति परमावश्यक है। हमे आर्थिक नियोजन के लक्ष्यो एवं उद्देश्यो को प्राप्त करने के लिए हड़तालो एवं तालाबन्दी पर रोक लगानी होगी।

भारत मे औद्योगिक विवादों को निपटाने की व्यवस्था (Machinery for the Settlement of Industrial Disputes in India)

भारत जैसे विकासशील देश का तीव्र गति से आर्थिक विकास हेतु औद्योगिक शान्ति परमावश्यक है। औद्योगिक सम्बन्धो को नियमित करने हेतु मानवीय दृष्टिकोण (Human Approach) अपनाया जाना चाहिए। श्रमिको को उद्योग मे भागीदारी का स्थान मिलना चाहिए। इससे श्रमिक अपने प्रयासो से स्वय तथा राष्ट्र की सम्पन्नता मे वृद्धि कर सकेंगे। नियोजको को भी उद्योग की समृद्धि हेतु श्रमिको को महत्त्वपूर्ण अंग समझना चाहिए। उत्पादन मे हुई वृद्धि से उचित पारितोषिक श्रमिको को भी दिया जाना चाहिए। उन्हे मालिक नौकर दृष्टिकोण (Master-Servant Approach) को त्याग देना चाहिए। इसलिए श्रम प्रबन्ध समस्याओ के निपटारे हेतु एक उचित वातावरण की स्थापना करनी चाहिए। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सरकार द्वारा जो व्यवस्था की गई है उसे दो भागों मे विभाजित किया जा सकता है—(1) समझौता अथवा पंचनिर्णय, (2) परामर्श व्यवस्था।

1. समझौता अथवा पचनिर्णय व्यवस्था (Conciliation or Arbitration Machinery)—औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत विवादो के निपटाने हेतु समझौता व्यवस्था का प्रावधान है। समझौता द्वारा निपटारा न होने पर पच निर्णय (Arbitration) एव न्यायाधिकरण (Adjudication) की व्यवस्था भी की गई है। मुख्य श्रम आयुक्त (Chief Labour Commissioner) के आधीन औद्योगिक सम्बन्धो मे एकता को प्रोत्साहन देने हेतु भी व्यवस्था की गई है। इस व्यवस्था के निम्नलिखित कार्य है—

(i) केन्द्रीय सरकार के अधीनस्थ सभी उद्योगो तथा सस्थानो मे होने वाले विवादो को रोकना एव उनका निपटारा करना।

(ii) अवार्ड एव समझौतो का क्रियान्वयन।

(iii) केन्द्रीय सरकार के अधीनस्थ क्षेत्रो मे श्रम कानूनो के प्रशासन की व्यवस्था।

(iv) उचित मजदूरी, केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग, ठेका श्रम नियमन आदि से सम्बन्धी मामलो का क्रियान्वयन।

(v) श्रमिको के चार प्रमुख केन्द्रीय सगठनो की सदस्यता का प्रमाणीकरण करना जिससे कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनो व समितियो मे प्रतिनिधित्व कर सके।

(vi) न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण एव दोहराना।

(vii) श्रम समस्याओ पर श्रम एव रोजगार मत्रालय तथा अन्य मत्रालयो को सलाह देना।

(viii) कोयला एव अभ्रक खानो को छोडकर अन्य केन्द्रीय सस्थानो मे कानूनी तथा गैर-कानूनी कल्याण उपायो को प्रोत्साहन देना।

(ix) केन्द्रीय क्षेत्र मे औद्योगिक विवादो कार्य रुकावटो, मजदूरी आदि से सम्बन्धित आँकडो को एकत्रित करना।

(x) केन्द्रीय क्षेत्र मे अनुशासन सहिता (Code of Discipline) को क्रियान्वित करना।

(xi) औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव, 1962 (Industrial Truce Resolution, 1962) को क्रियान्वित करना।

(xii) केन्द्रीय सरकार तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे कार्यरत श्रम कल्याण अधिकारियो के कार्य का समन्वय करना और उनको दिन-प्रतिदिन के कार्य मे मार्गदर्शन देना।

(xiii) अन्य कार्य करना उदाहरणार्थ—मजदूरी मण्डलो, सयुक्त प्रबन्ध परिषदो के अध्ययन दल द्वारा दी गई सिफारिशो का क्रियान्वयन करना।

केन्द्रीय सरकार के अधीन केन्द्रीय मुख्य श्रम आयुक्त (Chief Labour Commissioner) औद्योगिक सम्बन्धो की व्यवस्था का कार्य देखता है तथा इसके

अधीन प्रादेशिक श्रम आयुक्त (Regional Labour Commissioner) तथा समझौता अधिकारी (Conciliation Officer) कई स्थानो पर औद्योगिक सम्बन्धों मे प्रभावपूर्ण ढग से कार्य करने हेतु नियुक्त किए गए है। समझौता हेतु समझौता अधिकारियो के अतिरिक्त 5 स्थानो पर केन्द्रीय औद्योगिक प्राधिकरणो (बम्बई, कलकत्ता, धनबाद 2, जबलपुर) की सुविधा प्रदान कर रखी है। इनके द्वारा श्रम न्यायालय के अन्तर्गत आने वाले विवादो को भी निपटाया जा सकता है। विभिन्न राज्यो तथा सघीय प्रदेशो मे भी औद्योगिक विवादो को निपटाने हेतु श्रम न्यायालयो तथा औद्योगिक प्राधिकरणो की स्थापना की जा चुकी है।

रेलवे मे स्थायी करार व्यवस्था (Permanent Negotiating Machinery) के माध्यम से श्रमिको एव मालिको मे परस्पर सम्बन्ध रखा जाता है तथा श्रम मतभेदो को समाप्त करने की व्यवस्था सन् 1952 से ही चल रही है। केन्द्रीय क्षेत्र हेतु सयुक्त परामर्श और अनिवार्य पचनिर्णय की योजना को अभी प्रगति करनी है। झगडो को पारस्परिक समझौतो द्वारा निपटाने हेतु सयुक्त परामर्श समिति (Joint Consultative Committee) की स्थापना की गई है।

2. क्रियान्वयन व्यवस्था (Implementation Machinery)—स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) के 16वें अधिवेशन मे केन्द्रीय तथा राज्यो के क्षेत्रो मे श्रम अवार्ड्स, समझौते एव अनुशासन सहिता आदि के उचित क्रियान्वयन हेतु व्यवस्था करने की सिफारिश की गयी थी। केन्द्रीय स्तर पर एक क्रियान्वयन एव मूल्यांकन खण्ड (Implementation & Evaluation Division) एव एक त्रिपक्षीय क्रियान्वयन एव मूल्यांकन समिति (Tripartite Implementation & Evaluation Committee) की स्थापना की गई है। इस त्रिपक्षीय समिति मे मालिको एव श्रमिको के सगठनो के चार-चार प्रतिनिधि एव श्रम मन्त्री इसके सभापति के रूप मे सम्मिलित किए जाते है। इस केन्द्रीय क्रियान्वयन एव मूल्यांकन डिवीजन के निम्नलिखित कार्य है—

(i) औद्योगिक विवादो के कारणो मे कमी करने के उद्देश्य से आचार सहिता, अनुशासन सहिता, औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव, श्रम अधिनियमो, अवार्ड, समझौतो आदि को उचित रूप से क्रियान्वित करना।

(ii) औद्योगिक विवादो को निपटाकर अधिक विवाद बढने पर प्रतिबन्ध लगाना।

(iii) मुख्य हडतालो, तालाबन्दियो और विवादो का मूल्यांकन कर उनके दायित्वों का निर्धारण करना।

(iv) श्रम विधानो, अवार्ड तथा नीतियो का मूल्यांकन करना।

उपरोक्त कार्यों हेतु सभी प्रान्तीय सरकारों द्वारा भी उनके श्रम विभागो के अन्तर्गत क्रियान्वयन इकाइयो (Implementation Units) तथा त्रिपक्षीय क्रियान्वयन समितियो (Tripartite Implementation Committees) की स्थापना की गयी है। केन्द्रीय व्यवस्था द्वारा सभी प्रान्तीय क्रियाओ का समन्वय एकरूपता के उद्देश्य

से किया जाता है। केन्द्रीय स्तर द्वारा मालिको और श्रमिको के बीच सहयोग बढाने के लिए कई उपाय काम मे लिए है। ये सभी उपाय ऐच्छिक आधार पर अपनाए गए हैं तथा इन उपायो की सहायता से औद्योगिक विवादो को रोकने तथा निपटाने मे महत्त्वपूर्ण योग दिया है। इस प्रकार के उपाय निम्नलिखित है—

1. अनुशासन सहिता (Code of Discipline, 1958)—आर्थिक नियोजन के प्रारम्भिक वर्षो मे औद्योगिक शान्ति रही। लेकिन सन् 1955 से औद्योगिक अशान्ति मे वृद्धि हुई। दोनो पक्ष एक दूसरे पर दोषारोपण कर रहे थे। श्रमिक मालिको द्वारा अवार्ड, समझौते तथा निर्णयो को लागू न करने सम्बन्धी शिकायतें करते थे जबकि दूसरी ओर मालिको द्वारा श्रमिको पर अनुशासनहीनता का आरोप लगा रहे थे। सन् 1958 मे भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference) के 16वें सम्मेलन मे उद्योगो मे अनुशासन बनाए रखने हेतु एक अनुशासन सहिता (Code of Discipline) का निश्चय किया गया। इसमे श्रमिको तथा मालिको के सगठनो ने भाग लिया था। यह जून 1958 से लागू किया गया था।

इस सहिता के अन्तर्गत दोनो पक्षो को एक दूसरे के अधिकारो तथा उत्तरदायित्वो को मान्यता प्रदान करनी होगी। वे एक दूसरे के कार्य मे हस्तक्षेप नही करेंगे। इसके अन्तर्गत श्रमिको और मालिको के दायित्वो का निर्धारण किया गया है जिससे दोनो पक्षो के प्रतिनिधियो के बीच सहयोग एव सद्भावना को प्रोत्साहन मिले और विवादो एव शिकायतो का निपटारा आपसी समझौतो, और ऐच्छिक पचनिर्णय के माध्यम से किया जा सके ताकि श्रम सघो के स्वतन्त्र विकास को भली प्रकार से प्रोत्साहन मिल सके।

प्रबन्धको द्वारा कार्यभार बढाने तथा अनुचित श्रम व्यवहार अपनाने पर प्रतिबन्ध लगाया गया है। कार्यभार म वृद्धि पारस्परिक विचार-विमर्श के पश्चात् ही की जा सकती है। इस सहिता के अन्तर्गत श्रम सघो को मान्यता प्रदान करने की कसौटी (Criteria) भी प्रदान की गयी है। इसी प्रकार श्रम सघो द्वारा किए जाने वाले अनुचित श्रम व्यवहारो जैसे-प्रदर्शनो मे गुण्डागर्दी, सम्पत्ति को नष्ट करना और कार्य की उपेक्षा करना आदि पर भी प्रतिबन्ध लगा दिया गया है। दोनो ही पक्षो का यह दायित्व है कि वे अवार्ड्स, निर्णयो समझौतो आदि को तत्परता के साथ क्रियान्वित करें।

यह सहिता एक ऐच्छिक सहिता है और इसकी सफलता के लिए दोनो पक्षो का सहयोग होना आवश्यक है। इस सहिता से औद्योगिक शान्ति स्थापित करके देश की प्रगति हो सकती है। इस सहिता का क्रियान्वयन का कार्य केन्द्रीय स्तर पर श्रम एव रोजगार मत्रालय के अधीन स्थापित केन्द्रीय मूल्यांकन एव क्रियान्वयन डिवीजन (Central Evaluation and Implementation Division) द्वारा किया जाता है, जबकि राज्यो मे इसके क्रियान्वयन हेतु श्रम विभाग मे क्रियान्वयन इकाइयाँ तथा त्रिपक्षीय क्रियान्वयन समितियो की स्थापना की गई है। ये त्रिपक्षीय समितियाँ केन्द्रीय तथा राज्य दोनो स्तरो पर स्थापित की गई हैं। यह सहिता सार्वजनिक क्षेत्र में

कम्पनियों तथा निगमों के अन्तर्गत चलाए जाने वाले सभी उद्योगों पर लागू होती है। इस संहिता को कई श्रमिक तथा मालिकों के सगठनों ने स्वीकार कर लिया है, जोकि केन्द्रीय सगठनों के सदस्य नहीं हैं। श्रम सम्बन्धों के नियमन में तथा दोनों पक्षों में एकता तथा सद्भावना उत्पन्न करने में इस संहिता ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसकी सफलता दोनों पक्षों की पारस्परिक एकता एवं विश्वास पर निर्भर करती है।

2. आचरण संहिता (Code of Conduct, 1958)—यह संहिता भी सन् 1958 में भारतीय श्रम सम्मेलन के 16वें अधिवेशन में स्वीकार की गयी थी। यह संहिता अन्तर-श्रम संघों में एकता तथा उसकी पारस्परिक स्पर्द्धा को नियमित करने हेतु तैयार की गयी है। चारों केन्द्रीय श्रम सगठनों (INTUC, AITUC HMS & UTUC) ने अन्तर-श्रम संघों में एकता बनाए रखने के लिए कुछ सिद्धान्तों का निर्धारण किया। ये सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) प्रत्येक श्रमिक को अपनी इच्छानुसार किसी भी संघ की सदस्यता प्राप्त करने की स्वतन्त्रता तथा अधिकार होगा।
(ii) श्रम संघों में दोहरी सदस्यता नहीं होनी चाहिए।
(iii) श्रम संघों का कार्य प्रजातान्त्रिक होगा।
(iv) श्रम संघों की कार्यकारिणी तथा कार्यालय के सदस्यों का नियमित और प्रजातान्त्रिक चुनाव होगा।
(v) किसी भी सगठन द्वारा श्रमिक की अज्ञानता अथवा पिछड़ेपन का नाजायज फायदा नहीं उठाया जाएगा।
(vi) जातिवाद, साम्प्रदायिकता एवं प्रान्तीयता आदि की भावनाओं से ऊपर श्रम संघ स्थापित किए जाएँगे।
(vii) अन्तर संघीय कार्यों में किसी प्रकार का दबाव, धमकी, हिंसा आदि का प्रयोग नहीं किया जाएगा।
(viii) सभी केन्द्रीय श्रम सगठनों द्वारा कम्पनी यूनियनों की स्थापना करने को प्रोत्साहन दिया जाएगा।

इस संहिता के क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन हेतु भी केन्द्रीय एवं राज्य स्तरों पर क्रियान्वयन एवं मूल्यांकन इकाइयों तथा समितियों की स्थापना की गई है।

3 शिकायत रीति (Grievance Procedure)—अनुशासन संहिता, 1958 के अन्तर्गत यह प्रावधान है कि दोनों पक्षों द्वारा शिकायत निवारण हेतु एक रीति मिलकर तैयार की जाएगी। किसी भी शिकायत की जाँच करके जल्दी ही उसका समझौता कराया जाएगा क्योंकि शिकायतों के उचित निवारण न होने पर श्रमिकों में प्रबन्धकों के प्रति असन्तोष उत्पन्न हो जाता है और बाद में यही असन्तोष औद्योगिक विवादों को जन्म देता है। जिन उद्योगों अथवा संस्थानों द्वारा इस संहिता को स्वीकार किया गया है उनको शिकायत निवारण हेतु भी एक तरीका पारस्परिक विचार-विमर्श के पश्चात् तैयार करना चाहिए। इससे श्रमिकों और मालिकों के

बीच अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध स्थापित हो सकेंगे। इसके अन्तर्गत प्रत्येक उद्योग स्तर पर एक शिकायत समिति (Grievance Committee) बनाई जाती है। इसको बनाने तथा क्रियाशील सम्बन्धी सिद्धान्तो का भी इस संहिता मे विवरण दिया है। इसके अन्तर्गत श्रमिक द्वारा शिकायत प्रथम बार सम्बन्धित अधिकारी को की जाएगी। यह अधिकारी 48 घण्टे मे इसका जवाब देगा।

यदि श्रमिक सतुष्ट नही है तो वह अपने विभागाध्यक्ष को इसकी शिकायत करेगा। यह विभागाध्यक्ष 3 दिन मे इसका जवाब देगा। देरी होने के कारण भी बताए जाएँगे। यदि विभागाध्यक्ष के निर्णय से भी श्रमिक असन्तुष्ट है तो वह अपनी शिकायत को शिकायत समिति (Grievance Committee) को प्रेषित करने हेतु निवेदन कर सकता है। यह समिति अपनी सिफारिशे एक सप्ताह मे प्रबन्धक को करती है। यदि इसमे देरी लगती है तो इसके कारण भी बताए जाते है। एकमत वाली सिफारिशो को प्रबन्धक लागू कर देता है। एकमत न होने पर अन्तिम निर्णय प्रबन्धक द्वारा किया जाता है। इसके विषय मे 3 दिन मे श्रमिक को सूचित कर दिया जाएगा। इसके पश्चात् असन्तुष्ट होने पर प्रबन्धक दुबारा निर्णय को दोहराता है। इस पर भी असन्तुष्ट होने पर इस शिकायत को ऐच्छिक पचनिर्णय को सौप दिया जाता है। शिकायत जब समिति द्वारा दूर नही की जाती है तो यह एक विवाद का रूप धारण कर लेती है जिसका निपटारा समझौता व्यवस्था (Conciliation Machinery) द्वारा किया जाता है।

4. औद्योगिक शान्ति प्रस्ताव, 1962 (Industrial Truce Resolution, 1962)—सन् 1962 मे चीनी आक्रमण के समय श्रमिको और मालिको द्वारा यह प्रस्ताव ग्रहण किया गया। इस सकटकालीन अवस्था मे सभी झगडो तथा मतभेदो को समाप्त कर औद्योगिक शान्ति बनाए रखने का प्रस्ताव पास किया गया। दोनो पक्षो के सगठनो की एक सयुक्त सभा बुलाकर उत्पादन मे वृद्धि करने तथा न्यूनतम मतभेद करने पर जोर दिया गया। इस प्रस्ताव का उद्देश्य कार्य रोको की समाप्ति, उत्पादन एव उत्पादकता मे सुधार, मूल्य स्थिरता हेतु उपभोक्ता सहकारिताओं के माध्यम से लागत मे कमी करना और बचतो मे वृद्धि करना था। दोनो पक्षो द्वारा आर्थिक हितो पर प्रतिबन्ध तथा त्याग मे समानता के लिए प्रस्ताव पास किया गया। इस प्रस्ताव के क्रियान्वयन हेतु केन्द्रीय तथा राज्य स्तरो पर उचित व्यवस्था की गयी। इस प्रस्ताव ने श्रमिको एव प्रबन्धको के सम्बन्धो मे पारस्परिक एकता एव सहयोग प्रदान किया है।

5 श्रम मालिक समितियाँ (Works Committees)—औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 के अन्तर्गत प्रत्येक सस्थान मे जहाँ 100 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं, श्रम मालिक समिति का गठन किया जाएगा। इन समितियो मे श्रमिको तथा मालिको के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होते है। इन समितियो का उद्देश्य श्रमिको एव मालिको मे आपसी एकता उत्पन्न करना तथा आपसी मतभेदो को प्रारम्भ मे ही समाप्त करना है। इस प्रकार की समितियाँ वैधानिक रूप से सभी उद्योगो अथवा

संस्थानो मे बना दी गई हैं। इन समितियो के अतिरिक्त ऐच्छिक आधारों पर कई द्विपक्षीय समितियो (Bipartite Committees) की स्थापना की गई है। ये हैं—उत्पादन समितियाँ (Production Committees) और दुर्घटना बचाव समितियाँ (Accident Prevention Committees)।

6. त्रिपक्षीय परामर्श व्यवस्था (Tripartite Consultative Machinery)–इस व्यवस्था के अन्तर्गत श्रम सम्बन्धो पर विचार-विमर्श किया गया है। इस प्रकार की व्यवस्था विभिन्न रूपो मे पायी जाती है। हमारे देश मे इस प्रकार की व्यवस्था निम्न प्रकार से है—

(i) भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference)
(ii) स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee)
(iii) औद्योगिक समितियाँ (Industrial Committees)
(iv) अन्य प्रकार की त्रिपक्षीय समितियाँ

भारत मे परामर्श व्यवस्था अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना (1919) तथा शाही श्रम आयोग (Royal Commission on Labour, 1931) की सिफारिशो का परिणाम है। यहाँ इस व्यवस्था मे श्रमिको, मालिको एव सरकार के प्रतिनिधि भाग लेते हैं। प्रारम्भ मे श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधियों के साथ सरकार विचार-विमर्श करके अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन हेतु उनका चयन करती थी तथा महत्त्वपूर्ण श्रम समस्याओ पर विचार करती थी। इस प्रकार के त्रिपक्षीय परामर्श से कई विवादो तथा मतभेदो को समाप्त करने मे सरकार को सहयोग प्राप्त हुआ। दूसरे महायुद्ध काल मे भी सन 1941 एव सन 1942 मे भारत सरकार द्वारा श्रम कार्यक्रम तैयार करने हेतु श्रमिको और मालिको के प्रतिनिधियो से विचार-विमर्श हुआ। सन् 1942 मे चतुर्थ श्रम सम्मेलन हुआ। इसमें मालिको श्रमिको एव प्रान्तीय तथा राज्य सरकारो के प्रतिनिधियो ने भाग लिया। इस सम्मेलन मे एक स्थायी त्रिपक्षीय परामर्श व्यवस्था (Permanent Tripartite Consultation Machinery) और एक स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) की स्थापना की गई। सम्मेलन का कार्य भारत सरकार को सम्बन्धित श्रम मामलो पर सलाह देना है। यह सलाह श्रमिको, मालिको, राज्यो एव प्रान्तीय सरकारो के प्रतिनिधियो द्वारा दिए गए सुझावो के आधार पर दी जाती है। स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) का कार्य सरकार द्वारा किसी सौंपे गए मामले पर उसे सलाह देना है। इसके पश्चात् श्रमिको के प्रतिनिधियो की प्रार्थना पर प्रत्येक उद्योग मे (महत्त्वपूर्ण उद्योगो मे) औद्योगिक समिति (Industrial Committee) की स्थापना की गई। इन समितियो का कार्य सम्बन्धित उद्योग की समस्याओ पर विचार-विमर्श कर इसकी रिपोर्ट सम्मेलन को प्रस्तुत करना है। सम्मेलन इन सभी समितियो के कार्य का समन्वय करता है।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत सरकार देश मे एक रूप एव समन्वय प्राप्त श्रम नीति के प्रोत्साहन हेतु प्रतिवर्ष राज्य एव केन्द्रीय श्रम मन्त्रियो का सम्मेलन

बुलाती है। इसी प्रकार सरकार ने अन्य त्रिपक्षीय समितियो तथा मण्डलो (Boards) की स्थापना की है।

7 मजदूरी मण्डल (Wage Boards)—श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो को प्रभावित करने मे मजदूरी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अधिकांश श्रम समस्याओ की उत्पत्ति का कारण मजदूरी है। आधुनिक समय मे श्रमिको की उच्च जीवन स्तर प्राप्त करने की आकांक्षा तथा बढती हुई कीमतो के कारण श्रमिको की आवश्यकताएँ उनकी कम मजदूरी से सन्तुष्ट नही हो पाती है। इसके परिणामस्वरूप श्रमिको एव मालिको मे मजदूरी निर्धारण के सम्बन्ध मे मतभेद उत्पन्न हो जाता है। एक उचित मजदूरी नीति हेतु सरकार ने मजदूरी मण्डलो, मजदूरी समितियो (Wage Committees), आयोगो आदि की नियुक्तियाँ की है। ये सभी त्रिपक्षीय प्रकृति के आधार पर बनायी गई है। श्रमिको एव मालिको के प्रतिनिधि तथा कुछ स्वतन्त्र व्यक्तियो को मिलाकर इस प्रकार की मजदूरी समितियाँ या मजदूरी मण्डल नियुक्त किए हैं। इस प्रकार के मजदूरी मण्डल कई उद्योगो मे स्थापित कर दिए गए हैं। जैसे सूती वस्त्र उद्योग (1957, 1964) चीनी उद्योग (1957) सीमेन्ट उद्योग (1958, 1964), जूट उद्योग (1960) चाय बागान (1960) कॉफी बागान (1961), रबड बागान (1961) लोहा एव स्पात (1962), कोयले की खानें (1962), कच्चे लोहे की खानें (1963), चूने का पत्थर (1963), कार्यशील पत्रकार (1956 1963), गैर पत्रकार (1964), इन्जीनियरिंग उद्योग (1964)। इन सभी मजदूरी मण्डलो ने अपने अन्तिम प्रतिवेदन पेश कर दिए हैं। इस प्रकार मजदूरी निर्धारण मे इन मजदूरी मण्डलो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मजदूरी सम्बन्धी विवादो तथा मतभेदो को पारस्परिक समझौतो, मध्यस्थता तथा ऐच्छिक पचनिर्णय द्वारा निपटाया जा सकता है।

8 प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी (Workers' Participation in Management)—हाल ही के वर्षों मे औद्योगिक प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी तथा सयुक्त परामर्श को महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाने लगा है। यह व्यवस्था द्वितीय महायुद्ध काल में औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने मे सफल रही है। विकसित देशो जैसे इगलैण्ड मे श्रमिको की हिस्सेदारी सयुक्त परामर्श समितियो (Joint Consultation Committees) के माध्यम से दी जाती है।

हमारे देश मे द्वितीय पचवर्षीय योजना काल मे औद्योगिक शान्ति बनाए रखने हेतु श्रमिको एव मालिको मे एकता एव पूर्ण सहयोग की आवश्यकता पर बल दिया गया। इसके लिए एक ऐसी व्यवस्था पर विचार किया गया जिसके अन्तर्गत दोनो पक्ष एक दूसरे के सामने बैठकर सम्बन्धित मामलो पर विचार-विमर्श कर सकें। इससे दोनो पक्षो मे पारस्परिक एकता एव सहयोग को बढावा मिलेगा।

इस उद्देश्य को लेकर इसकी योजना काल मे उत्पादकता मे वृद्धि करने तथा श्रमिको के उद्योग मे महत्त्व को भली-भाँति समझने हेतु श्रमिको की प्रबन्ध मे हिस्सेदारी के महत्त्व को स्वीकार किया गया। सरकार, श्रमिको और मालिको के

प्रतिनिधियो का एक अध्ययन दल विदेशो मे प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी के विषय पर अध्ययन करने के लिए गया। इस अध्ययन दल ने हमारे देश मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो (Joint Management Councils) की स्थापना करने की सिफ रिश की। सन् 1957 मे भारतीय श्रम सम्मेलन मे एक सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की योजना तैयार की गई।

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो (JMC) के उद्देश्य निम्नलिखित हैं—

(i) श्रमिको की आवास एव कार्य की दशाओ को सुधारना,
(ii) उत्पादकता मे सुधार,
(iii) श्रमिको से सुझाव देने को प्रोत्साहन देना,
(iv) कानूनो और समझौतो के प्रशासन मे सहायता करना
(v) दोनो पक्षो मे सदेशवाहन का कार्य करना,
(vi) श्रमिको मे हिस्सेदारी की भावना को प्रोत्साहन देना।

इनके निम्नलिखित कार्य हैं—

(i) कल्याण एव सुरक्षा सम्बन्धी उपाय, व्यावसायिक प्रशिक्षण कार्य के घण्टे और छुट्टियाँ आदि पर कार्यवाही करना,
(ii) स्थायी आदेशो के प्रशासन, उत्पादन एव निर्माणकारी नए साधनो का उपयोग आदि के सम्बन्ध मे सलाह देना,
(iii) सामान्य आर्थिक स्थिति, बाजार की स्थिति, उत्पादन और विक्रय कार्यक्रम, वार्षिक लाभ-हानि आदि पर कम्पनी द्वारा सूचना देना।

यह एक ऐच्छिक उपाय है जिसके अन्तर्गत त्रिपक्षीय समझौतो के माध्यम से श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो को सुधारा जाता है।

9 श्रमिकों की शिक्षा (Workers' Education)—भारतीय श्रमिको के अज्ञान एव उनके अशिक्षित होने के कारण उन्हे अपने अधिकारो तथा कर्तव्यो का पूरा पूरा ज्ञान नहीं होता है। वे स्थायी रूप से औद्योगिक नगरो मे नही बसते हैं और नियमित रूप से श्रम सघो के सदस्य नही रहते हैं। इन दोषो को दूर करने हेतु श्रमिको की शिक्षा होना आवश्यक है। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु भारत सरकार ने सन् 1958 मे एक श्रमिको की शिक्षा हेतु केन्द्रीय मण्डल (Central Board for Workers' Education) की स्थापना की। इसके अन्तर्गत कई प्रादेशिक मण्डलो (Regional Boards) का गठन किया गया है। इनमे शिक्षा अधिकारी (Education Officers) नियुक्त किए जाते हैं। ये शिक्षा अधिकारी विभिन्न उद्योगो से चुने गए श्रमिको को श्रम सम्बन्धी मामलो तथा सामान्य ज्ञान पर शिक्षा प्रदान करते हैं। ये श्रमिक श्रमिको के अध्यापक (Workers' Teachers) कहलाते हैं। फिर ये श्रमिक अपने सम्बन्धित उद्योगो मे जाकर श्रमिको को शिक्षा प्रदान करने का कार्य करते हैं। ये मण्डल श्रमिको की कक्षाएँ चलाने मे सहायता प्रदान करते हैं।

अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो के विकास हेतु सरकार के महत्त्व की उपेक्षा नही की जा सकती है। आज के कल्याणकारी राज्य का यह दायित्व है कि एक उचित

आर्थिक एव सामाजिक स्थिति को प्रोत्साहन दे। एक विकासशील देश मे द्रुत प्र विक विकास के लिए औद्योगिक शान्ति होना आवश्यक है। औद्योगिक शान्ति की स्थापना तभी सम्भव है जब श्रमिको और मालिको के बीच अच्छे सम्बन्ध हो। अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए सरकार द्वारा हस्तक्षेप की नीति अपनानी पडती है। औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947 (Industrial Disputes Act of 1947) के अन्तर्गत औद्योगिक सम्बन्धो को सुधारने की व्यवस्था की गई है। समझौता एव पचनिर्णय के द्वारा औद्योगिक विवादो को निपटाने मे सरकार ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। औद्योगिक विवादो को रोकने हेतु भी श्रमिक मालिक समितियो (Works Committees) की व्यवस्था की गई है। समझौता द्वारा विवाद न निपटने पर न्यायाधिकरण की भी व्यवस्था की गई है। लेकिन यह अन्तिम हथियार के रूप मे काम मे लाया जाता है।

मजदूरी से सम्बन्धित विवादो को निपटाने हेतु अब सरकार द्वारा त्रिपक्षीय मजदूरी मण्डलो (Tripartite Wage Boards) की स्थापना की गई है तथा बोनस अदायगी अधिनियम, 1965 (Payment of Bonus Act, 1965) द्वारा बोनस भुगतान किया जाना अनिवार्य है। सरकार द्वारा औद्योगिक सम्बन्धो को सुधारने हेतु कानूनी उपायो (Statutory Measures) के अतिरिक्त अन्य उपायो को भी काम मे लिया गया है। इनमे श्रमिको की शिक्षा, अनुशासन एव आचार सहिता, सयुक्त प्रबन्ध परिषदें आदि मुख्य हैं।

श्रमिको एव प्रबन्धको का यह दायित्व है कि वे आपसी विवादो को पारस्परिक विचार-विमर्श द्वारा निपटाएँ। इसके साथ ही समझौता एव पचनिर्णय (Conciliation & Arbitration) की व्यवस्था है। इनके असफल होने पर औद्योगिक विवादो को निपटाने हेतु न्यायाधिकरण (Adjudication) की व्यवस्था भी है। लेकिन यह अन्तिम हथियार के रूप मे ही काम मे लाना चाहिए। श्रम सघो को अनिवार्य मान्यता देकर सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए।

सन् 1961 से सन 1973 की अवधि मे औद्योगिक विवादो को विभिन्न विधियो से निपटाया गया। इनकी सख्या मय प्रतिशत के निम्न तालिका मे दी गई है[1]–

वर्ष	सरकारी हस्तक्षप	पारस्परिक निपटारा	ऐच्छिक	कुल
1961	487 (41 8%)	334 (28 6%)	345 (29 6)	1166(100%)
1965	781 (45 7)	423 (24 7)	506 (29 6)	1710(100%)
1966	10005 (42 8)	680 (29 0)	662 (28 2)	2347(100%)
1967	1222 (44 1)	717 (28 2)	704 (27 7)	2543(100%)
1968	1127 (44 7)	612 (24 3)	782 (31 0)	2521(100%)
1969	988 (41 5)	660 (27 8)	730 (30 7)	2378(100%)
1970	1075 (41 1)	748 (28 6)	793 (30 3)	2616(100%)
1971	1070 (42 7)	659 (26 3)	779 (31 0)	2508(100%)
1972	1220 (42 0)	753 (25 9)	931 (32 1)	2904(100%)
1973	909 (37 45)	693(28 55)	825 (34 0)	2427(100%)

1 Pocket Book of Labour Statistics, 1974, p 72

उपरोक्त तालिका से निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं—

1 सन् 1961 से सन् 1973 की अवधि मे औद्योगिक विवादों के निपटाने मे महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है । यद्यपि इस विधि से निपटाए गए विवादो की सख्या एव इनका प्रतिशत गिरकर 41 8% से 37 45% ही रह गया है ।

2. विवादो को निपटाने की पारस्परिक व्यवस्था की विधि मे इस अवधि मे उतार-चढाव आए हैं और सन् 1961 की तुलना मे सन् 1973 मे सुलझाए गए विवादो की सख्या मे वृद्धि हुई है, लेकिन इनका प्रतिशत गिरा है ।

3 ऐच्छिक व्यवस्था द्वारा सुलझाए गए विवादो की सख्या मे सन् 1971 से सन् 1968 तक वृद्धि हुई है। इसके पश्चात् सन् 1969 को छोडकर सन् 1972 तक इनकी सख्या मे वृद्धि हुई है जो कि औद्योगिक सम्बन्धो मे एक नई प्रवृत्ति का द्योतक है ।

4 सन् 1961 से सन् 1967 की अवधि मे निपटाए गए विवादो की सख्या मे दुगुनी से भी अधिक वृद्धि हुई है । अगले दो वर्षो को छोडकर इनकी सख्या मे सन् 1972 तक उत्तरोत्तर वृद्धि हुई है लेकिन सन् 1973 मे ये कम हुए है ।

1 जुलाई, 1975 से आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा से औद्योगिक विवादो को निपटाने हेतु सरकार द्वारा विभिन्न कारगर कदम उठाए गए तथा पारस्परिक सुलह द्वारा इन्हे निपटाने की आवश्यकता पर बल दिया गया । सितम्बर, 1975 मे राजस्थान सरकार ने इन्टक, एटक व हिन्द मजदूर सभा को बराबर प्रतिनिधित्व देकर औद्योगिक विवादो को निपटाने की महत्त्वपूर्ण व्यवस्था की है ।

10 भारत में प्रबन्ध में श्रमिकों की हिस्सेदारी एवं संयुक्त प्रबन्ध परिषदें

(Workers' Participation in Management in India, & Joint Management Councils)

दूसरी पचवर्षीय योजना मे समाजवादी समाज की स्थापना का उद्देश्य रखा गया था। श्रम नीति के सम्बन्ध मे इस योजना मे महत्त्वपूर्ण कार्यक्रमो को अपनाया गया। इस योजना मे योजना के सफल क्रियान्वयन हेतु प्रबन्धको के साथ श्रमिको की हिस्सेदारी मे वृद्धि करने पर जोर दिया गया। जिससे श्रम-मालिको के सम्बन्ध सुधरेंगे तथा उत्पादन मे भी वृद्धि होगी। समाजवादी समाज की स्थापना के पहले औद्योगिक प्रजातन्त्र की स्थापना करनी होगी। औद्योगिक प्रजातन्त्र के लिए निम्नलिखित आवश्यक अग होने चाहिएँ—

(i) औद्योगिक प्रजातन्त्र मे श्रमिको को उद्योग के लाभ, उत्पादन, बाजार और अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्द्धा सम्बन्धी तथ्यो को जानने का अधिकार होना चाहिए।

(ii) औद्योगिक प्रजातन्त्र की दूसरी आवश्यकता श्रमिको को प्रबन्ध मे हिस्सा दिया जाना है तथा बढे हुए उत्पादन मे से जनता को लाभ मिलना चाहिए।

(iii) श्रमिको को सगठन करने, बोलने, मतदान करने आदि का अधिकार प्राप्त होना चाहिए।

(iv) श्रमिको को अपने सघ बनाने तथा उन्हे चलाने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।

"आधुनिक समय मे प्रबन्धको द्वारा श्रमिको के प्रति मानवीय दृष्टिकोण (Human Approach) अपनाया जाने लगा है।" प्राचीन समय मे श्रम को एक व्यापारिक वस्तु की भाँति समझा जाता था और उद्योग मे उसे कोई खास महत्त्व नही दिया जाता था। लेकिन आधुनिक समय मे विशाल उद्योगो के कारण श्रम का महत्त्व अब काफी बढ गया है तथा उद्योगों मे प्रजातन्त्र की स्थापना के लिए श्रमिक को भी महत्त्वपूर्ण स्थान दिया जाता है तथा बिना श्रमिक के सहयोग के उद्योग को समृद्धि को असम्भव समझा जाने लगा है। श्रमिक को प्रबन्ध मे भागीदारी देकर उसका पूर्ण सहयोग प्राप्त करने तथा मधुर सम्बन्ध बनाए रखने मे सहायता मिलती है। प्रबन्ध के महत्त्व के साथ-साथ एक औद्योगिक प्रजातन्त्र मे उपभोक्ता की आवश्यकताएँ, मालिक, समाज तथा सरकार आदि तत्त्वो को भी महत्त्व दिया जाना चाहिए।

श्रमिको की हिस्सेदारी के उद्देश्य
(Objects of Workers' Participation)

श्रमिको की हिस्सेदारी के आधार पर औद्योगिक प्रजातन्त्र को प्रोत्साहन मिलता है। श्रमिक और प्रबन्धक एक दूसरे के निकट आते हैं और उनमे पारस्परिक एकता एव विश्वास उत्पन्न होता है। इससे निम्न उद्देश्य प्राप्त हो सकेगे—

1 इससे उत्पादकता मे वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है फलत उद्योग, श्रमिको और समाज को लाभ मिलता है।

2 श्रमिको को इससे अच्छी जानकारी मिलती है कि उनका उद्योग और उत्पादन मे क्या महत्त्व है।

3 श्रमिको की आवश्यकताओ को पूरा करने का प्रयत्न होता है जिससे औद्योगिक शान्ति, अच्छे सम्बन्ध और सहयोग मे वृद्धि होती है।

इस प्रकार श्रमिको और प्रबन्धको मे सहयोग होने से उत्पादन मे वृद्धि होती है तथा दूसरी ओर उद्योग मे मानवीय साधन के रूप मे श्रम के महत्त्व को जानने मे मदद मिलती है। अत एक समाजवादी अर्थव्यवस्था मे नियोजित अर्थव्यवस्था के लक्ष्यो तथा उद्देश्यो को प्राप्त करने हेतु श्रमिको और प्रबन्धको मे सहयोग होना परम आवश्यक है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (ILO) ने उद्योग स्तर पर परामर्श एव सहयोग हेतु श्रम हिस्सेदारी पर विचार किया फलत श्रमिको से परामर्श और सहयोग प्राप्त करने हेतु कई समितियो और परिषदो की स्थापना की गई है जैसे—सयुक्त उत्पादन समितियाँ (Joint Production Committees), श्रम-मालिक समितियाँ (Works Committees), कार्य परिषदें (Works Councils), प्रबन्ध समितियाँ (Management Councils) इत्यादि। इसके अतिरिक्त उद्योग के प्रबन्ध मण्डल मे श्रमिको को प्रतिनिधित्व दिया जा सकता है।

श्रमिको और प्रबन्धको मे सहयोग उत्पन्न करने के लिए दोनो पक्षो को एक दूसरे पर विश्वास होना चाहिए। एक दूसरे के अधिकारो एव उत्तरदायित्वो को भी मान्यता दी जानी चाहिए। एक सुदृढ श्रम सघ होने पर ही श्रमिको की हिस्सेदारी और सामूहिक सौदाकारी प्रभावपूर्ण ढग से लागू की जा सकती है।

भारत मे प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी
(Workers' Participation in Management)

दूसरी पचवर्षीय योजना मे समाजवादी समाज की स्थापना करने तथा योजना के सफलतापूर्ण क्रियान्वयन करने एव सभी उद्देश्यो की प्राप्ति हेतु श्रमिको के सहयोग पर अधिक जोर दिया गया था। इसके लिए बडे सगठित उद्योगो मे प्रबन्ध परिषदो (Management Councils) की स्थापना करने की सिफारिश की गई। इसमे मालिको, श्रमिको एव तकनीकी व्यक्तियो के प्रतिनिधियो को शामिल किया गया। इस योजना के क्रियान्वयन हेतु भारत सरकार ने एक त्रिपक्षीय अध्ययन दल की नियुक्ति अक्तूबर, सन् 1956 मे की। इसमे श्रमिको, मालिको और सरकार के

प्रतिनिधियो को शामिल किया गया था। इस अध्ययन दल द्वारा कई यूरोपीय देशो का भ्रमण किया और वहाँ प्रबन्ध मे हिस्सेदारी सम्बन्धी अध्ययन किया। इस अध्ययन दल द्वारा सन् 1957 म अपनी रिपोर्ट पेश की गई। इसके अनुसार देश मे सयुक्त प्रबन्ध परिपदो (Joint Management Councils) की स्थापना करने की सिफारिश की गई थी। इन सिफारिशो को भारतीय श्रम सम्मेलन (Indian Labour Conference) मे सन् 1957 मे स्वीकार किया गया। इनकी स्थापना ऐच्छिक रूप से की गई है।

सयुक्त प्रबन्ध परिपदो के कार्य एव विशेषताएँ (Functions and Characteristics of Joint Management Councils)

सयुक्त प्रबन्ध परिपदो को परामर्श सम्बन्धी, सूचना प्राप्त करने तथा प्रशासनिक उत्तरदायित्वो के सम्बन्ध मे महत्वपूर्ण अधिकार प्रदान किए गए हैं। इन परिषदो के निम्न कार्य हैं—

1 प्रबन्ध द्वारा परिपदो से निम्न मामलो पर परामर्श किया जा सकता है—

(i) स्थायी आदेशो का प्रशासन एव उनका सशोधन सम्बन्धी कार्य,
(ii) छँटनी सम्बन्धी कार्य,
(iii) विवेकीकरण (Rationalisation),
(iv) कार्य बन्द करना या कमी करना।

2 परिषदो को सूचना प्राप्त करने, उन पर बहस करने तथा सुझाव देने के अधिकार निम्न विषयो पर होगे—

(i) उद्योग की सामान्य आर्थिक स्थिति,
(ii) बाजार, उत्पादन एव विक्रय कार्यक्रमो की स्थिति,
(iii) उद्योग का सगठन एव उसको चलाने की क्रिया,
(iv) उद्योग की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ,
(v) निर्माण एव कार्य के तरीके,
(vi) वार्षिक सन्तुलन पत्र, हानि एव लाभ विवरण,
(vii) विस्तार एव रोजगार सम्बन्धी दीर्घकालीन योजना,
(viii) दूसरे अन्य मामले।

3 परिषदो को कुछ विषयो मे प्रशासनिक जिम्मेदारी दी जा सकेगी—

(i) कल्याणकारी उपायो का प्रशासन,
(ii) सुरक्षा उपायो का निरीक्षण या देखरेख,
(iii) व्यावसायिक प्रशिक्षण का कार्य और नवशिक्षुओ की योजनाएँ,
(iv) कार्य के घटे, रेस्ट एव छुट्टियो की सूचियाँ तैयार करना,
(v) कर्मचारियो से प्राप्त महत्वपूर्ण सुझावो हेतु पुरस्कार देना,
(vi) अन्य कोई विषय।

4 कुछ विषय जो कि सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत आते हैं वे इन परिषदो के अन्तर्गत नही आएँगे, जैसे मजदूरी, बोनस आदि। व्यक्तिगत शिकायतो (Individual Grievances) को भी इन परिषदो के अन्तर्गत नही रखा गया है।

सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की प्रगति
(Progress of Joint Management Councils)

तीसरी पचवर्षीय योजना मे श्रमिको एव प्रबन्धको के बीच सहयोग को बढाने के लिए प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी पर जोर दिया गया। इसके लिए नए उद्योगो मे अधिक से अधिक सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की स्थापना पर बल दिया गया।

सन् 1961 मे केन्द्रीय मन्त्रियो का सम्मेलन बुलाया गया। इस सम्मेलन मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे और अधिक सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की स्थापना करने पर जोर दिया गया। इन परिषदो की प्रगति तथा क्रियान्वयन हेतु एक त्रिपक्षीय समिति (Tripartite Committee) की स्थापना भी की गई थी। श्रम एव रोजगार मन्त्रालय मे भी इन परिषदो की प्रगति हेतु एक विशेष प्रकोष्ठ (Special Cell) की स्थापना की गई है।

हमारे देश मे सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की योजना सन् 1958 मे ऐच्छिक रूप मे शुरू की गई थी। जनवरी 1973 म इस प्रकार की परिषदें 80 सार्वजनिक एव निजी क्षेत्र के सस्थानो मे कार्यरत थी।[1] सन् 1970 के प्रारम्भ मे इनकी सख्या सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र के सस्थानो मे क्रमश 46 तथा 85 थी।[2]

इन परिषदो ने कोई खास प्रगति नही की है। जिन सस्थानो मे दोनो पक्षो—श्रम एव प्रबन्धको—मे सहयोग रहा है वहाँ पर अच्छे परिणाम निकले हैं। सयुक्त प्रबन्ध परिषदो द्वारा अच्छे प्रकार से कार्य करने पर कई रूपो मे लाभ प्राप्त हो सकते हैं जैसे—अच्छे औद्योगिक सम्बन्ध एक स्थायी श्रम शक्ति का प्रादुर्भाव, उत्पादकता मे वृद्धि अपव्यय मे कमी अधिक लाभ और दोनो पक्षो मे पारस्परिक एकता आदि।

प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी को सफल एव प्रभावपूर्ण बनाने हेतु देश मे सुदृढ श्रम सगठनो की आवश्यकता है। हमारे देश मे अभी इसकी कमी पायी जाती है। इससे मालिक भी इनमे रुचि नही लेते है। जिन सस्थानो मे औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे नही हैं और श्रम मालिक समितियो (Works Committees), शिकायत निवारण पद्धति और श्रम सघो की मान्यता का अभाव पाया जाता है वहाँ इन परिषदो की सफलता असम्भव है। इस प्रकार इनकी सफलता के लिए दोनो पक्षो का सहयोग होना आवश्यक है।

प्रबन्ध मे श्रमिको की हिस्सेदारी की वास्तविक सफलता के लिए यह आवश्यक है कि दोनो पक्षो मे सहयोग हो और वे एक दूसरे के अधिकारो एव कर्त्तव्यो को

1 India 1975, p 296
2 *Agnihotri V* Industrial Relations in India, p 85

समझें। राष्ट्रीय श्रम आयोग (National Commission on Labour) के अनुसार विभिन्न उद्योगो के इकाई स्तर पर जो द्विपक्षीय समितियाँ (Bipartite Committees) जैसे उत्पादन समितियाँ, श्रम-मालिक समितियाँ (Production Committees, Works Committees) आदि के साथ-साथ सयुक्त परिषदो की स्थापना से कोई विशेष लाभ प्राप्त नही होता है। इसलिए इन द्विपक्षीय समितियो को सयुक्त प्रबन्ध परिषदो (JMCs) मे मिला देना चाहिए। लेकिन आयोग के कुछ सदस्यो ने इससे असहमति प्रकट की क्योकि श्रम-मालिक समितियाँ विधान के अन्तर्गत बनायी जाती है जबकि सयुक्त प्रबन्ध समितियों के पीछे कोई विधान नहीं होता है। ये ऐच्छिक आधार पर बनाई जाती हैं। अत सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की सफलता के लिए प्रगतिशील नियोजक, सुदृढ श्रम सगठन की आवश्यकता है। इसलिए इन्हे चुनाव के आधार पर कुछ चुने हुए उद्योगो मे ही लागू करना चाहिए। इन परिषदो की स्थापना के पूर्व समाजवादी समाज की स्थापना हेतु औद्योगिक प्रजातन्त्र (Industrial Democracy) की स्थापना की जानी चाहिए।

1 जुलाई, 1975 को घोषित 20 सूत्री कार्यक्रम मे भी प्रबन्ध मे श्रमिको को भागीदारी देने हेतु प्रभावपूर्ण कदम उठाए गए हैं। इससे निजी तथा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे उच्च प्रबन्धकीय स्तर से निम्न कारखाना स्तर तक श्रमिको को भागीदार बनाए जाने की घोषणा की गई है। हाल ही मे राजस्थान सहित चार प्रान्तो मे सार्वजनिक क्षेत्र के उद्योगो मे श्रमिको की हिस्सेदारी का मूल्यांकन करने हेतु मुख्य मन्त्रियो की अध्यक्षता मे एक समिति का गठन किया गया है।[1]

राष्ट्रीय शीर्षस्थ सगठन (National Appex Body) ने मुख्य उद्योगो मे राष्ट्रीय औद्योगिक समितियो की स्थापना करने का निश्चय किया है। ये समितियाँ श्रम सम्बन्धो के अन्य मामलो के अतिरिक्त उद्योग मे श्रमिको की हिस्सेदारी की योजना को क्रियान्वयन करने का कार्य करेंगी। इस प्रकार की समितियाँ सूती वस्त्र, राष्ट्रीय सूती वस्त्र निगम (NTC), सीमेन्ट, इजीनियरिंग और रासायनिक उद्योगो मे पहले ही स्थापित कर दी गई हैं।[2]

---

1 राष्ट्रदूत, फरवरी 26, 1976
2 Hindustan Times, March 18, 1976

11 अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन : संक्षिप्त इतिहास, संगठन, कार्य, सफलतायें; भारत और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

(International Labour Organisation Brief History, Constitution, Organisation, Functions, Achievements; India and International Labour Organisation)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन प्रथम महायुद्ध के अन्त मे वर्साइल्स की सधि (Treaty of Versailles) का परिणाम है। इस सन्धि का उद्देश्य शान्ति बनाए रखना था। लेकिन शान्ति की स्थापना करने हेतु सामाजिक न्याय भी प्रदान करना आवश्यक है। अत शान्ति बनाए रखने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दशाओ के नियमन एव उनके सरक्षण की व्यवस्था होना आवश्यक है। अत श्रम की दशाओ को सुधारने के लिए एक स्थाई सगठन की स्थापना करने की आवश्यकता महसूस की गई।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आधारभूत सिद्धान्त (Fundamental Principles of the I L O)

जिन सिद्धान्तो पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन आधारित है वे 'श्रमिक चाटर' मे दिए गए हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(1) श्रम को व्यापार की वस्तु नही समझना चाहिए।

(2) श्रमिको और मालिको को सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्यो की पूर्ति हेतु सघ बनाने के अधिकारो को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए।

(3) देश और समयानुसार उचित प्रकार के जीवन स्तर को बनाए रखने के लिए श्रमिको को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था की जानी चाहिए।

(4) प्रतिदिन 8 घण्टे के कार्य और सप्ताह मे 48 घण्टे के कार्य के सिद्धान्त को उन सभी जगह लागू किया जाना चाहिए जहाँ ये अभी लागू नही हैं।

(5) सप्ताह मे कम से कम 24 घण्टे का अवकाश मिलना चाहिए।

(6) बालको से काम लेना समाप्त करना चाहिए और किशोरो के रोजगार पर रोकथाम होनी चाहिए, जिससे कि उनकी शिक्षा के चालू रखने के साथ साथ उन्हे उचित रीति से शारीरिक विकास का अवसर भी मिल सके।

(7) समान मूल्य के समान कार्यों के लिए स्त्री व पुरुष को समान पारिश्रमिक दिया जाना चाहिए।

(8) श्रम कानूनों के अन्तर्गत देश तथा विदेश के श्रमिकों में किसी प्रकार का भेद नहीं किया जाना चाहिए।

(9) श्रम कानूनों के क्रियान्वयन एवं निरीक्षण की पद्धति के अन्तर्गत अधिकारियों की नियुक्तियाँ की जानी चाहिएँ। इनमें स्त्रियों को भी शामिल किया जाना चाहिए।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के पूर्व श्रम दशाओं का नियमन (International Regulations of Labour Conditions Before the I L O)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (I L O) की स्थापना सन् 1919 में की गई थी। इंगलैण्ड में रॉबर्ट ओवन तथा फ्रांस के कुछ अर्थशास्त्रियों ने श्रम दशाओं को नियमित करने हेतु अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों के निर्धारण पर जोर दिया गया था। समय समय पर विभिन्न श्रम विधान संघों की स्थापना की गई थी। सन् 1800 से सन् 1890 की अवधि में श्रम के संरक्षण के विषय में निम्न विषयों पर सहमति प्रकट की गई—

(1) औद्योगिक रोजगार में बच्चों की न्यूनतम आयु 14 वर्ष रखी गयी।

(2) कार्यों के घण्टों का नियमन।

(3) साप्ताहिक।

(4) स्त्रियों और किशोरों को रात्रि में कार्य करने पर प्रतिबन्ध।

(5) श्रमिकों की उनके व्यवसाय सम्बन्धी जोखिमों से रक्षा करना।

सन् 1890 से 1920 की अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के समर्थकों ने निम्न सिद्धान्तों पर सहमति प्रकट की—

(1) श्रम विधानों पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार विनिमय करना।

(2) विभिन्न व्यावसायिक बीमारियों (Occupational Diseases) से श्रमिकों की सुरक्षा।

(3) विदेशी तथा देश के श्रमिकों के साथ सामाजिक बीमा के अन्तर्गत समान व्यवहार किया जाना चाहिए।

(4) स्त्रियों एवं बच्चों के दिन के कार्य की सीमा निर्धारण करना।

(5) बेरोजगारी की समस्या।

(6) बच्चे के जन्म-पूर्व एवं पश्चात् स्त्रियों को रोजगार।

(7) नाविकों की रक्षा।

इस संगठन की स्थापना के पूर्व भी कई श्रम समस्याओं पर विचार किया जाता था। लेकिन इस संगठन की स्थापना के पश्चात् से श्रम समस्याओं को नियमित रूप से एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विचार-विमर्श के लिए रखा जाता है और अन्तर्राष्ट्रीय प्रमाप (International Standards) निर्धारित किए जाते हैं जिससे विभिन्न देशों में श्रमिकों की दशाओं को सुधारा जा सकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

द्वारा कई लोक सम्मतियो (Conventions) एव सिफारिशो को स्वीकार किया जाता है जिसे सदस्य राष्ट्रो द्वारा स्वीकार किया जाता रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के उद्देश्य (Objects of the I L O)

दूसरे महायुद्ध काल म राष्ट्रो का सघ (League of Nations) समाप्त सा ही हो गया था। इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के उद्देश्यो एव लक्ष्यो की परिभाषा द्वारा दी गई थी । सन् 1944 म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference) म फिलाडेल्फिया की घोषणा (Declaration of Philadelphia) की गई। इसमे निम्न कार्यक्रमो से विभिन्न उद्देश्यो की पूर्ति की घोषणा की गई थी–

(1) पूर्ण रोजगार प्राप्त करना।
(2) श्रमिको के जीवन स्तर म वृद्धि करना।
(3) श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधाएँ प्रदान करना।
(4) उचित मजदूरी एव आमदनी की व्यवस्था करना।
(5) कार्य के घण्टे एव अन्य कार्य की दशाओं का निर्धारण करना।
(6) सामूहिक सौदे कारी के अधिकार को मान्यता प्रदान करना।
(7) श्रमिको और मालिको म आपसी सहयोग बढाना।
(8) सामाजिक सुरक्षा के उपायो का विस्तार करना।
(9) श्रमिको क कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था करना।
(10) सभी श्रमिको को शैक्षणिक एव व्यावसायिक अवसरो मे समानता प्रदान की जानी चाहिए।

इसी घोषणा के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के आधारभूत सिद्धान्तो पर पुन विचार करके निम्न सिद्धान्त रखे गए—

(1) श्रम एक वस्तु नहीं है।
(2) उन्नति के लिए बालने तथा सगठन होने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए।
(3) किसी भी जगह की दरिद्रता सभी जगह सम्पन्नता के लिए एक खतरा है।
(4) आवश्यकताओ की पूर्ति हेतु युद्ध-स्तर पर कार्य करना होगा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का सविधान (Constitution of the I L O)

इस सगठन के विभिन्न राष्ट्र सदस्य हैं जिनकी सख्या 124 है। प्रो सक्सेना के अनुसार, 'इस प्रकार यह विभिन्न राष्ट्रो का सगठन है जो कि राष्ट्रो द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त करता है तथा प्रजातान्त्रिक आधारो पर सरकारो, मालिको और श्रम सगठनो के प्रतिनिधियो द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। इसका उद्देश्य विश्व क सभी देशो मे सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करना है और इस उद्देश्य की पूर्ति क लिए श्रमिको तथा उनकी परिस्थितियो से सम्बन्धित तथ्यो का सकलन करता है। उनके लिए न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करता है और यह देखता है कि सदस्य राष्ट्र

मे इसके प्रस्ताव किस सीमा तक लागू किए जाते हैं।"[1] हमारा देश प्रारम्भ से ही इस सगठन का सक्रिय सदस्य रहा है तथा 8 प्रमुख औद्योगिक देशो मे से एक है। सगठन की कुल आय का 5 प्रतिशत से 7 प्रतिशत तक भारत ने अनुदान मे दिया है। भारत का इस सगठन के बजट मे अशदान के रूप मे 7वां स्थान आता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ का संगठन
(Organisation of the I L O)

यह सगठन तीन इकाइयो के माध्यम से कार्य करता है।

(1) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office)
(2) अन्तरग सभा (Governing Body)
(3) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference)

1. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय—यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का सचिवालय है। इसके द्वारा विश्व सूचना केन्द्र तथा प्रकाशन गृह का कार्य किया जाता है। इसके द्वारा श्रम समस्याओ पर अनुसधान एव अध्ययन कार्य किया जाता है। इसमे विभिन्न देशो के विशेषज्ञ कार्य करते है। इनके ज्ञान, अनुभव एव सलाह द्वारा सदस्य राष्ट्र लाभ उठाते हैं। इस कार्यालय का मुख्य अधिकारी डाइरेक्टर जनरल है। यह कार्यालय 'International Labour Review' नामक मासिक पत्रिका, 'Industry & Labour' नामक पाक्षिक पत्रिका तथा अन्य पत्र-पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है। भारत सहित 9 देशो मे इसकी शाखाएँ खुली हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सगठन की भारतीय शाखा दिल्ली मे भी है। यह शाखा एक ओर सरकार, मालिको एव श्रमिको मे समन्वय बनाए रखती है तथा दूसरी ओर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन से सम्बन्ध रखती है। श्रम सूचनाओ के समाशोधन गृह (Clearing House) का कार्य करती है तथा श्रम एव अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की गतिविधियो के विषय मे लाभपूर्ण साहित्य का प्रकाशन भी किया जाता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) की भारतीय शाखा को अप्रैल, 1970 से क्षेत्रीय कार्यालय (Area Office) मे बदल दिया है। यह कार्यालय अब भारत, श्रीलका, नेपाल और मालदिव द्वीपो मे सगठन की गतिविधियो के लिए उत्तरदायी है। मार्च, 1972 से इस क्षेत्र कार्यालय के निदेशक पद पर ब्रिटेन के श्री आर्थर डेनिस ग्रेन्पर कार्य कर रहे हैं।[1]

2. अन्तरंग सभा (Governing Body)—यह सगठन की कार्यकारिणी परिषद् (Executive Council) है। यह कार्यालय के कार्य की सामान्य देखरेख करती है, इसके बजट का निर्धारण करती है। कार्य के प्रभावपूर्ण कार्यक्रमो हेतु नीति निर्धारण का उत्तरदायित्व भी इसी सभा का है। यह औद्योगिक एव विशेषज्ञ समितियो की नियुक्तियां तथा उनके कार्यों के समन्वय का कार्य भी करती है। डाइरेक्टर जनरल का भी यही चुनाव करती है। यह सभा वर्ष मे तीन बार होती है और इसके अध्यक्ष तथा उपाध्यक्ष हर वर्ष चुने जाते हैं। अध्यक्ष का चुनाव सरकारी

1. *Saxena, R. C.*: Labour Problems & Social Welfare, p 650
2 Ibid, p 711.

प्रतिनिधियों द्वारा तथा उपाध्यक्ष का चुनाव श्रमिकों एवं मालिकों के प्रतिनिधियों द्वारा किया जाता है। प्रारम्भ में इसके सदस्यों की संख्या 32 थी। अब यह 48 है। इनमें सरकार, श्रमिकों एवं मालिकों का प्रतिनिधित्व क्रमश 24 12 12 के अनुपात में है। 24 सरकारी प्रतिनिधियों में से 10 सदस्य औद्योगिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण राष्ट्रों द्वारा नियुक्त किए जाते हैं। शेष 14 सदस्यों का चुनाव तीन वर्ष में एक बार होता है। श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव तीन वर्ष के लिए किया जाता है। भारत प्रारम्भ से ही इसका स्थायी सदस्य रहा है।

नई अन्तरंग सभा का चुनाव अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (ILC) के 57वें अधिवेशन में जून, 1972 में हुआ था। यह तीन वर्ष (1972-75) के लिए हुआ था। भारत की ओर से श्री नवल एच टाटा और श्री कान्ति मेहता क्रमश नियोजकों एवं श्रमिकों के प्रतिनिधि चुने गए थे।[1]

3. अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference)—यह श्रम एवं सामाजिक प्रश्नों के लिए विश्व संसद् (World Parliament) का कार्य करता है। यह सम्मेलन प्रतिवर्ष एक बार होता है। प्रत्येक सदस्य राष्ट्र प्रतिवर्ष चार प्रतिनिधि भेजता है। इनमें दो सरकार, एक-एक श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधि होते हैं। इन प्रतिनिधियों को मत देने की पूर्ण सुविधा रहती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन श्रम संघों के अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के प्रतिनिधियों को भी सम्मेलन में उपस्थित होने की छूट दी जाती है। सरकार, श्रमिक एवं मालिकों के प्रतिनिधियों को स्वतन्त्रतापूर्वक मतदान देने की छूट है। यह संगठन की नीति निर्धारण का कार्य भी करती है। यह अभिसमय एवं प्रस्तावों (Conventions and Recommendations) के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तरों (International Labour Standards) की स्थापना का कार्य करता है। इन अभिसमयों (Conventions) और सिफारिशों (Recommendations) को सामूहिक रूप से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता International Labour Code) के नाम से पुकारा जाता है। यह प्रतिवर्ष संगठन के बजट निर्धारण का कार्य भी करता है तथा संगठन के वर्तमान एवं भावी कार्यक्रमों का निर्धारण भी करता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (ILC) के 54वें अधिवेशन में उस समय भारत के राष्ट्रपति श्री वी वी गिरि ने जून, 1970 में भाषण दिया था। श्री गिरि ने निर्धन व धनी व्यक्तियों एवं राष्ट्रों के बीच विद्यमान अन्तर को पाटने पर जोर दिया। इसके साथ ही रोजगार में वृद्धि करने हेतु विकासशील देशों में श्रमगहन तकनीकी एवं रोजगारोन्मुख कृषि औद्योगिक कार्यक्रम अपनाने पर भी बल दिया गया। इस सम्मेलन का 58वाँ अधिवेशन सन् 1973 में हुआ था। अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन का 60वाँ अधिवेशन जून, 1975 में हुआ। इस सम्मेलन में महिलाओं को समान अवसर प्रदान करने सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पास किए गए। इसमें महिलाओं को

1 *Saxena, R C* Labour Problems & Social Welfare, *p* 712.

समान कार्य हेतु समान वेतन, प्रशिक्षण एव मार्गदर्शन मे समान अवसर देने पर जोर दिया है । इस हेतु सभी श्रम कानूनो मे परिवर्तन करने पर बल दिया है ।[1]

अभिसमय एव सिफारिशे
(Conventions and Recommendations)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन मे प्रतिनिधियो के दो तिहाई मतो से प्रस्तावो को दो रूपो मे ग्रहण करने का निर्णय किया जाता है—

1 सिफारिशो (Recommendations) के रूप मे प्रस्ताव सदस्य राष्ट्रो को भेजे जाते हैं जिससे राष्ट्रीय विधान मे इनका उपयोग किया जा सके ।

2. अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमयो (International Conventions)का प्रारूप भेजना जिसे कि सदस्य राष्ट्र प्रमाणित (Ratify) कर सके ।

दोनो ही रूपो मे सदस्य राष्ट्र इस सम्मेलन की समाप्ति के 18 महीने के अन्दर-अन्दर जो भी विषय हो उसे अपने देश की ससद् के सम्मुख पेश करें और इस पर कानून बनाएँ अथवा किसी अन्य रूप मे इसका क्रियान्वयन करे । इस सम्बन्ध मे प्रत्येक सदस्य राष्ट्र द्वारा एक वार्षिक प्रतिवेदन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन(I L.O) को भेजना पडता है । इसमे अभिसमयो तथा सिफारिशो के विषय मे बताना पडता है । किसी भी अभिसमय (Convention) को स्वीकार करने के पूर्व उसे निश्चित करना पडता है और उसके पश्चात् उसका क्रियान्वयन किया जाता है । इसके स्वीकार करने के पश्चात् क्रियान्वयन मे कमी होने पर श्रमिको अथवा नियोजको द्वारा इसकी शिकायत की जा सकती है । इस प्रकार प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को अभिसमय को स्वीकार करने अथवा रद्द करने की पूर्ण स्वतन्त्रता रहती है ।

ये अभिसमय एव सिफारिशे अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर श्रम प्रमापो (Labour Standards) का निर्धारण करती हैं जिससे श्रम विधान बनाए जाते हैं । इनका स्वीकार करना एक लम्बे विचार विमर्श तथा तथ्यो की जाँच करने के पश्चात् होता है । विभिन्न अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनो मे कई अभिसमयो तथा सिफारिशो को ग्रहण किया गया है । अब तक 126 अभिसमयो तथा 127 सिफारिशो को स्वीकार किया गया है । इन अभिसमयो और सिफारिशो मे कार्य के घटे, सवेतन छुट्टियाँ, स्त्रियो का कार्य, बच्चो का सरक्षण, औद्योगिक दुर्घटनाओ से बचाव एव क्षतिपूर्ति, बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था एव मृत्यु हेतु बीमा, न्यूनतम मजदूरी, मजदूरी निर्धारण व्यवस्था रोजगार नीति, श्रम निरीक्षण, औद्योगिक सम्बन्ध, खानो मे रोजगार, सहकारिता, नाविको की दशाएँ, मजुए आदि शामिल किए गए हैं । किसी भी अभिसमय को स्वीकार करते समय उसको पूर्ण रूप से स्वीकार किया जाता है । सिफारिश (Recommendation) को विधिवत् रूप से निश्चित या प्रमाणित नही किया जाता है । यह केवल सदस्य राष्ट्रो के मार्गदर्शन का कार्य करती है जिसे देश के श्रमविधान मे भी स्थान दिया जा सकता है ।

1 Workers, Education, August 1975, p 14

जून 1973 तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के विभिन्न अधिवेशनो मे 138 अभिसमय एव 140 सिफारिशो को ग्रहण किया है ।[1]

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) सयुक्त राष्ट्र सघ (U N O) की एक विशिष्ट सस्था है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की कई समितियाँ भी हैं । इस सगठन का कार्य औद्योगिक समितियों तथा इसी प्रकार की सस्थाओं जैसे विशेषज्ञो एव पत्र-व्यवहार समितियाँ, प्रादेशिक सम्मेलन, परामर्श दाताओं की सूची और अन्य विशेष सभाओं एव सम्मेलनो आदि माध्यम मे भी चलाया जाता है । इस सगठन द्वारा कई उद्योगो मे औद्योगिक समितियाँ (Industrial Committees) बनाई गई हैं जैसे—कोयला खानो, अन्तर्देशीय यातायात, लोहा एव स्पात, धातु व्यापार, सूती वस्त्र, भवन, सिविल इन्जीनियरिंग और सार्वजनिक कार्य, तेल उत्पादन, रासायनिक उद्योग और बागान आदि । ये समितियाँ त्रिपक्षीय (Tripartite) हैं जिनमे सरकार, मालिको और श्रमिको के दो दो प्रतिनिधि शामिल किए जाते हैं ।

प्रादेशिक श्रम सम्मेलन और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (Regional Labour Conferences & the I L O)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा एशियाई देशो म प्रादेशिक सम्मेलनो का आयोजन किया जाता है । अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) के सविधान के अन्तर्गत अभिसमयो (Conventions) और सिफारिशो के निर्धारित करते समय विभिन्न देशो की जलवायु, औद्योगिक सगठन के विकास एव अन्य विशेष परिस्थितियो को ध्यान मे रखते हुए परिवर्तन किया जा सकता है । इसके लिए एशियाई देशो में प्रादेशिक श्रम सम्मेलन समय-समय पर आयोजित किए गए हैं । प्रारम्भ के वर्षों मे कई कारणों से इस प्रकार के सम्मेलनो का आयोजन नही किया जा सका । अमेरिकी राज्यो के प्रादेशिक श्रम सम्मेलन (Regional Labour Conferences of the American States) सन् 1936 एव सन् 1939 मे हुए ।

सन् 1944 मे फिलाडेल्फिया सम्मेलन मे यह प्रस्ताव पास किया गया कि एशियाई प्रादेशिक श्रम सम्मेलन (Asian Regional Labour Conference) बुलाया जाए । सर्वप्रथम इस प्रकार का सम्मेलन सन् 1947 मे भारत सरकार ने नई दिल्ली मे बुलाया । इस सम्मेलन मे अफगानिस्तान, आस्ट्रेलिया, ब्रह्मा, श्री लका, कोचीन चीन, फ्रांस, इग्लैण्ड, मलाया, इण्डो चीन, नीदरलैण्ड, न्यूजीलैण्ड, स्याम, सिंगापुर, भारत और पाकिस्तान के प्रतिनिधि-मण्डलो ने भाग लिया । इस सम्मेलन मे 23 प्रस्तावो को पास किया गया । जिनमे सामाजिक सुरक्षा, श्रम नीति, उत्पादक दक्षता, कृषि उत्पादन और सहकारी प्रणाली का महत्त्व, रोजगार सेवाएँ, परिवार बजट जाँच, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के एशियाई कार्य मे वृद्धि, त्रिपक्षीय व्यवस्था एव अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन के सामाजिक उद्देश्य आदि थे ।

1. *Saxena, R C* . Labour Problems & Social Welfare, p 714

दूसरा एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन (Second Asian Regional Conference) सन् 1950 मे श्रीलका मे हुआ। भारत ने एक त्रिपक्षीय प्रतिनिधि मण्डल भेजा जिसने एशियाई कार्य मे वृद्धि करने हेतु प्रस्ताव पास किए। अन्तरग सभा Governing Body) मे एशियाई प्रतिनिधित्व, तकनीकी सहायता, श्रम निरीक्षण, सहकारिता आन्दोलन श्रमिको का कल्याण, कृषि श्रमिको और उनकी मजदूरी, मानव शक्ति सगठन इत्यादि प्रस्तावो को ग्रहण किया गया।

तीसरा एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन (Third Asian Regional Conference) सन् 1953 मे टोकियो मे हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) के डाइरेक्टर जनरल की रिपोर्ट पर विचार किया गया। इस सम्मेलन मे तीन विषयो पर विचार किया गया और प्रस्ताव पास किए गए। इनमे एशियाई देशो मे मजदूरी नीति, श्रमिको की आवास समस्याएँ और किशोर श्रमिको का सरक्षण आदि मुख्य प्रस्ताव थे।

चतुर्थ एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन (Fourth Asian Regional Conferences) सन् 1957 मे भारत मे नई दिल्ली मे हुआ। इसम एशियाई देशो मे छोटे पैमाने और हस्तकला उद्योगो की श्रम एव सामाजिक समस्याएँ, बँटाइदारो, कृषको तथा अन्य कृषि श्रमिको के जीवन एव कार्य की दशाएँ और श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध आदि पर विचार किया गया।

पाँचवाँ एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन (Fifth Asian Regional Conference) मेलबोर्न मे सन् 1962 मे हुआ। इस सम्मेलन मे निम्न प्रस्ताव पास किए गए—

(1) मानव शक्ति साधनो के अपव्यय को रोक कर रोजगार को प्रोत्साहन देना और आर्थिक विकास के लिए मानवीय साधनो का अधिकतम उपयोग करना।
(2) व्यावसायिक प्रशिक्षण एव प्रबन्ध विकास।
(3) श्रम प्रबन्ध सम्बन्धो को सुधारने एव विवादो के निपटारे हेतु सरकारी सेवाएँ।

भारत अपने प्रतिनिधि मण्डल को नही भेज सका क्योकि चीनी आक्रमण से देश मे सकटकालीन स्थिति लागू थी।

सन् 1966 मे एशियाई श्रम मन्त्रियो का एक सम्मेलन मनीला मे सम्पन्न हुआ। इस सम्मेलन मे 13 देशो द्वारा प्रतिनिधित्व किया गया। इस सम्मेलन मे श्रम कल्याण, मानव शक्ति नियोजन एव आर्थिक विकास आदि विषयो पर एशियाई देशो द्वारा पारस्परिक परामर्श एव सहायता देने की आवश्यकता पर विचार किया गया।

छठा एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन टोकियो मे 2 सितम्बर से 13 सितम्बर, 1968 तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा आयोजित किया गया। भारत की ओर से त्रिपक्षीय प्रतिनिधि मण्डल का नेतृत्व केन्द्रीय श्रम मन्त्री ने किया। इस सम्मेलन का मुख्य निर्णय एशियाई देशो मे उत्पादक रोजगार प्रदान करने हेतु एशियाई मानव शक्ति योजना (Asian [illegible] Pla[illegible]) का निर्माण एव लागू करना था।

सातवाँ एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन ईरान की राजधानी तेहरान मे 4 नवम्बर से 15 नवम्बर, 1971 तक हुआ। इस सम्मेलन म एशियाई देशो से मानव शक्ति योजना के प्रभावपूर्ण क्रियान्वयन करने हेतु उनके सहयोग की अपेक्षा की गई। साथ ही विकसित देशो को इस उद्देश्य हेतु सहायता देने की ओर भी उनका ध्यान आकर्षित किया गया। नियोक्ता एव श्रमिक सघो के सगठन पर पूर्ण रूप से प्रतिबन्ध हटाने की भी सिफारिश की गई। विभिन्न अभिसमयो एव सिफारिशो को ग्रहण करने पर भी जोर दिया गया।

फिलीपाइन्स सरकार के अथक प्रयासो से एशियाई देशो के श्रम मन्त्रियो के सम्मेलन भी मनीला मे सन् 1966 से निरन्तर हो रहे हैं। चौथा सम्मेलन अक्तूबर 1973 म हुआ था।

मार्च 1971 मे नई दिल्ली मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की समीनार जनसख्या और परिवार नियोजन पर हुई तथा नवम्बर 1971 म औद्योगिक सम्बन्ध तथा ग्रामीण सस्थाओ एव विकास विषय पर भी सेमीनार नई दिल्ली म हुई।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा विभिन्न एशियाई देशो मे कई मिशन सम्मेलनो हेतु तथ्य सग्रह करने सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन सामाजिक सुरक्षा पर सलाह देना मानव शक्ति उत्पादकता प्रशिक्षण आदि विषयो म तकनीकी सहायता देने की आवश्यकता की जाच करना आदि हेतु भेजे गए। विभिन्न एशियाई देशो हेतु छात्रवृत्तिया भी दी गई।

एशियाई श्रमिको के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी शुरू किए गए हैं। सन् 1949 मे भारत मे बैंगलोर म एशियाई मानव शक्ति क्षेत्र कार्यालय की स्थापना की गई है। यह कार्यालय एशियाई एव सुदूर पूर्वी देशो मे तकनीकी प्रशिक्षण कार्यक्रमो हेतु तकनीकी सहायता प्रदान करता है। इसके द्वारा तकनीकी प्रशिक्षण पर अनुसधान एव सूचना केन्द्र का कार्य भी किया जाता है। उद्योग मे प्रशिक्षण (Training within Industry) के दो सत्र भारतीयो के लिए आयोजित किए जा चुके हैं।

भारत सरकार को तकनीकी सलाह एव विभिन्न समस्याओ मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा मदद भी दी गई है। सन् 1953 मे कर्मचारी राज्य बीमा योजना के सगठन तथा चिकित्सा लाभो के विषय मे तीन विशेषज्ञो की सेवाएँ भारत को प्राप्त हुई।

प्रादेशिक सम्मेलनो का बडा महत्त्व है क्योकि विभिन्न देशो की आर्थिक सामाजिक एव भौगोलिक परिस्थितियाँ भिन्न भिन्न हैं। इन परिस्थितियो के अनुसार ही अभिसमयो (Conventions) और सिफारिशो (Recommendations) मे परिवर्तन करके ग्रहण किया जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन अभिसमय और भारत (I L O Conventions and India)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा समय-समय पर विभिन्न अभिसमयो और सिफारिशो की सदस्य राष्ट्रों द्वारा स्वीकार करने के लिए प्रस्ताव पास किए गए।

जनवरी, 1974 तक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा 134 अभिसमयो (Conventions) को ग्रहण किया गया है। 124 सदस्य देशो द्वारा 3987 की सख्या मे इनको स्वीकार किया है जिनका औसत प्रति सदस्य राष्ट्र 32 है। भारत ने 30 अभिसमयो को स्वीकार किया है जो कि लगभग औसत के बराबर है।[1] भारत द्वारा स्वीकृत अभिसमयो को विषयानुसार प्रस्तुत किया जा सकता है—

क स	विषय	अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा ग्रहण अभिसमयों की सख्या	भारत द्वारा स्वीकृत अभिसमय की सख्या
1	मान्य अधिकार	8	4
2	श्रम प्रशासन	4	1
3	मानवीय साधनो का विकास	5	2
4	रोजगार की सामान्य दशाएँ	26	3
5	औद्योगिक सम्बन्ध	—	—
6	शिशुओ एव नवयुवको का रोजगार	12	3
7	महिलाओ को रोजगार	6	4
8	औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एव कल्याण	9	2
9	सामाजिक सुरक्षा	20	4
10	प्रवासिता	3	1
11	समुद्र सम्बन्धी	34	3
12	घरेलू व अन जाति जनसख्या	6	1
13	सामाजिक नीति (सामान्य)	2	—
14	बागान	1	—
	कुल योग	136	28

Source—I L O Conventions & India by *N Vaidhyanathan* 1975 p 51

अभिसमयो मे समय-तत्त्व के अनुसार स्वीकृति

क स	अवधि	अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा पारित अभिसमयो की सख्या	भारत द्वारा स्वीकृत अभिसमयो की सख्या
1	1919–28	26	11
2	1929–38	37	4
3	1939–48	27	2
4	1949–58	21	8
5	1959–68	17	5
6	1969–73	10	—
	कुल योग	138	30

Source—I L O Conventions & India by *N Vaidhyanathan*, 1975 p 35

1 I L O Conventions & India by *N Vaidhyanathan*, 1975, p 34

पूर्वोक्त तालिका को देखने पर पता चलता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा ग्रहण की गई अभिसमयो की संख्या भी घट रही है तथा भारत द्वारा स्वीकृत अभिसमयों की संख्या भी उत्तरोत्तर घट रही है। इससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमयो का भारत के श्रम विधान पर कोई प्रत्यक्ष महत्त्वपूर्ण प्रभाव नही पड रहा है। यह अप्रत्यक्ष रूप से ही प्रभावित हो रहा है।

कुछ मुख्य अभिसमय निम्न प्रकार से है—

(1) कार्य के घण्टे (Hours of Work) सम्बन्धी अभिसमय मे प्रतिदिन 8 घण्टे तथा साप्ताहिक 48 घण्ट रखे गए हैं। यह सन् 1919 मे स्वीकार किए गए।
(2) रात्रि मे महिला श्रमिको के रोजगार पर प्रतिबन्ध लगाया गया।
(3) बाल श्रमिको के रात्रि कार्य पर रोक लगाई गई। 14 वर्ष से कम आयु के श्रमिको को रोजगार नही दिया जाएगा।
(4) कृषि श्रमिकों को संगठन के अधिकार प्रदान किए गए।
(5) साप्ताहिक छुट्टी सम्बन्धी अभिसमय।
(6) समुद्र पर नियोजित बालको एव किशोर श्रमिको की अनिवार्य चिकित्सा।
(7) व्यावसायिक बीमारियो हेतु श्रमिको की क्षतिपूर्ति।
(8) राष्ट्रीय एव विदेशी श्रमिको को दुर्घटना मे क्षतिपूर्ति देने मे समानता।
(9) जहाज के मालिको और श्रमिको के बीच समझौता सम्बन्धी अभिसमय।
(10) जलयानो द्वारा ढोये जाने वाले भारी पैकिटो पर भार अंकित करना।
(11) जहाजो पर भार चढाने तथा उतारने पर दुर्घटना होने पर क्षतिपूर्ति।
(12) रात्रि मे महिला श्रमिको के रोजगार पर प्रतिबन्ध।
(13) खानो के अन्दर महिला श्रमिको के रोजगार पर प्रतिबन्ध।
(14) श्रम निरीक्षण सम्बन्धी अभिसमय।
(15) रात्रि मे किशोरों को रोजगार न देना।
(16) न्यूनतम मजदूरी निर्धारण सम्बन्धी अभिसमय।
(17) न्यूनतम आयु सम्बन्धी अभिसमय।
(18) पुरुषो एव महिला श्रमिको को कार्य के लिए समान मजदूरी देना।
(19) रोजगार सेवा के संगठन सम्बन्धी अभिसमय।
(20) रोजगार एव व्यवस्था सम्बन्धी विभेदकारी अभिसमय।
(21) संशोधित श्रमिक क्षतिपूर्ति (व्यावसायिक बीमारियाँ) संबंधी अभिसमय।
(22) सामाजिक सुरक्षा मे राष्ट्रीय तथा गैर-राष्ट्रीय श्रमिको को समानता का व्यवहार सम्बन्धी अभिसमय।

इन अभिसमयो के कारण कारखाना अधिनियम मे कार्य के घण्टो, रात्रि मे महिला-श्रमिकों को रोजगार और साप्ताहिक छुट्टियाँ आदि मे संशोधन किया गया। इसी प्रकार भारत में अन्य अधिनियमों जैसे भारतीय खान अधिनियम, रेल्वे अधिनियम और श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम मे संशोधन किए गए।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन और श्रम विधान (International Labour Organisation & Labour Legislation)—भारतीय श्रम विधान पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का काफी प्रभाव पडा है। कई बार इस सगठन द्वारा प्रस्तावित अभिसमयो (Conventions) को भारत ने स्वीकार किया है तथा इनसे कई अधिनियमो मे भी सशोधन किए गए हैं। शाही श्रम आयोग, 1931 (Royal Commission on Labour) के अनुसार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा भारतीय श्रम विधान को प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित किया है। इससे श्रम मामलो को लेकर काफी सामाजिक प्रगति को प्रोत्साहन मिला है। जिन अभिसमयो को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन द्वारा प्रस्तावित किया है और भारत ने उन्हे स्वीकार भी नही किया है फिर भी उनका प्रभाव बडी मात्रा मे श्रम विधान पर पडा है। उदाहरणार्थ क्षतिपूर्ति अधिनियम 1923, कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम 1948, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम 1948, कारखाना अधिनियम 1948, खान अधिनियम 1952 आदि कई श्रम विधानो के पास होने तथा उनमे समय समय पर सशोधन करने का कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का अभिसमयो तथा सिफारिशो के रूप मे रखे गए प्रस्तावो का परिणाम है। मातृत्व लाभ अधिनियम 1961 भी इसी का परिणाम है। रात्रि मे स्त्रियो तथा बालको के रोजगार पर प्रतिबन्ध न्यूनतम आयु निश्चित करना, न्यूनतम कार्य के घण्टे निर्धारित करना, सवेतन छुट्टियाँ, औद्योगिक बीमारियो व दुर्घटनाओ म श्रमिको को क्षतिपूर्ति देना खानो के अन्दर महिला श्रमिकों के कार्य पर प्रतिबन्ध भारतीय रेल अधिनियम मे सशोधन करके कार्य के घण्टो तथा साप्ताहिक अवकाश का निर्धारण आदि भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का परिणाम है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन और श्रम संघ आन्दोलन (International Labour Organisation & Trade Union Movement)—भारतीय श्रम सघ आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L O) ने प्रभावित किया है। भारतीय श्रम सघ आन्दोलन के इतिहास से हमे पता चलता है कि प्रथम महायुद्ध काल (1914–18) तथा उसके पश्चात् से इस आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान करने मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन की स्थापना (1919) ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। इसकी स्थापना से श्रमिको मे सुरक्षा एव एकता की भावना जाग्रत हुई है। श्रमिक वर्ग मे अपने अधिकारो एव उत्तरदायित्वो के बारे मे चेतना उत्पन्न हुई। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (I L C) में श्रमिक सघो के प्रतिनिधि मण्डल जाने लगे और इससे उनकी असहाय अवस्था वाली भावना धीरे धीरे समाप्त होने लगी। हमारे देश मे प्रारम्भ मे राष्ट्रीय स्तर के श्रम सगठनो का निर्माण अन्तर्राष्ट्रीय सगठनो मे श्रमिको के प्रतिनिधित्व करने हेतु किया गया। श्रम सघवाद के विषय मे प्रशिक्षण हेतु भारतीय श्रमिक विभिन्न देशो में गए। इसके अतिरिक्त श्रम सघवाद मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन (I L C.) के विशेषज्ञो की सेवाएँ भी प्राप्त हुईं। भारत मे सर्वप्रथम सन् 1947 मे नई दिल्ली मे एशियाई श्रम सघो का प्रादेशिक सम्मेलन हुआ। इससे भी भारतीय श्रम सघ आन्दोलन को प्रेरणा मिली।

इस अन्तर्राष्ट्रीय सगठन द्वारा श्रमिकों, मालिकों और सरकार के प्रतिनिधियों के माध्यम से सामाजिक न्याय पर आधारित विश्व शान्ति की स्थापना हुई है। यह अन्तर्राष्ट्रीय सगठन निम्न तीन रूपो मे महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहा है—

(1) श्रमिकों की दशाओं में सुधार करना,
(2) जीवन स्तर मे उन्नति करना,
(3) आर्थिक एव सामाजिक स्थिरता को प्रोत्साहन देना।

यह सगठन एक तथ्य अन्वेषण सस्था के रूप म कार्य करता है। विभिन्न सामाजिक एव श्रम विषयो पर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अध्ययन करता है और इस विषय मे व्यावहारिक सूचनाओं को प्रकाशित किया जाता है। विभिन्न श्रम समस्याओं को किस प्रकार हल किया जाए इस विषय पर विभिन्न राष्ट्रों के विशेषज्ञ तथा सरकार, मालिक व श्रमिकों के प्रतिनिधियों के विचारों को प्रकाशित किया जाता है। कुशल मानव शक्ति, बेरोजगारी, अर्द्ध-बेरोजगारी, श्रम नियोजन, श्रमिकों के श्रम सघ बनाने के अधिकार, सामाजिक सुरक्षा कार्य की दशाएँ एव औद्योगिक कल्याण आदि से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर विचार करके रिपोर्ट प्रकाशित की जाती है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जो कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का एक स्थायी सचिवालय है। इसके द्वारा सदस्य राष्ट्रों को सामाजिक विधान या सगठन के सम्बन्ध मे आवश्यक ज्ञान, सलाह एव व्यावहारिक सहायता प्रदान की जाती है। यह सगठन अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक न्याय पर आधारित सामाजिक प्रगति को प्रोत्साहन देने का कार्य करता है।

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन एक गतिशील सगठन है जिसके द्वारा विभिन्न नीतियों तथा कार्यक्रमों का निर्धारण किया जाता है। यह श्रमिकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तरों को निर्धारण करके इनके साथ उचित व्यवहार को प्रोत्साहन देता है। यह सदस्य राष्ट्रों की आवश्यकताओं के अनुसार अपनी गतिविधियो म परिवर्तन कर लेता है। अब इस सगठन द्वारा कई महत्त्वपूर्ण समस्याओं पर ध्यान दिया जाने लगा है जैसे—पूर्ण रोजगार, उत्पादकता, मानव शक्ति का अनुमान एव रोजगार सूचना, व्यावसायिक प्रशिक्षण, तकनीकी सहायता, ग्रामीण विकास, कृषि श्रम, मजदूरी और निर्वाह लागत, सामाजिक सुरक्षा, श्रम प्रशासन, श्रमिकों की शिक्षा श्रम प्रबन्ध सम्बन्ध, श्रम अनुसधान, व्यावसायिक सुरक्षा एव स्वास्थ्य आदि।

भारत शुरू से ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का सदस्य रहा है। विभिन्न सगठनो तथा समितियों मे भी भारत ने भाग लिया है और इसके वित्त प्रदान करने मे भी इसका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। भारतीय श्रम विधान मे अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सगठन का महत्त्वपूर्ण प्रभाव पडा है। विभिन्न अभिसमयो तथा सिफारिशों को भारत द्वारा स्वीकार करके सामाजिक प्रगति मे एक नया अध्याय जोड दिया गया है। भारतीय श्रमिक वर्ग मे उनके अधिकारो एव उत्तरदायित्वों को जानने मे इस सगठन ने महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

12 राजस्थान में औद्योगिक सम्बन्ध

(Industrial Relations in Rajasthan)

राजस्थान एक राज्य है। इसके निर्माण, विकास एव सचालन का प्रमुख आधार श्रम है। देश के योजनाबद्ध आर्थिक विकास के लिए एक उचित श्रम नीति का होना परमावश्यक है। उचित श्रम नीति वह नीति है जो उद्योग एव श्रम की आवश्यकता के अनुरूप हो। एक राष्ट्रीय श्रम नीति के अन्तर्गत श्रम अधिनियमो का प्रभावपूर्ण सचालन, औद्योगिक विवादो का निपटारा अनुशासन सहिता द्वारा उद्योगो मे स्वच्छ वातावरण बनाए रखना, औद्योगिक शान्ति स्थापित करना एव उत्पादन मे वृद्धि करना आदि प्रमुख तत्व शामिल किए जाते है।[1]

सभी राज्यो की भाँति राजस्थान मे भी श्रम कानूनो एव कल्याणकारी क्रियाओ के प्रशासन हेतु श्रम विभाग मे श्रम आयुक्त (Labour Commissioner) नियुक्त किया जाता है। यह रोजगार एव श्रम विभाग का विभागाध्यक्ष है। इसके नीचे सयुक्त श्रम आयुक्त (Joint Labour Commissioner), उप-श्रम आयुक्त (Dy Labour Commissioner), सहायक श्रम आयुक्त, प्रादेशिक श्रम आयुक्त, प्रादेशिक उप-श्रम आयुक्त, श्रम कल्याण अधिकारी, कार्मिक अधिकारी (Personnel Officer) एव श्रम निरीक्षक आदि अधिकारी कार्य करते है। समस्त राज्य को श्रम कानूनो एव कल्याण कार्यों के प्रशासन हेतु 8 भागो मे विभाजित कर रखा है। इन स्थानो पर प्रादेशिक सहायक श्रम आयुक्त तथा उप प्रादेशिक श्रम आयुक्त नियुक्त कर रखे हैं जो अपने क्षेत्र मे विभागाध्यक्ष का कार्य देखते हैं और उनके नीचे श्रम कल्याण अधिकारी तथा श्रम निरीक्षक कार्य करते हैं। ये आठ कार्यालय उदयपुर, भीलवाडा, अजमेर, जोधपुर, बीकानेर, जयपुर और कोटा मे स्थित है। कारखाना अधिनियम 1948 के प्रशासन हेतु मुख्य कारखाना निरीक्षक (Chief Inspector of Factories) नियुक्त किया गया है जो कि कारखाना एव वाष्प यन्त्र का विभागाध्यक्ष (Head of the Factories and Boilers Deptt.) होता है। इसके अधीन वरिष्ठ निरीक्षक तथा निरीक्षक कार्य करते है। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 के अन्तर्गत विभिन्न क्षेत्रीय श्रम आयुक्तो को आयुक्त (Commissioner) नियुक्त कर रखा है तथा भारतीय श्रम सघ अधिनियम, 1926 के प्रशासन हेतु

1. श्रम विभाग की प्रमुख गतिविधियाँ (1974-75), श्रम आयुक्त कार्यालय, राजस्थान, जयपुर फरवरी, 1975 पर आधारित।

रजिस्ट्रार ऑफ ट्रेड यूनियन नियुक्त कर रखा है। यह संयुक्त श्रम आयुक्त अथवा उप-श्रम आयुक्त होता है।

श्रम आयुक्त समस्त राज्य के लिए किसी भी विवाद मे समझौता अधिकारी होता है तथा प्रादेशिक श्रम आयुक्त अपने-अपने क्षेत्र मे समझौता अधिकारी का कार्य करते हैं। श्रम निरीक्षक भी अपने क्षेत्र का समझौता अधिकारी होता है।

श्रम निरीक्षक (Labour Inspector) सबसे नीचे का अधिकारी होता है। वह अपने क्षेत्र मे किसी भी उत्पन्न विवाद का समझौता अधिकारी नही होता है बल्कि वह विभिन्न श्रम कानूनो के अन्तर्गत निरीक्षण का कार्य भी करता है तथा उनकी अनुपालना हेतु उचित कार्यवाही करता है। किसी भी अधिनियम के क्रियान्वयन मे पाए जाने वाले उल्लघन हेतु वह सम्बन्धित क्षेत्र के श्रम आयुक्त अथवा एस डी एम की अदालत मे चालान पेश करता है। न्यूनतम वेतन अधिनियम 1948, राजस्थान दूकान एव वाणिज्य सस्थान अधिनियम 1958 औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946, राजस्थान औद्योगिक स्थापना (राष्ट्रीय अवकाश दिन अनुपालन) विधेयक, राजस्थान आकस्मिक छुट्टियाँ विधेयक, औद्योगिक विवाद अधिनियम 1947, वेतन भुगतान अधिनियम 1936 बोनस भुगतान अधिनियम 1965, बीडी सिगार श्रमिक अधिनियम 1966, मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम 1961, ठेका श्रम (उन्मूलन एव विनिमय) अधिनियम 1970, श्रमिक सघ अधिनियम, 1926, ग्रेच्यूटी अदायगी अधिनियम, 1972 आदि श्रम कानूनो के अन्तर्गत निरीक्षण किया जाता है।

वेतन भुगतान अधिनियम 1936 (Payment of Wages Act of 1936) के अन्तर्गत श्रमिको को नियमित रूप से तथा बिना किसी कटौती के वेतन प्रदान करवाने की व्यवस्था है। इस अधिनियम के अन्तर्गत क्षेत्रीय उप-श्रम आयुक्तो (Regional Dy Labour Commissioners) एव क्षेत्रीय सहायक श्रम आयुक्तो (Regional Assistant Labour Commissioners) को प्राधिकारी (Authority) नियुक्त कर रखा है जो इस अधिनियम से सम्बन्धित विवादो को निपटाने का कार्य करते हैं। श्रम निरीक्षक निरीक्षण का कार्य तथा वाद प्रस्तुत करने का कार्य करते हैं।

न्यूनतम वेतन अधिनियम, 1948 (Minimum Wages Act of 1948) के अन्तर्गत राज्य सरकार द्वारा घोषित अनुसूचित सस्थानो मे कार्य करने वाले श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी दिलाई जाती है। इसकी अनुपालना के लिए श्रम निरीक्षक नियुक्त किए जाते हैं तथा इनसे सम्बन्धित विवादो के निपटारे हेतु क्षेत्रीय उप/सहायक श्रम आयुक्तो को प्राधिकारी नियुक्त किया गया है।

नवीन आर्थिक कार्यक्रम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी अधिनियम मे राज्य सरकार ने सशोधन किया है। इसके अन्तर्गत कृषि श्रमिको को न्यूनतम मजदूरी दर सूखे क्षेत्र में 4 25 रुपये, सिंचित क्षेत्र मे 5 रुपये तथा मुख्य सिंचाई परियोजना के इलाको मे 6 रुपये दी जाएगी। इसके साथ ही विकास अधिकारियों (B D O's)

को न्यूनतम मजदूरी तथा मजदूरी भुगतान प्राधिकारी के रूप में अधिकार प्रदान कर दिए हैं। यह भी सरकार द्वारा एक सराहनीय कदम उठाया गया है। इससे कृषि श्रमिकों को शोषण से बचाया जा सकेगा। इस सबके लिए राज्य सरकार ने मजदूरी कानून (राजस्थान संशोधन) अध्यादेश, 1975 (6 सितम्बर, 1975) को जारी कर दिया है।[1]

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, 1923 (Workmen's Compensation Act of 1923) के अन्तर्गत श्रमिकों को जो कार्य करते समय यदि घायल हो जाते हैं अथवा जिनकी मृत्यु हो जाती है, उन्हें अथवा उनके आश्रितों को क्षतिपूर्ति दी जाती है। इस अधिनियम के अन्तर्गत श्रम आयुक्त के अतिरिक्त सभी उप/सहायक श्रम आयुक्तों को क्षतिपूर्ति आयुक्त (Compensation Commissioner) नियुक्त कर रखा है। ये ही इससे सम्बन्धित मामलों का निपटारा करते हैं।

बोनस भुगतान अधिनियम 1965 (Payment of Bonus Act of 1965) के अन्तर्गत श्रमिकों को लाभ हानि के अनुरूप न्यूनतम एवं अधिकतम बोनस के वितरण का प्रावधान है। श्रम निरीक्षकों द्वारा इस अधिनियम की सुचारु रूप से परिपालना करवाई जाती है। इससे सम्बन्धित विवाद SDM s के समक्ष श्रम निरीक्षकों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं।

बीड़ी सिगार श्रमिक अधिनियम, 1966 (*Biri Cigar Workers' Act of 1966*) के अन्तर्गत श्रम निरीक्षकों की नियुक्तियां की गई हैं। सभी प्रादेशिक सहायक/उप श्रम आयुक्तों को इस अधिनियम के अन्तर्गत प्राधिकारी नियुक्त किया गया है।

मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम, 1961 (Motor Transport Workers' Act of 1961) सभी मोटर संस्थान जिनमें 2 या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते है पर लागू होता है। इसकी परिपालना हेतु श्रम निरीक्षक नियुक्त किए गए हैं। संस्थानों के पंजीयन हेतु मुख्य निरीक्षक (Chief Inspector) नियुक्त किया गया है जो कि उप श्रम आयुक्त होता है। इससे सम्बन्धित विवाद SDM's के समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं।

दुकान एवं वाणिज्य संस्थान अधिनियम, 1958 (Shops and Commercial Establishment Act of 1958) की परिपालना हेतु श्रम निरीक्षक नियुक्त किए गए हैं।

ठेका श्रम (उन्मूलन एवं नियमन) अधिनियम, 1970 (Contract Labour Abolition and Regulation Act of 1970) के अन्तर्गत ठेकेदारों को उप/सहायक श्रम आयुक्तों से पंजीयन तथा लाइसेंस लेना पड़ता है जो कि ठेके द्वारा कार्य करते हैं। अधिनियम की परिपालना हेतु प्रत्येक क्षेत्र में श्रम निरीक्षकों को निरीक्षण के अधिकार दिए गए हैं।

1 New Economic Programme and Rajasthan Directorate of Public Relations, Rajasthan, December 1975 p 16

श्रमिक सघ अधिनियम 1926 (Trade Unions Act of 1926) के अन्तर्गत श्रम सघो का पजीयन किया जाता है तथा निरीक्षण का कार्य भी किया जाता है। इसके रजिस्ट्रार सयुक्त श्रम आयुक्त अथवा उप श्रम आयुक्त होता है।

औद्योगिक नियोजन (स्थायी आदेश) अधिनियम 1946 (Industrial Employment Standing Orders Act of 1946) के अन्तर्गत 100 या इससे अधिक कार्यशील श्रमिको वाले सस्थानो मे स्थायी आदेशो के प्रमाणीकरण करवाने की व्यवस्था है। इसके लिए प्रमाणीकरण अधिकारी (Certifying Officer) राज्य सरकार द्वारा नियुक्त किया जाता है। राज्य के सयुक्त श्रम आयुक्त ही प्रमाणीकरण अधिकारी का कार्य करते हैं।

ग्रेच्यूटी अदायगी अधिनियम, 1972 (Gratuity Payment Act of 1972) के अन्तर्गत कारखाना एव व्यावसायिक सस्थानो मे जिनमे 10 या इससे अधिक श्रमिक/कर्मचारी कार्य करते हैं, सेवा निवृत्ति या सेवा से त्याग-पत्र के साथ यदि उससे 50 वर्ष या इससे अधिक का सेवाकाल पूरा कर लिया हो तो ग्रेच्यूटी के रूप मे प्रत्येक वर्ष की सेवाकाल मे 15 दिन का वेतन देना होगा जो अधिक से अधिक 20 माह के पूरे वेतन तक होगा। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार ने प्रत्येक क्षेत्रीय उप श्रम आयुक्त एव सहायक श्रम आयुक्तो को नियन्त्रण अधिकारी (Controlling Officer) नियुक्त किया है। वर्तमान समय मे सयुक्त श्रम आयुक्त (Joint Labour Commissioner), राजस्थान को अपीलीय प्राधिकारी (Appellate Authority) नियुक्त किया गया है।

औद्योगिक सम्बन्धो की समीक्षा[1]

अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो की कसौटी मानव दिनो की हानि से सम्बन्धित आँकडे हैं। राज्य मे औद्योगिक सम्बन्धो के निर्माण तथा औद्योगिक झगडो को निपटाने हेतु औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत व्यवस्था की गई है। कार्य समितियाँ (Works Committees) औद्योगिक विवादो को रोकने, निपटाने एव शान्ति बनाए रखने मे महत्त्वपूर्ण कार्य करती है। इसके अतिरिक्त समझौता अधिकारी ऐच्छिक एव अनिवार्य पचनिर्णय, श्रम न्यायालय एव औद्योगिक न्यायालय इत्यादि का भी इस अधिनियम के अन्तर्गत प्रावधान है। राज्य का श्रम विभाग हमेशा इस दिशा की ओर प्रयत्नशील है कि समस्त औद्योगिक विवादो का निपटारा आपसी वार्ता अथवा समझौते द्वारा किया गया। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु श्रम विभाग के अधिकारी समझौता अधिकारी नियुक्त किए गए हैं। समझौता अधिकारी द्वारा विवादो के निपटारा न होने पर औद्योगिक विवाद अधिनियम, 1947 की धारा 12(4) के अन्तर्गत असफलता प्रतिवेदन राज्य सरकार को भेज दिया जाता है। राज्य सरकार इस पर विचार करके इस विवाद को श्रम न्यायालय अथवा औद्योगिक न्यायालय को सौंप

1 श्रम विभाग की प्रमुख गतिविधियाँ (1974-75), श्रम आयुक्त कार्यालय, राजस्थान, जयपुर, फरवरी, 1975

सकती है अथवा नही भी सौंप सकती है। श्रम न्यायालय तथा औद्योगिक न्यायालय द्वारा इन विवादो पर अवार्ड दिए जाते हैं जिन्हे श्रम विभाग लागू करवाता है। अच्छे एव सुदृढ औद्योगिक सम्बन्ध बनाने हेतु श्रम विभाग दोनो पक्षो को अपने आपसी विवादो को निबटाने हेतु पच फैसले द्वारा निर्णय करवाने की सलाह भी देता है। पच फैसला ऐच्छिक तथा अनिवार्य दोनो प्रकार का हो सकता है।

सन् 1973 मे राज्य के विभिन्न औद्योगिक सस्थानो मे हडतालो की सख्या 30 थी। इन हडतालो से इस वर्ष में कुल 1 71,638 मानव दिनो की हानि हुई थी। इस वर्ष की तुलना मे सन् 1974 मे हडतालो की सख्या 45 हो गई तथा मानव दिनों की क्षति 1 65 192 हुई। अत सन् 1973 की तुलना मे सन् 1974 मे हडतालो की सख्या बढी है, लेकिन मानव दिनो की क्षति कम हुई है।

राज्य सरकार द्वारा औद्योगिक विवादो को समझौतावार्ता से निबटाने की पद्धति पर जोर दिया गया है। इस पद्धति को सुदृढ करने हेतु प्रादेशिक उप श्रम आयुक्त जयपुर के कार्यालय मे सहायक श्रम आयुक्त तथा अन्य उप श्रम आयुक्तो (जोधपुर कोटा तथा उदयपुर) के कार्यालय मे श्रम कल्याण अधिकारियो को समझौता अधिकारी (Conciliation Officer) नियुक्त किया गया है। इससे वे औद्योगिक विवादो के निबटारे पर अधिक ध्यान दे सकेंगे। सन् 1978 मे समझौता वार्ता द्वारा 229 विवादो को निबटाया गया तथा सन् 1974 मे इनकी सख्या बढकर 371 हो गई।

1 जनवरी, 1973 तक कुल 307 विवाद न्यायाधिकरण (Adjudications) हेतु प्रस्तुत किए गए थे जिनमे 126 विवाद सार्वजनिक क्षेत्र तथा 181 निजी क्षेत्र मे थे। जिन विवादो को रेफरेन्स के योग्य नहीं समझा गया था उनकी सख्या 155 थी। इनमे 90 विवाद सार्वजनिक क्षेत्र तथा 65 विवाद निजी क्षेत्र मे थे। इसी प्रकार जनवरी 1974 से दिसम्बर 1974 तक कुल 436 विवाद न्यायाधिकरण हेतु प्रस्तुत किए गए। इनमे 179 विवाद सार्वजनिक क्षेत्र मे तथा 257 विवाद निजी क्षेत्र के थे। जिन विवादो को रेफरेन्स के योग्य नही समझा गया उनकी सख्या 137 (60 विवाद सार्वजनिक क्षेत्र मे और 77 निजी क्षेत्र मे) थे।

औद्योगिक न्यायाधिकरण (Industrial Tribunal) के समक्ष सन् 1973 के प्रारम्भ मे 686 मामले विचाराधीन थे तब 349 मामले और प्राप्त हुए। कुल 1135 मामलो मे से 331 विवादो मे निर्णय दिए गए और वर्ष के अन्त मे विचाराधीन मामलो की सख्या 104 थी। इसी प्रकार सन् 1974 के प्रारम्भ मे 704 मामले विचाराधीन थे एव 492 मामले और प्राप्त हुए। कुल 1196 मामलो मे से 616 विवादो मे निर्णय दिया गया और 580 मामले वर्ष के अन्त मे विचाराधीन रहे।

श्रम न्यायालय (Labour Court) द्वारा सन 1973 मे 385 विवाद प्राप्त किए गए तथा 1214 विवाद पूर्व वर्ष (972) के विचाराधीन थे। कुल विवादो (1599) म से 730 मे निर्णय दिया गया एव 869 मामले वर्ष के अन्त में रहे इसी प्रकार सन् 1974 के प्रारम्भ मे 869 विवाद विचाराधीन थे तथा वर्ष मे 627

और विवाद प्राप्त हुए। कुल 1496 विवादो में से 782 मे निर्णय दिया गया तथा 714 विवाद वर्ष के अन्त में विचाराधीन रहे।

इस वर्ष एक अतिरिक्त औद्योगिक न्यायाधिकरण की स्थापना की गई है। इससे विवादो पर शीघ्र निर्णय प्राप्त हो सकेगा। इस समय दो औद्योगिक न्यायाधिकरण तथा दो श्रम न्यायालय कार्य कर रहे हैं।

1 जुलाई, 1975 के पूर्व के वर्ष (1974 75) मे हड़तालो से राजस्थान मे औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्र मे 2,50,000 मानव दिनो की हानि हुई। लेकिन नवीन आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा के पश्चात् यह मानव दिनो की हानि शून्य मे बदल गई। इससे देश मे उत्पादन मे वृद्धि होगी जो कि समूचे राष्ट्र के हित मे है।[1]

राज्य सरकार द्वारा जुलाई, 1975 मे एक स्थायी श्रम समिति का पुनर्गठन किया गया है जिसके अध्यक्ष एव उपाध्यक्ष क्रमश श्रम मन्त्री तथा राज्य श्रम मन्त्री है। इसमे 14 सदस्य सम्मिलित किए गए हैं जो कि तीनो पक्षो—प्रबन्ध, श्रम एव सरकार का प्रतिनिधित्व करते हैं। इससे औद्योगिक शान्ति बनाए रखने मे पूर्ण सहायता मिलेगी।[2]

इसी प्रकार से राज्य स्तर पर इन्टक व एटक को श्रम शीर्षस्थ सगठन मे समान प्रतिनिधित्व दिया गया है जो कि औद्योगिक शान्ति मे एक नई कडी का कार्य करेगा।[3]

अत अच्छे औद्योगिक सम्बन्धो के लिए दोनो पक्षो मे पारस्परिक एकता एव विश्वास होना चाहिए। जहाँ तक हो सके विवादो को निबटाने के स्थान पर उन्हे रोकने का प्रयास किया जाना चाहिए। इसके लिए त्रिपक्षीय तथा द्विपक्षीय समितियो का कार्य महत्त्वपूर्ण है। ऐच्छिक समझौता एव पच-निर्णय की पद्धति के माध्यम से औद्योगिक विवादो को निबटाना अधिक उचित रहता है। इससे दोनो पक्षो मे कटुता की भावना उत्पन्न नही हो पाती है। सरकार द्वारा प्रदान की गई समझौता वार्ता व्यवस्था को और अधिक सुदृढ एव सफल बनाने हेतु अच्छे एव योग्य समझौता अधिकारी नियुक्त किए जाने चाहिए। समझौता अधिकारियो को अधिकार भी दिए जाने चाहिए। विवादो को निबटाने मे ज्यादा समय नही लिया जाना चाहिए। इसके साथ ही श्रमिको की शिकायतो का निवारण भी उचित पद्धति के माध्यम से करना चाहिए।

---

1 New Economic Programme & Rajasthan . Directorate of Public Relations, Rajasthan, Dec 1975, p 28
2. राजस्थान पत्रिका 24 जुलाई, 1975
3. राजस्थान पत्रिका, 6 सितम्बर, 1975

Appendix A

औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार (1975-76)

भारत में 1975-76 ई के दौरान, विशेष कर जून, 1975 ई मे आपात-काल की घोषणा और तुरन्त पश्चात् ही प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरागांधी के बीस-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम की घोषणा के बाद औद्योगिक सम्बन्धो मे क्रान्तिकारी सुधार हुआ है। इसका लेखा-जोखा भारत सरकार के एक प्रकाशन 'आर्थिक समीक्षा' मे 1975-76 ई मे निम्नानुसार दिया गया है।[1]

"मालिको और मजदूरो के झगडो के कारण जनवरी-जून, 1975 ई मे काम के 163 लाख दिनो की क्षति हुई जबकि 1974 ई की इसी अवधि मे काम के 304 लाख दिनो की क्षति हुई थी। जुलाई, 1975 ई से स्थिति मे काफी सुधार होता आ रहा है। कामिको और प्रबन्धकों से प्रधान मन्त्री की इस अपील का कि वे अपने विवाद हडताल अथवा तालाबन्दी के बिना ही आपस मे निबटाऐं, काफी अच्छा परिणाम निकला और जैसा प्रारम्भिक रिपोर्टों से मालूम होता है जुलाई-सितम्बर, 1975 ई मे काम के 15 6 लाख दिनो की क्षति हुई जबकि 1974 ई की इसी अवधि मे काम के 60 लाख दिनो की क्षति हुई थी। लेकिन इनसे भी अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह है कि जुलाई, 1975 ई से काम के दिनों की उत्तरोत्तर कम क्षति हुई। इस प्रकार प्रबन्धको और कामिको के विवादो के कारण काम के दिनों की जो क्षति होती थी उनकी सख्या जो जुलाई, 1975 ई मे 8 3 लाख थी घट कर अगस्त, मे 6 0 लाख और सितम्बर, 1974 ई मे केवल 1 3 लाख रह गई।'

"हाल के महीनो मे मालिक मजदूर सम्बन्धों मे जो महत्त्वपूर्ण सुधार हुआ उससे औद्योगिक सम्बन्धो में सुधार के ठोस उपायो के प्रभाव का पता चलता है जो नए आर्थिक कार्यक्रम के अश के रूप मे किए गए। इस सम्बन्ध मे राष्ट्रीय शीर्ष सस्था की स्थापना एक उल्लेखनीय बात है। इस शीर्ष सस्था मे विभिन्न राष्ट्रीय मजदूर सघो और उत्पादक सघो के 22 प्रतिनिधि शामिल हैं। शीर्ष सस्था ने श्रमिक-प्रबन्धक सम्बन्धो पर विचार-विमर्श किया है और औद्योगिक शान्ति बनाए रखने के लिए एकमत से एक योजना का अनुमोदन किया है और इस सम्बन्ध मे कुछ मार्ग-दर्शन सिद्धान्त निर्धारित किए हैं। समिति ने विवादो के सम्बन्ध मे सलाह देने के लिए प्रत्येक उद्योग के लिए एक राष्ट्रीय औद्योगिक समिति की स्थापना की सिफारिश की है। तदनुसार कपडा उद्योग से सम्बद्ध समस्याओ को हल करने के लिए कपडा उद्योग के लिए एक 14 सदस्यीय राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया है। इसी तरह उत्पादन सम्बन्धी समस्याओ पर विचार करने के लिए बनस्पति

1 भारत सरकार आर्थिक समीक्षा, 1975-76, पृष्ठ 12-13

उद्योग के लिए एक द्विपक्षीय राष्ट्रीय समिति का गठन किया गया है। राष्ट्रीय शीर्ष सस्था ने एकपक्षीय काम बन्दी का विरोध किया है और समन्त्र स्तर पर द्विपक्षीय आधार पर बातचीत करने की सिफारिश की है। सरकार ने भी अनुचित कामबन्दी, को रोकने के लिए कार्यवाही करने का फैसला किया है और औद्योगिक विवाद अधिनियम मे सशोधन कर दिया गया है जिसके अनुसार ऐसे औद्योगिक प्रतिष्ठानो को, जिनमे 300 या इससे ज्यादा श्रमिक काम करते है, कामबन्दी, छटनी या कारखानाबन्दी करने से पहले सरकार की अनुमति लेनी जरूरी होगी। मजदूरो को प्रबन्ध के कार्य मे शामिल किए जाने के महत्त्व को स्वीकार कर लिया गया है और जैसा नए आर्थिक कार्यक्रम मे निर्धारित किया गया है, अनेक औद्योगिक एककों मे, विशेष रूप से सरकारी क्षेत्र के उद्यमो मे कर्मशाला और विभागीय स्तरो पर सयुक्त प्रबन्ध समितियो का गठन किया जा रहा है।"

"एक और उल्लेखनीय घटना, अध्यादेश द्वारा किया गया बोनस अदायगी अधिनियम का वह सशोधन है जिसके द्वारा इसी अधिनियम मे किए गए पहले के सशोधन को रद्द कर दिया गया है और जिसके अनुसार, बोनस की न्यूनतम रकम को मजदूरी के 4 प्रतिशत भाग के बराबर की रकम से बढाकर उसके 8 33 प्रतिशत भाग की रकम के बराबर कर दिया गया था। घाटा उठाने वाले उद्यमो से भी बोनस की अदायगी की माँग किए जाने से पिछले दिनो उद्योग जीर्ण होन लगे और जिससे रोजगार के अवसरो की वृद्धि मे रुकावट होने लगी थी। अत घाटे मे चलने वाले एकको को न्यूनतम बोनस की अदायगी के दायित्व से नए अध्यादेश के अधीन मुक्त कर दिया गया है किन्तु यह व्यवस्था, जनवरी, 1975 ई के पहले दिन से पूर्व किसी भी दिन से शुरू होन वाले लेखा-वर्षो पर लागू नही होती। साथ-साथ, बोनस की कम से कम रकम को बढा कर, बालिगो के लिए 40 रुपए से 100 रुपये तक और बच्चो के लिए 25 रुपये से 60 रुपये तक कर दिया गया है जिससे बोनस के स्तर मे एकदम वृद्धि न हो। सरकार ने यह स्पष्ट कर दिया है कि बोनस लाभ और उत्पादकता के आधार पर दिया जाता है और यह स्थगित मजदूरी नहीं है। अत यह आशा की जा सकती है कि जहाँ नए उपबन्ध से औद्योगिक कम्पनियो की आर्थिक सक्षमता मे वृद्धि होगी वहाँ मजदूरो की उत्पादकता बढाने के लिए अधिक प्रेरणा मिलेगी।"

Appendix B

20-सूत्री कार्यक्रम

प्रधान मन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी के 20-सूत्री आर्थिक कार्यक्रम ने राष्ट्रीय पुर्ननिर्माण और विकास के अधूरे कार्य पर एक बार फिर देश का ध्यान केन्द्रित किया है। यह कार्यक्रम राष्ट्रीय प्रगति के लगभग प्रत्येक महत्त्वपूर्ण पहलू को अपने मे समेटे हुए है। इसमे कुछ कार्यक्रमो का प्रत्यक्ष रूप से और कुछ का अप्रत्यक्ष रूप से मालिक मजदूर सम्बन्धो से वास्ता है। औद्योगिक सम्बन्ध सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक सभी पहलुओ से किसी न किसी रूप मे प्रभावित होते हैं। यदि कीमतें सस्ती होती है, भूमिहीनो को जमीनें मिलती हैं, गरीब जनता को आवास निर्माण के लिए सुविधाएँ दी जाती हैं श्रमिको से और अन्य पिछडे तबको से ऋण की वसूली पर प्रतिबन्ध लगाया जाता है न्यूनतम वेतन प्रदान करने की व्यवस्था की जाती है, कारखानो मे सुविधाओ का विस्तार किया जाता है, आर्थिक अपराधो पर कठोरता से रोक थाम लगायी जाती है, श्रमिको को उद्योग के प्रबन्ध मे भागीदार बनाने के लिए योजनाएँ लागू की जाती हैं, मध्य वर्ग को जिसमे कि श्रमिक भी शामिल है, आयकर मे छूट दी जाती है तो इन बातो से औद्योगिक सम्बन्ध अप्रभावित नही रह सकते। अत यह नितान्त आवश्यक है कि मालिक और मजदूर, प्रशासक और जन साधारण, अमीर और गरीब सभी श्रीमती गांधी के प्रेरणास्पद कार्यक्रम को सफल बनाएँ, जिसके मुख्य बिन्दु ये हैं—

"1 आवश्यक चीजो की कीमतो को कम करने के लिए प्रयत्न जारी रहेगे। उत्पादन मे वृद्धि की जाएगी, अनाज की वसूली और वितरण की व्यवस्था मे सुधार किया जाएगा। सरकारी विभागो मे फिजूलखर्ची समाप्त की जाएगी।

2 खेती योग्य भूमि की सीमा निर्धारित करने वाले कानूनो को अमल मे लाया जाएगा। सीमा से अधिक भूमि को भूमिहीन मजदूरो मे बांटा जाएगा और जमीन सम्बन्धी कागज पत्तर दुरुस्त किए जाएँगे।

3 भूमिहीनो और गरीब जनता को आवास निर्माण के लिए भूमि प्रदान की जाएगी।

4 ठेका मजदूर प्रथा समाप्त की जाएगी। साथ ही बेगार को अवैध घोषित किया जाएगा।

5 ग्रामीण जनता का ऋण माफ कर दिया जाएगा। कानूनो के जरिए भूमिहीन किसानो, छोटे किसानो और कारीगरो से ऋण की वसूली पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाएगा।

6 खेती-मजदूरी कर जीवन-यापन करने वाले व्यक्तियो को न्यूनतम वेतन प्रदान करने की व्यवस्था की जाएगी और इससे सम्बन्धित कानून पर सख्ती से अमल किया जाएगा।

7 पचास लाख हेक्टेयर भूमि पर सिंचाई का प्रबन्ध किया जाएगा और भूमिगत जल को उपयोग मे लाया जाएगा।

8. बिजली के उत्पादन मे वृद्धि की जाएगी।

9. हाथकरघा उद्योग के विकास के लिए नयी योजना बनायी जाएगी जिससे बुनकर को धागा प्राप्त करने मे सहूलियत होगी। मोटे कपडे की किस्म मे सुधार किया जाएगा और उसके वितरण की ठीक ठीक व्यवस्था की जाएगी।

10 जनता कपडे की किस्म और आपूर्ति मे सुधार।

11 शहरी भूमि तथा शहरी काम मे आने योग्य भूमि का सामाजीकरण किया जाएगा। खाली जमीन तथा नए मकानो के क्षेत्र की सीमा निर्धारित की जाएगी।

12 जो लोग शहरी सम्पत्ति की कीमत कम दिखाते है तथा करो की चोरी करते हैं उनकी जांच के लिए विशेष दस्ते नियुक्त किए जाएँगे। आर्थिक अपराधियो पर संक्षिप्त मुकदमे (समरी ट्रायल) चलाए जाएँगे और उन्हे कडी सजाएँ दी जाएँगी।

13 तस्करो की सम्पत्ति जब्त करने के लिए कानून बनाया जाएगा।

14 पूँजी नियोजन की व्यवस्था को आसान बनाया जाएगा। जो लोग आयात लाइसेंस का दुरुपयोग करेंगे उन्हे दण्ड दिया जाएगा।

15 श्रमिको को उद्योग के प्रबन्ध मे भागीदार बनाने के लिए नई योजनाएँ और कानून बनाए जाएँगे।

16 सडक परिवहन के लिए राष्ट्रीय परमिट व्यवस्था चालू की जाएगी।

17 मध्यम वर्ग को आयकर मे छूट दी जाएगी। अब तक यह छूट 6 हजार की आमदनी वालो को प्राप्त थी। अब यह 8 हजार रुपये वार्षिक आमदनी वालो को भी प्राप्त होगी।

18 छात्रो को छात्रावासो मे सभी जरूरी चीजे नियन्त्रित मूल्य पर मुहय्या कराने की व्यवस्था की जाएगी।

19 छात्रो को पाठ्य-पुस्तकें तथा नोट-बुक नियन्त्रित मूल्य पर प्राप्त होगी।

20 लोगो को, विशेषकर कमजोर वर्गों को, रोजगार तथा प्रशिक्षण देने के लिए अप्रेंटिसशिप की नई योजनाएँ बनाई जाएँगी।"[1]

---

1 भारत सरकार प्रकाशन अनुशासित लोकतन्त्र-स्थायित्व की खोज (रजनी पटेल), पृष्ठ 34–35

औद्योगिक विवाद

(मिल-मालिकों को मनमानी तालाबन्दी और छटनी करने से रोकने के लिए कानून, 1976)

मिलो के जहाँ तहाँ काम बन्द कर देने से 1975 के शुरू मे करीब 50 हजार मजदूर बेकार थे। साल खत्म होते होते इनकी तादाद 2½ लाख के आसपास तक पहुँच गयी। बेकार मजदूरो की सख्या बढते जाने से जनवरी, 1976 मे राष्ट्रीय समिति की बैठक मे स्वय प्रधान मन्त्री ने मौ द रहकर फैसला किया कि कानून बनाना ही होगा। अत ससद् के पिछले सत्र मे मिल मालिको को मनमानी तालाबन्दी और छँटनी करने से रोकने के लिए जो कानून बना है वह मजदूरो के लिए बहुत हद तक ऐसी सुरक्षा का इन्तजाम करता है जिसकी बहुत बडी जरूरत है। कानून के मुख्य पहलुओ का विवरण इस प्रकार है—

"तालाबन्दी या छँटनी के लिए दो महीने का नोटिस पहले भी देने का नियम था परन्तु कानून नही था और अब तो वह बिना राज्य सरकार से अनुमति लिए दिया ही नही जा सकता। बिना अनुमति के तालाबन्दी, तालाबन्दी ही नही मानी जाएगी और मजदूर की नौकरी के पूर्ण अधिकार सुरक्षित रहेगे। तालाबन्दी के लिए पर्याप्त कारण न होने पर राज्य सरकार से अनुमति मिलना कठिन होगा। ऐसी आशा करनी चाहिए और यह भी उम्मीद रखनी चाहिए कि राज्य सरकारें अपने क्षेत्रो मे उद्योग की उन्नति के लिए पहले से ज्यादा जिम्मेदारी, जो उन्हे दी गयी है, निभाएँगी। मजदूरों को बकाया पगार वसूल करने के लिए श्रम अदालत की शरण जाने की भी जरूरत नही होगी। अब वह सरकार की अनुमति लेकर बकाया रकम मालिक से स्थानीय अधिकारियो की मार्फत ले सकेगा।"

"नए कानून मे तालाबन्दी या छँटनी के पहले मजदूर सगठनो से परामर्श करना अनिवार्य नही किया गया है। किन्तु व्यवहार मे इस कानून के न्यायोचित परिपालन के लिए जरूरी होगा कि मालिक मजदूर का परामर्श ही नही प्रबन्ध मे साझा भी बढ। यो यह स्पष्ट है कि मजदूर सगठनो के सचेत रहते कोई राज्य सरकार सिर्फ मालिको के हित मे तालाबन्दी की अनुमति दे भी नही सकती।"

"साथ ही उन मिलो को जो ढग से काम नही कर पा रही हैं या बन्द हुई हैं फिर से चलाने की कोशिशें की जा रही हैं। यह भी उत्पादन के हित मे और मजदूरो के रोजगार के हित मे स्वागत की बात है। किन्तु जो मजदूर अभी खाली पडे हैं उनको तात्कालिक सहायता का भी कोई प्रबन्ध हो तो और अच्छा होगा। काफी दिन खाली रहने के कारण वे अपनी जमा पूँजी, अपनी भविष्य निधि का अश भी समाप्त कर चुके है। मिल मालिको की ओर से मिलने वाला अश अभी

बचा हुआ है पर यह देखते हुए कि इस अंश की 28 करोड़ रुपये की जो देनदारी मालिकों पर है, वह रकम उन्होंने पिछले वर्ष अक्तूबर तक जमा नहीं कराई थी, इस सम्बन्ध में भी कार्यवाही जरूरी होगी।"

"इस कानून का एक अप्रत्यक्ष लाभ भी है—औरतो-मर्दों को बराबर काम के लिए बराबर वेतन देने की जो योजना है उसके अनुसार कारखानों में स्त्रियों को मिलने वाले फायदे की रक्षा भी यह कानून कर सकेगा। अगर स्त्रियों को भी आदमियों के बराबर वेतन देना पड़े तो ऐसे मालिक होंगे जो सबसे पहले स्त्रियों को ही छँटनी कर देना चाहेंगे पर यह उन्हें रोकेगा। बराबर वेतन वाला कानून भी अपने में एक बहुत महत्त्वपूर्ण प्रगतिशील उपाय है हालांकि यह औरतों के श्रम के बहुत व्यापक शोषण को पूरी तरह से समाप्त नहीं कर सकता। अनेक क्षेत्र ऐसे हैं जहाँ स्त्रियों का श्रम सगठित रूप में नहीं व्यक्तिगत रूप में होता है और वहाँ कोई कानून सिवाय मर्द के कानून के बहुत जल्दी पहुँच नहीं सकता। फुटकर काम करने के लिए औरतों को पुरुषों की अपेक्षा कम पैसे यह कह कर दिए जाएँ कि वे पुरुषों के बराबर मेहनत का काम नहीं कर सकती तो इस शोषण परम्परा का प्रतिकार केवल सामाजिक चेतना ही कर सकती है। ऐसी चेतना बने, इसके लिए कानून में गुंजाइश है क्योंकि उसमें 'बराबर काम' के लिए या 'एक ही प्रकार के काम' के लिए बराबर मजदूरी देने का विधान किया गया है। 'एक ही प्रकार के काम' करने देने का अवसर स्त्रियों को मिले और वे उसमें पुरुषों के ही बराबर योग्य हो सकें इसके लिए जरूरी है कि वह काम करने में उन्हें, भले ही वे उतनी सक्षम न हों, बराबर वेतन मिले। ऐसे मौके अधिकाधिक स्त्रियों को मिलेंगे तभी लोगों में यह समझ बढ़ सकेगी कि स्त्रियाँ भी शिल्पकौशल के वे सब काम कभी न कभी कर सकती हैं जो अभी सिर्फ पुरुष अपने लिए सुरक्षित मानते हैं। श्रममन्त्री रघुनाथ रेड्डी ने यह सुझाव अस्वीकार करके कि बराबर वेतन 'बराबर मूल्य के काम' पर मिलना चाहिए, इस चेतना को फैलाने का आधार बना रहने दिया है।"

"यह कानून धीरे-धीरे ही लागू होगा। किन्तु इसे इतने धीरे भी लागू नहीं होना चाहिए कि स्त्रियों को इससे मिलने वाला उत्साह उनसे बदला लेने वालों की कोशिशों के कारण कमजोर हो जाए। स्त्रियों से बदला लेने की प्रवृत्ति सभी जगह किसी न किसी रूप में पायी जाती है और अपने देश में तो जहाँ अधिसख्य औरतें मेहनत मजदूरी के बूते ही चाहे कारखाने में चाहे घर में अपनी रोजी कमाती हैं वहाँ इस प्रवृत्ति के खिलाफ समझ फैलाना कानून बनाने के साथ-साथ बहुत जरूरी हो जाता है।"[1]

---

1 दिनमान, 15–21 फरवरी, 1976, पृष्ठ 15.

Appendix D

प्रबन्ध में मजदूरों की भागीदारी (1975-76)

(आपातकाल के बाद सरकार द्वारा उठाए गए कदम और सरकार की योजना)

केन्द्र सरकार ने प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की दिशा मे जून, 1975 की आपात् उद्घोषणा के बाद तेजी से कदम उठाए हैं. राज्य सरकारो को आवश्यक निर्देश दिए हैं और एक योजना भी बनाई है । इस सबका विस्तार से विवरण नवम्बर, 1975 के दिनमान के सम्पादकीय मे दिया गया है, जो मूल रूप मे इस प्रकार है

"केन्द्र सरकार ने समस्त राज्य सरकारो को आदेश दिया है कि वे प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की योजना को अमल मे लाने के लिए शीघ्र से शीघ्र कदम उठाए। केन्द्रीय श्रम मन्त्री रघुनाथ रेड्डी ने सुझाव दिया है कि मजदूरो और मालिको के प्रतिनिधियो से यह कहा जाए कि वे प्रतिष्ठान-स्तर पर प्रबन्ध परिषद् गठित करने की दिशा मे कार्यवाही करें।

श्री रेड्डी ने यह भी कहा कि हालांकि यह योजना कानूनन जरूरी नही होगी लेकिन इसे वैकल्पिक नही माना जाएगा। दूसरे शब्दो मे तमाम प्रतिष्ठानो को इस योजना पर अमल करना पड़ेगा। कोई भी प्रतिष्ठान यह तर्क देने या कि यह बहाना करने की स्थिति मे नही होगा कि कानूनन जरूरी न होने के कारण योजना पर अमल नही किया जाएगा।

श्रम मन्त्री ने लिखा है कि मालिको और मजदूरो के बीच इस सम्बन्ध मे किसी भी तरह की गलतफहमी को दूर करने के लिए यह मामला सम्बन्धित श्रम सलाहकार समितियो के सामने रख दिया जाए। समस्त सरकारी, गैर-सरकारी और सहकारी क्षेत्र के उद्योगो को इस योजना पर अमल के लिए कार्यक्रम बनाने चाहिए। दोनो पक्षो की सहमति और सद्भावना से इस योजना के अमल मे जरूरी परिवर्तन और संशोधन किए जा सकते हैं। मगर इस बात पर निगरानी रखनी चाहिए कि क्रियान्वयन तेजी से हो रहा है या नही।

श्री रेड्डी ने राज्य सरकारो से यह भी अनुरोध किया है कि वे केन्द्र को बराबर सूचित करते रहे कि योजना पर किस तरह अमल हो रहा है। इस योजना को राष्ट्रीय उत्पादन-क्षमता के सन्दर्भ मे देखा जाना चाहिए इस योजना पर मजदूर मालिक सम्बन्धो पर क्या असर हुआ है, इस बात पर श्रम मन्त्रियो के अगले सम्मेलन मे विचार किया जाएगा। भारत सरकार ने राज्य सरकारो से यह भी अनुरोध किया है कि मजदूरो और मालिको को प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी का ठीक-ठीक आशय समझाने के लिए क्षेत्रीय भाषाओ मे पुस्तको का प्रकाशन किया जाए।

फिलहाल इस योजना के अन्तर्गत केवल खदान और उत्पादन उद्योगो के लोग आते है। इसके लिए भी यह जरूरी है कि सम्बन्धित उद्योगो मे 500 से अधिक मजदूर होने चाहिए। प्रस्तावित सयुक्त परिषदो मे मालिको और मजदूरो के बराबर-बराबर प्रतिनिधि रहेगे। मालिको के प्रतिनिधियो की नामजदगी मालिको द्वारा की जाएगी लेकिन मजदूरो के प्रतिनिधित्व की पद्धति क्या होगी यह अभी स्पष्ट नही है।

प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी का प्रश्न सरकार के सामने एक अरसे से था। श्रम मन्त्रालय कई वर्षों से इस सवाल के सभी पहलुओ की जाँच कर रहा था। देश के विभिन्न मजदूर सगठन अनेक वर्षों से यह माँग कर रहे थे कि प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी शुरू की जाए। राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने अपने अनेक सम्मेलनो मे इस सम्बन्ध मे प्रस्ताव पास किया है।

दरअसल प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी गाँधीजी की ट्रस्टीशिप की कल्पना के नजदीक है। आजादी के बहुत पहले ही अहमदाबाद मे मजूर-महाजन के सवाल पर गाँधीजी ने कहा था कि उद्योग और कारखाने दोनो मजदूरो और मालिको की सद्‌भावना से ही पनप सकते हैं। अनावश्यक हडतालो और तालाबन्दियो से बचने के लिए गाँधीजी ने उद्योगपतियो और मजदूर यूनियनो को सलाह दी थी कि उन्हे कोई ऐसी पद्धति अपनानी चाहिए जिससे कि कल-कारखाने चलते रहे और मजदूरो को यह अनुभव न हो कि वे केवल वेतनभोगी हैं। राष्ट्रीय मजदूर कांग्रेस ने गाँधीजी के मजूर-महाजन के आशय को पकडा और व्यर्थ की तालाबन्दियो और हडतालो से बचने के लिए प्रबन्ध से सम्बन्धित सयुक्त परिषदो की स्थापना का आग्रह किया।

यद्यपि जिस रूप मे प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की योजना सामने आई है, उसका रूप बदला हुआ है, लेकिन उसका मूल उद्देश्य व्यर्थ के औद्योगिक विवादो को समाप्त करने के अलावा उद्योग के प्रति मजदूरो के मन मे अपनत्व की भावना पैदा करना है। स्वाधीनता के बाद से सरकारी और गैर-सरकारी उद्योगो मे जिस रफ्तार से हडतालें और तालाबन्दियां होती रही है उनसे हजारो कार्यदिनो की क्षति हुई है और राष्ट्रीय उत्पादन को गहरा नुकसान पहुँचा है। एक विकासशील देश मे मुख्य प्रश्न राष्ट्रीय उत्पादन का होता है। मजदूरो की माँगे वाजिब हैं या गैर-वाजिब, मालिको की जिद उचित है या अनुचित, यह सवाल गौण हो जाता है। असल मे सवाल यह होता है कि किस तरह एक ऐसी मशीनरी कायम की जाए जिससे कि हडतालो और तालाबन्दियो को यदि समाप्त नही तो कम किया जा सके।

हडतालों और तालाबन्दियो को कम करने की दृष्टि से ही सरकार ने सयुक्त विचार-परिषदो और द्विपक्षीय वार्ताओ की स्थापना पर जोर दिया। इससे मजदूरो और मालिको के सम्बन्धो मे अपेक्षाकृत सुधार हुआ। दूसरे शब्दो मे विवाद कम हुए लेकिन समाप्त नही हुए। मालिकों ने यह अनुभव किया कि विचार परिषदों मे मजदूर नेता अपनी बात से टस से मस होने को तैयार नही होते जबकि मजदूरों के प्रतिनिधियो ने यह महसूस किया कि उद्योगपति केवल दिखावा करते हैं, शर्तें उनकी वही होती है जो कि पहले थी। गरज यह कि मजदूरो और मालिको के प्रतिनिधियो

की विचार परिषदें भी एक हद तक ही कारगर तथा कामयाब हो सकी। बुनियादी सवाल वही का वही बना रहा।

यह बुनियादी सवाल था शोषण को समाप्त करने, मुनाफाखोरी खत्म करने तथा मजदूरो मे प्रतिष्ठानो के प्रति लगाव पैदा करने का। यदि यह बुनियादी सवाल हल हो जाता है तो राष्ट्रीय उत्पादन मे निरन्तर वृद्धि हो सकती है।

राष्ट्रीय उत्पादन को ही दृष्टि मे रखकर सरकार ने प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की योजना बनाई है और इसीलिए केन्द्र ने राज्य सरकारो को लिखा है कि *प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की योजना* पर इस तरह अमल किया जाए कि राष्ट्रीय उत्पादन मे वृद्धि हो।

प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की पद्धति युद्ध के बाद कुछ यूरोपीय देशो मे शुरु हुई थी। इसका सबसे उम्दा प्रयोग यूगोस्लाविया मे किया गया था। यूगोस्लाविया मे तमाम कल कारखानो और उद्योगो के प्रबन्ध मे मजदूरो को प्रतिनिधित्व दिया गया। इसका नतीजा यह हुआ कि मजदूरो मे उद्योगो के प्रति लगाव पैदा हुआ और उन्होने दिन दूने रात चौगुने श्रम कर यूगोस्लाविया को एक आत्मनिर्भर देश बना दिया। यूगोस्लाविया मे इस सम्बन्ध मे जो प्रयोग हुआ उससे और भी कुछ देश प्रभावित हुए।

यूगोस्लाविया की परिस्थितियाँ भारत से भिन्न जरूर हैं लेकिन जरूरत सभी देशो की लगभग एक जैसी होती है। भारत मे केवल सरकारी उद्योग नही बल्कि गैर सरकारी उद्योग भी हैं। दूसरे शब्दो मे भारत मे प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी को ज्यादा बड़े पैमाने पर कायम करना होगा। एक दूसरी समस्या यह भी है कि प्रबन्ध मे हिस्सा लेने के लिए मजदूरो के पास पर्याप्त अनुभव और योग्यता होनी चाहिए अन्यथा प्रबन्ध मे उनका प्रतिनिधित्व केवल प्रतीक रूप मे बना रहेगा। इस समय स्थिति यह है कि पाँच सौ से अधिक मजदूरों वाले किसानो की संख्या भारत मे काफी बड़ी है लेकिन उसी अनुपात मे प्रबन्ध मे भाग ले सकने मे समर्थ मजदूर प्रतिनिधि उपलब्ध नही है। सरकार इस सम्बन्ध मे सहायता जरूर करेगी, लेकिन अन्तत मजदूर यूनियनो को ही अपने सदस्यो को ऐसी शिक्षा देनी होगी कि वे प्रबन्ध मे अपनी भूमिका अदा कर सकें। वैसे भी यह कार्य मजदूर यूनियनो का ही होना चाहिए।

फिलहाल सरकार ने प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की जो योजना बनाई है उसके मुख्य मुद्दे ये हैं—

(1) पाँच सौ से अधिक मजदूरो वाली औद्योगिक इकाइयो मे प्रबन्ध परिषद् कायम की जाएगी।

(2) प्रत्येक परिषद् मे मजदूरो और मालिको के बराबर-बराबर प्रतिनिधि होगे।

(3) मालिक मान्यता प्राप्त यूनियनो या मजदूरो की सलाह से यह फैसला करेंगे कि कारखाने के विभिन्न विभागो मे कितनी परिषदें कायम की जाएँ।

(4) प्रत्येक परिषद् मे कितने सदस्य हो इसका निर्णय मालिक मजदूरो के प्रतिनिधियो या यूनियन की सलाह से करेंगे, लेकिन किसी भी हालत मे प्रतिनिधियों की सख्या बारह से अधिक नही होनी चाहिए।

(5) परिषद् के समस्त निर्णय मतदान द्वारा नही बल्कि सहमति के जरिए होंगे।

(6) परिषद के प्रत्येक फैसले पर सम्बन्धित पार्टियां महीने भर के भीतर अमल करेंगी।

(7) परिषद् की कार्यावधि दो वर्ष रहेगी।

(8) परिषद् जब भी आवश्यक होगा अपनी बैठक बुलाएगी। वैसे कम से कम महीने मे एक बार बैठक होनी ही चाहिए।

(9) परिषद् का अध्यक्ष प्रबन्धको का ही एक प्रतिनिधि होगा। मजदूरो के प्रतिनिधि अपने बीच से एक उपाध्यक्ष चुनेंगे।

प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की जो योजना बनाई गई है उसमे यह कहा गया है कि विभिन्न प्रतिष्ठानो मे जो परिषदें कायम की जाएँगी उसके कई उद्देश्य होंगे। मसलन उसका एक उद्देश्य यह होना चाहिए कि प्रबन्धो को प्रतिष्ठान के मासिक या कि वार्षिक उत्पादन लक्ष्य प्राप्त करने मे मजदूर सहायता दें। दूसरा उद्देश्य यह बताया गया है कि परिषद् को प्रतिष्ठान की उत्पादन-क्षमता बढाने की भूमिका अदा करनी चाहिए और फिजूलखर्ची तथा कार्य-दिनो की क्षति समाप्त करनी चाहिए। परिषद् को विभिन्न प्रतिष्ठानो तथा विभागो मे मनमानी अनुपस्थित रहने की स्थिति का अध्ययन करना चाहिए और कुछ ठोस सुझाव देने चाहिए जिससे कि इस तरह की मनमानी समाप्त हो सके। परिषद् को उद्योगो मे अनुशासन बनाए रखने मे भी प्रबन्धको की सहायता करनी चाहिए। परिषद् को काम की परिस्थितियो की जाँच करनी चाहिए अर्थात् यह देखना चाहिए कि कारखाने मे हवा, पानी जैसी जरूरी चीजें किन हालात मे हैं। परिषद् का एक काम यह भी होना चाहिए कि वह प्रतिष्ठान को सुचारु रूप से चलाने के लिए मजदूरो के स्वास्थ्य और कल्याण की देख भाल करे। इसके अलावा उत्पादकता तथा उत्पादन लक्ष्य के विषय मे परिषद् को प्रबन्धको और मजदूरो के बीच एक सवाद कायम करना चाहिए।

योजना के अन्तर्गत सयुक्त परिषदो की स्थापना की एक रूपरेखा बनाई गई है। कहा गया है कि सयुक्त परिषद् के सदस्य केवल वही व्यक्ति हो सकते हैं जो कि सम्बन्धित उद्योग मे काम कर रहे हो। परिषद् की कार्यावधि दो वर्ष रहेगी। उद्योग का मुख्य कार्यकारी सयुक्त परिषद का अध्यक्ष रहेगा। परिषद् मे मजदूरो के प्रतिनिधि अपना उपाध्यक्ष नामजद करेंगे। सयुक्त परिषद् अपने किसी एक सदस्य को परिषद् का सचिव नामजद करेगी। परिषद् की बैठक कम से कम तीन महीने मे एक बार होगी। परिषद् के फैसले सहमति से होंगे, मतदान के जरिए नही। सयुक्त परिषद् के कार्यों मे से एक कार्य यह होगा कि वह उद्योग मे अधिक से अधिक उत्पादन, अनुशासन और कार्यक्षमता पैदा करे। उसका दूसरा कार्य होगा विभागीय

परिषद् पर निगाह रखना क्योंकि एक विभाग की कार्य पद्धति का दूसरे विभागो पर भी असर पड सकता है। उसके अन्य कार्य होगें रचनात्मक सुझावो के लिए मजदूरो को पुरस्कार, कच्चे माल का अधिक से अधिक इस्तेमाल और सम्बन्धित इकाई मे स्वास्थ्य और कल्याण की योजनाओं की देखरेख।

जैसा कि सरकार की ओर से स्पष्ट कर दिया गया है कि सरकारी क्षेत्रो मे प्लांट स्तर पर मजदूरो की भागीदारी की योजना को लागू करने के लिए कोई नया कानून बनाने की आवश्यकता नही है। विभिन्न कारखानो के प्रबन्धको या कि अध्यक्षो को जरूरी निर्देश दे दिए जाएंगे और वे इन्ही निर्देशो के अनुसार प्रबन्ध परिषद् कायम करेंगे। इन निर्देशो मे यह स्पष्ट कर दिया जाएगा कि प्रतिनिधित्व किस तरह और किन्हें दिया जाए। इसके अलावा इस सम्बन्ध मे मजदूर यूनियनो की भूमिका भी स्पष्ट कर दी जाएगी।

प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी की योजना उद्योग और श्रम की दुनियां म एक महत्वपूर्ण शुरुआत है। यह आधुनिक समाज-रचना की आवश्यकताओं के अनुरूप होन के अलावा भारत की परिस्थितियो के भी नजदीक है। पश्चिम के जिन देशो मे मुनाफाखोरी का बोलबाला है वहाँ मेहनतकश आदमी स्वय को उखडा हुआ अनुभव करता है। आधुनिक समाज की सबसे बडी विडम्बना ही हो गई है, स्वय के अलगाव (एलिनिएशन)। इस अलगाव को समाप्त करने के लिए व्यक्ति मे उसके कार्य के प्रति लगाव पैदा करना आवश्यक है। कारखानो मे जहाँ कि आदमी मशीन की तरह काम करता है, यह अलगाव और भी जरूरी है। प्रबन्ध मे मजदूरो की भागीदारी से अलगाव पूरी तरह समाप्त भले ही न हो, कम जरूर होगा।"[1]

---

1 दिनमान, 23 नवम्बर 1975, पृष्ठ 17-18.

Appendix E

QUESTION BANK

अध्याय 1 से 5 तक

1 Are unions monopolies ? Answer with the aid of economic theory and the history of the trade union movement in the USA and the UK (R U 1972)
क्या श्रम सघ एकाधिकारी होते हैं ? आर्थिक सिद्धान्तो और ब्रिटेन और अमेरिका के सघ इतिहास के आधार पर उत्तर दीजिए।

2 "Trade unionism is the child of Industrial Revolution" Discuss this with reference to the growth of trade union movement in the USA & USSR (R U 1973)
"श्रम सघवाद औद्योगिक क्रान्ति का बच्चा है।" इस कथन को अमेरिका एव रूस मे श्रम सघ के विकास के सन्दर्भ मे समझाइए।

3 Examine the main characteristics of Indian Industrial labour How do they influence industrial relations in India ? (R U 1974)
भारतीय औद्योगिक श्रम की मुख्य विशेषताओ का परीक्षण कीजिए। भारत मे औद्योगिक सम्बन्धों पर उनका क्या प्रभाव पडता है ?

4 Is the term 'absenteeism' liable to more than one interpretation? Can we measure it ? If so how ? What are the trends associated with 'absenteeism' in India ? Explain (R U 1972)
अनुपस्थिति' से क्या कई अर्थ हो सकते हैं ? क्या इसे नापा जा सकता है। अगर हो तो कैसे? भारत मे अनुपस्थिति से सम्बन्धित क्या मुख्य प्रवृत्तियाँ रही हैं? इनका वर्णन कीजिए।

5 Analyse the problem of labour turn over from the points of view of the firm the worker and the economy What explains the differences in rates of labour turn over in the public and private sectors ? What policy should the govt. adopt on this subject ? (R U 1972)
फर्म, श्रमिक और अर्थव्यवस्था की दष्टि से श्रम प्रत्यावर्तन की क्या समस्याएँ हैं ? सरकारी और निजी क्षत्रो में प्रत्यावर्तन की दरो में क्यों भेद है ? सरकार को इस विषय मे क्या नीति निर्धारित करनी चाहिए ?

6 What have been the principal causes of industrial unrest in public sector enterprises in India ? What measures has the govt taken to ensure industrial peace in such enterprises ? Illustrate your answer with recent examples (R U 1974)
भारत में सार्वजनिक क्षेत्र के सस्थानों में औद्योगिक अशान्ति के क्या मुख्य कारण रहे हैं ? इन सस्थानो मे औद्योगिक शान्ति हेतु सरकार ने किन उपायो को अपनाया है ? अपने उत्तर को हाल के उदाहरणो द्वारा स्पष्ट कीजिए।

7 What are the important issues associated with the question of trade union recognition in India ? Please draw upon the relevant legislation, the code of discipline and the report of the National Commission on labour in answer to this question (R U 1972)
श्रमिक सघो को मान्यता देने के सम्बन्ध में क्या महत्त्वपूर्ण समस्याएँ उठती हैं ? भारतीय कानूनों आचार सहिता और राष्ट्रीय श्रम आयोग के प्रतिवेदन के आधार पर उत्तर दीजिए।

8 Examine separately the ideologies and influence of the four central trade union organisation in India (R U 1973)
चार भारतीय केन्द्रीय श्रम सघो की विचारधाराओं तथा प्रभाव का अलग-अलग परीक्षण कीजिए।

9 How do you account for the slow growth of trade union movement in India? Does the organisation and working of trade unions in the U K and the U S A offer any guidance for accelerating the growth of trade unions in India? (R U 1974)
भारत मे श्रम सघ आन्दोलन की धीमी प्रगति के क्या कारण है? भारत मे श्रम सघो के विकास की गति तीव्र करने के लिए इगलैण्ड तथा अमेरिका के श्रम सघो के सगठन एव कायप्रणाली से क्या मार्ग दर्शन मिलता है?

10 "Inadequate Funds have stood in the way of easy growth and development of trade union movement in India"
Elucidate this statement, and discuss the sources of income of trade unions and the objects for which general funds of registered trade union can be spent (R U 1975)
'अपर्याप्त कोष भारत मे श्रमिक आन्दोलन के सुगम विकास के माग मे बाधक है।
इस कथन की व्याख्या कीजिए। श्रमिक सघो की आय के स्रोतो का वर्णन कीजिए और यह भी बताइए कि किन उद्देश्यो के लिए रजिस्टर्ड श्रमिक सघ के सामान्य कोष व्यय किए जा सकते हैं।

11 There is vital importance of Trade Unions as an integral part of industrial structure of India"
Comment and suggest measures to strength Trade Union movement in India (R U 1975)
"भारत की औद्योगिक सरचना के एक अभिन्न अग के रूप मे श्रमिक सघो का आवश्यक महत्व है।
इस कथन की विवेचना कीजिए तथा भारत में श्रमिक सघ आन्दोलन को सुदृढ करने के लिए सुझाव दीजिए।

12 Write short notes on the following—
(a) Trade Unions in U S S R
(b) Employee's organisation in India
(c) Financial Problems of Indian Trade Unions (R U 1972)
निम्नलिखित पर सक्षिप्त लेख लिखिए—
(अ) रूस मे श्रमिक सघ।
(ब) भारत मे मालिको के सगठन।
(स) भारतीय सघ की वित्तीय समस्याएँ।

13 Explain the following—
Income and expenditure of Trade Unions in India (R U. 1973)
निम्न को समझाइए—
भारत मे श्रम सघो का आय व्यय।

14 निम्न पर सक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए—
(अ) श्रमिक अनुपस्थित और श्रमिकावर्त। (R U 1974)
(ब) भारत मे मालिको के सगठन। (R U 1974)
(स) अमेरिका मे श्रम सघ आन्दोलन। (R U. 1975)

अध्याय 6

15 Describe the important elements in a typical Collective Bargaining relationship In what respects is collective bargaining different from price determination ? (R U 1972)

एक सामूहिक सौदाकारी सम्बन्ध के मुख्य तत्त्व बताइए । सामूहिक सौदाकारी और मूल्य निर्धारण में क्या भेद है ?

16 What is Collective Bargaining ? Give its principles and discuss the measures taken in our country to encourage Collective Bargaining (R U 1973

सामूहिक सौदाकारी किसे कहते हैं ? इसके सिद्धान्त बतलाइए और अपने देश में इसको प्रोत्साहित करने हेतु जो उपाय किए गए हैं उनका उल्लेख कीजिए ।

17 What are the objects to the introduction of Collective Bargaining in Indian industry ? What measures can be taken to encourage Collective Bargaining in India ? (R U 1974)

भारतीय उद्योग में सामूहिक सौदेबाजी को प्रारम्भ करने में क्या कठिनाइयाँ आती हैं ? भारत में सामूहिक सौदेबाजी को प्रोत्साहित करने के लिए किन उपायों को अपनाया जा सकता है ?

18 Explain the idea of Collective Bargaining What are the basic conditions for the success of Collective Barining and to what extent has Collective Bargaining developed in India (R U 1975)

सामूहिक सौदाकारी के विचार को समझाइए । सामूहिक सौदाकारी की सफलता की कौन कौनसी मुख्य शर्तें हैं तथा भारत में कहाँ तक सामूहिक सौदाकारी का विकास हुआ है ?

अध्याय 7

19 Clarify the idea—
Role of Govt in Union Management Relations (R U 1973)

निम्न को समझाइए—
श्रम संघ प्रबन्ध सम्बन्धों में सरकार की भूमिका ।

अध्याय 8

20 Discuss the main features of the industrial relations machinery of either U K or U S A and account for its success (R U 1973)

इंगलैण्ड अथवा अमेरिका की औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख कीजिए और उसकी सफलता के कारण बतलाइए ।

21 उद्योग में संयुक्त विचार विनिमय पर टिप्पणी लिखिए । (R U 1974)

22 Discuss the main features of the machinery for settlement of industrial disputes in the U S A (R U 1975)

अमेरिका में औद्योगिक झगड़ों के निपटारे की व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ बताइए ।

अध्याय 9

23 "It is far better to get the parties to a dispute to settle it among themselves than to put forward a settlement for them and attempt by invoking public opinion or otherwise to give it force" (Royal Commission on Labour) In the light of this statement examine critically the conciliation machinery set up in India (R U. 1973)

पक्षकारो के सुझाव एक समाधान प्रस्तुत करने और फिर जनभावना विकसित कर उसे स्वीकृत करने की अपेक्षा यह कहीं उत्तम होगा कि विवाद के पक्षकारो को स्वय उसका समाधान करने दिया जाए। (शाही श्रम आयोग)। इस कथन के सन्दर्भ मे भारत की समझौता व्यवस्था का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

24 'Compulsory arbitration is utilized generally when the parties fail to arrive at a settlement" Discuss and Comment on the expediency of compulsory arbitration in the context of conditions prevailing in our country (R U 1973)

अनिवार्य पचनिणय का साधारणतया तभी प्रयोग किया जाता है जब दोनो पक्ष किसी निणय पर पहुँचने मे असफल हो जाते हैं। इसे समझाइए और अपने देश की वतमान दशाओं मे अनिवाय पचनिणय की वाञ्छनीयता पर प्रकाश डालिए ?

25 Examine the role of Mediation, Arbitration and Conciliation in the settlement of industrial disputes Which of the above methods do you prefer and why? Discuss with reference to Indian conditions (R U 1974)

औद्योगिक विवादो को निवटाने हेतु मध्यस्थता, पच निणय तथा 'समझौता की भूमिका बताइए। इन तीनो विधियो मे से आप किसे पसन्द करते हैं और क्यों ? भारतीय दशाओ को ध्यान मे रखते हुए विवेचन कीजिए।

26 Give a critical evaluation of machinery for the settlement of industrial disputes in India How does it compare with the machinery for promoting industrial peace in the U K ? (R U 1974)

भारत में औद्योगिक विवादो को निवटाने की व्यवस्था का आलोचनात्मक मूल्यांकन कीजिए। इगलण्ड मे औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहित करने वाली व्यवस्था से इसकी तुलना कीजिए।

27 Discuss the importance of works committees in preventing industrial disputes How far have these committees been successful in promoting good industrial relations between the employees and the workmen ? (R U 1975)

औद्योगिक झगडों की रोकथाम मे वर्क्स कमेटियाँ कहाँ तक सेवायोजकों और श्रमिकों के मध्य अच्छ सम्बन्ध स्थापित करने मे सफल हुई हैं ?

28 'Compulsory adjudication prevents the growth of sound industrial relations"

Do you agree with this statement ? Discuss whether you would like to advocate voluntary arbitration as an alternative to compulsory adjudication as a method of settlement of industrial disputes in India (R U 1975)

'अनिवाय पचनिणय मधुर औद्योगिक सम्बन्धो के विकास को रोकता है।' क्या आप इस कथन में सहमत हैं ? क्या आप भारत मे औद्योगिक सघर्षों के निवटारे की विधि के रूप में अनिवाय पच निणय के विकल्प में ऐच्छिक पचनिर्णय प्रणाली के पक्ष मे तर्क प्रस्तुत करना पसन्द करेंगे ?

अध्याय 10

29 Is the term 'Workers' Participation in Management' unambiguous in meaning ? What do you understand by it ? Do you think it has a better chance of success in the public sector than in private industrial organisation ? (R U 1972)

क्या प्रबन्धकाय मे श्रमिको की भागीदारी का अथ स्पष्ट है ? आप इससे क्या समझते हैं ? क्या आपकी राय में एसी भागीदारी की निजी क्षेत्र की अपेक्षा सावजनिक क्षेत्र म सहायता की अधिक सम्भावना है ?

30 Explain the following—
Joint Management Councils and their working in Indian industries (R U 1973)
निम्न को समझाइये—
सयुक्त प्रबन्ध परिषद और भारतीय उद्योगो मे उनकी काय-प्रणाली ।

31 "The right of the workers to participate in managerial decisions can no longer be resisted' Do you agree ? (R U 1974)
'प्रबन्ध सम्बन्धी निर्णयो में श्रमिको द्वारा भाग लेने के अधिकार को अब अधिक समय तक टाला नहीं जा सकता । क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?

32 Examine the progress of Joint Management Councils in India and their future prospects (R U 1975)
भारत में सयुक्त प्रबन्ध परिषदो की प्रगति तथा उनक भविष्य का परीक्षण कीजिए ।

अध्याय 11

33 In what ways has the I L O influenced the course of labour legislation in India ? Give a connected account In this connection briefly describe the mechanisms and procedure the I L O has developed for influencing labour policy of member countries (R U 1972)
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ ने भारतीय श्रम कानूनों पर किस प्रकार प्रभाव डाला है ? एक प्रासगिक वणन दीजिए । इस सम्बन्ध मे यह बताइए कि I L O ने सदस्य देशो की श्रम नीति पर प्रभाव डालने के लिए क्या रीतिया और विधियाँ बनाइ हैं ।

34 To what extent has International Labour Organisation influenced the course of labour legislation in India ? How have workers benefited from the same ? (R U 1974)
भारत मे श्रम अधिकारियो की दिशा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ द्वारा कहाँ तक प्रभावित हुई है ? श्रमिक उससे किस प्रकार लाभान्वित हुए हैं ?

35 How has India benefitted from its membership of the International Labour Organisation ? Discuss fully (R U 1975)
अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सघ की सदस्यता से भारत किस प्रकार लाभान्वित हुआ है ? पूणतया उल्लेख कीजिए ।

अध्याय 12

36 Give a critical evaluation of the machinery for the settlement of Industrial disputes in Rajasthan (R U 1973)
राजस्थान मे औद्योगिक विवादो के निबटारे के लिए जो व्यवस्था है उसका आलोचनात्मक मूल्यांकन करिए ।

37 Write an essay on 'Industrial Disputes in Rajasthan during 1961 71' (R U 1974)
'राजस्थान मे औद्योगिक विवाद (1961 71)' विषय पर एक निबन्ध लिखिए ।

38 Write a short note on the following—
Machinery for settlement of industrial disputes in Rajasthan (R U 1975)

निम्नलिखित पर टिप्पणी लिखिए—
राजस्थान मे औद्योगिक सघष के हल करने की व्यवस्था ।

Appendix F

BOOK BANK

1	*Agarwal A N (Ed)*	Indian Labour Problems
2	*Agnihotri, V*	Industrial Relations in India
3	*Bhagoliwal T N*	Economics of Labour and Social Welfare
4	*Bloom & Northrup*	Economics of Labour Relations
5	*Carter A M*	Theory of Wages and Employment
	Dobb M	Wages
6	*Flippo E B*	Principles of Personnel Management
7	*Ford P*	Economics of Collective Bargaining
8	*Gadgil D R*	Regulation of Wages and Other Problems of Industrial Labour in India
9	*Giri V V*	Labour Problems in Indian Industry
10	*IIPM (Compiled)*	Personnel Management in India
11	*Johri C K (Ed)*	Issue in Indian Labour Policy
12	*Karnik, V B*	Indian Trade Unions—A Survey
13	*Kumar C B*	Development of Industrial Relations in India
14	*Lester*	Economics of Labour
15	*Mary*	Collective Bargaining
16	*Mehta V D & Maheshwari P D*	Public Undertakings & Labour in India
17	*Mukerjee R K*	The Indian Working Class
18	*Mathur A S*	Trade Union Movement in India
19	*Myers Charles A*	Industrial Relations in India
20	*Naba Gopal Das*	Unemployment Full Employment and India
21	*Nigam S B L*	State Regulation of Minimum Wages
22	*Phelps O W*	Introduction to Labour Economics
23	*Rao K V*	Labour Management Relations—New Perspectives & Prospects
24	*Roberts B C*	Trade Unionism in a Free Society
25	*Roy S K*	Management in India—New Prospects
26	*Saxena R C*	Labour Problems & Social Welfare
27	*Saxena S C*	Labour Problems & Social Security

28	*Shrivastava G L*	Collective Bargaining and Labour, Management Relations in India
29	*Singh, R R*	Labour Economics
30	*Singh V B (Ed)*	Industrial Labour in India
31	*Subramanian, K N*	Labour Management Relations in India
32	*Tilak, U R K*	A Survey of Labour in India
33	,, ,,	Manpower Shortages & Surpluses
34	*Vaid K N*	State & Labour in India
35	,, ,,	Labour Management Relations in India
36	,, ,,	Trade Unionism in a Developing *Economy*

37 Report of the *Royal Commission on Labour 1931*

38 Report of the Bombay Textile Labour *Enquiry Committee, 1940*

39 Report of the Labour Investigation Committee, *1946*

40 Report of the National Commission on Labour, *1969*

41 India, 1975

42 Economic Times, May 28 1975 Article on *Professionalising* T U Leaders' *by S Mookerjee*

43 Economic Times, July 2 & 3, 1975

44 *B R Patil* Article on 'Economics of Strikes & Lockouts

45 श्रम विभाग की प्रमुख गतिविधियाँ (1974 75)

46 श्रम आयुक्त कार्यालय राजस्थान जयपुर, फरवरी, 1975